वचनामृत रहस्य

(`बहिनश्री के वचनामृत' ग्रंथ पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा नाईरोबी में हुए प्रवचन)

प्रकाशक
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

⌘ **प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :**
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट / श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी,
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) ४२३२०७ / २१५१००५

⌘ **गुरु गौरव**
श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,
पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़

⌘ **श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट**
विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़
फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२

⌘ **श्री पंकजभाई प्राणभाई कामदार**
३२, कहाननगर, २७१/२९१ एन. सी. केलकर रोड़,
दादर (वेस्ट), मुंबई-४०००२८
फोन : (०२२) २४३०७४८९

⌘ **श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१**
श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७
अमी अग्रवाल (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२, ९३७७१४८९६३

द्वितीयावृत्ति : प्रत : १००० दि. २८-११-२००६
तृतीयावृत्ति : प्रत : ५००, ३१-१२-०७, कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन
पृष्ठ संख्या : ८ + ३३६ = ३४४
लागत मूल्य : ५०/-
मूल्य : २० /-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय

(**तृतीयावृत्ति**)

`**वचनामृत रहस्य**' नाम के इस लघुकाय ग्रंथ की तृतीयावृत्ति प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है। सद्धर्मप्रभावक, करुणामूर्ति `पूज्य गुरुदेवश्री' ने भारतवर्ष के अनेक गाँव में प्रवचनों की अमृतवर्षा करके भव्य जीवों को मोक्षमार्ग की सही दिशा बतलाकर परमोत्कृष्ट उपकार किया है।

`पूज्य गुरुदेवश्री' में सातिशय लब्धियुक्त ज्ञान, उनकी असाधारण प्रतिभा, शास्त्रों के सूक्ष्म सिद्धांतों का उकेल लाने की विचक्षणता, उनका निष्कारण करुणाशील हृदय, जिनमार्ग प्रति का प्रेम इत्यादिक अनेकानेक गुणों की स्तुति-भक्ति करने योग्य है ! `पूज्य गुरुदेवश्री' की धर्म प्रभावना की भावना प्रत्येक प्रवचनों में अभिव्यक्त होती है। इसी भावना के फलस्वरूप नायरोबी के मुमुक्षुओं की प्रार्थना सुनकर विदेशगमन करके वहाँ की धरा को भी पवित्र करके प्रवचनों की अमृतवर्षा की।

`पूज्य गुरुदेवश्री' के नायरोबी के विहार दौरान `पूज्य भाईश्री शशीभाई' के सूचन से व एक मुमुक्षु के प्रयत्न से वहाँ के मुमुक्षु मंडल ने `पूज्य गुरुदेवश्री' के विडियो प्रवचन उतारने का निर्णय लिया और एक-दो दिन बाद विडियो उतारने का शुरू भी हो गया। अतः नायरोबी मुमुक्षु मंडल के हम आभारी हैं। `पूज्य भाईश्री शशीभाई' की दूरंदेशिता के प्रति उपकृत भाव आविर्भूत होता है। यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए उनके उपकार को स्मरण में लेकर उन्हें कोटि-कोटि वंदन करते हैं।

वर्तमान में `पूज्य गुरुदेवश्री' की अनउपस्थिति में उनके नायरोबी में हुए प्रवचनों की कुछएक विडियो कैसिट व सी.डी. उनके दर्शन

करने में निमित्तभूत हो रही है। उनकी प्रत्येक चेष्टाएँ, करुणारस से सराबोर व प्रसन्न मुखमुद्रा, नित्य आत्मदर्शन की झाँकी कराती रहती है। जिन्होंने `पूज्य गुरुदेवश्री' को देखा तक नहीं उनके लिये तो यह एक ही साधन दर्शन हेतु उपलब्ध है। `पूज्य गुरुदेवश्री' के इन विडियो प्रवचनों को देखते हुए और उनकी आत्मरस भीगी वाणी सुनते हुए यह प्रतीति होती है कि `**कहान तारी बंसीमां डोले नरनार**!' पूरी सभा उनकी आत्मरस से सराबोर वाणी में झूमने लगती होगी वैसा प्रत्यक्ष अनुभवगोचर होता है।

नायरोबी में हुए प्रवचनों में `पूज्य गुरुदेवश्री' ने `पूज्य बहिनश्री' की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है, इतना ही नहीं `पूज्य बहिनश्री' की अंतरंग दशा बाबत भी अनेक बार उल्लेख किया है। `पूज्य बहिनश्री' की अनुभूति एवं उनके जातिस्मरणज्ञान संबंधित अत्यंत प्रमोदभाव व्यक्त किया है। ऐसे पूज्य `बहिनश्री के वचनामृत' पर हुए इन प्रवचनों को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है।

`पूज्य बहिनश्री के वचनामृत' तो मुमुक्षुजीव के लिये सचमुच अमृत तुल्य ही है। जिस वचनरूपी अमृत को पीने से मुमुक्षुजीव अमर हो जाता है यानी कि जन्म-मरण से मुक्त होकर सादी अनंतकाल तक समाधिसुख में विराजमान हो जाता है। इसमें मुमुक्षुजीव के लिये मोक्षमार्ग पर्यंत पहुँचने तक का मार्गदर्शन अत्यंत सादी भाषा में किन्तु बहुत गहराई सहित प्रतिपादित है।

`पूज्य गुरुदेवश्री' के हरएक प्रवचन जो वहाँ चले, वे विडियो में उपलब्ध नहीं है अतः ऑडियो सी.डी.में से इन प्रवचनों को ऑडियो कैसिट में परिवर्तित कर उसे अक्षरसः लिख लिया गया है। तत्पश्चात् संपादन के समय भी हरएक प्रवचनों को सुनते हुए संपादन का कार्य करते हैं। पूर्णरूप से प्रवचन तैयार हो जाने के पश्चात् फिर से कोई अन्य मुमुक्षु इसे कैसिट से मिलान कर लेता है, ताकि कोई क्षति रह न जाये। इसके हिन्दी अनुवाद के समय `पूज्य गुरुदेवश्री'

की शैली को ध्यान में रखकर अनुवाद का प्रयास किया है। इसके बावजूद भी अगंभीरतावश अनुवाद में जो भी क्षति रही हो इसके लिए अनुवादक देव-गुरु-शास्त्र की साक्षी से क्षमा चाहता है।

इस पुस्तक में छपे प्रवचनों को शीघ्रता से लिख देने का कार्य करने के उपलक्ष में `श्री कनुभाई लक्ष्मीचंद शाह,' अहमदाबाद, के हम आभारी हैं। इसके अलावा जिन-जिन मुमुक्षुओं द्वारा इस कार्य में सहकार मिला उनके भी हम आभारी हैं। इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि का साभार विवरण अन्यत्र दिया गया है।

इन प्रवचनों के प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भी क्षति रह गई हो तो देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अंतःकरणपूर्वक क्षमा याचना करते हैं। इसके अतिरिक्त पाठकवर्ग को कोई भी क्षति नज़र आये तो वे अवश्य हमारा ध्यान खींचे ताकि भविष्य में उस भूल का पुनरावर्तन न हो।

अंततः इस अमृतवर्षा में प्रत्येक मुमुक्षु स्नान करके, अमृत को पाकर अमृतमय बन जाये ऐसी भावना भाते हुए विश्राम लेते हैं।

`परमपुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम'
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम।।'

दि. ३१-१२-०७
कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन

ट्रस्टीगण
वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	वचनामृत नंबर	पृष्ठ संख्या
०१	वचनामृत - १ से ४	००१
०२	वचनामृत - ६ से १२	०२७
०३	वचनामृत - १३ से १९	०५२
०४	वचनामृत - २१ से २५	०७७
०५	वचनामृत - २६ से ३०	१०२
०६	वचनामृत - ३१ से ३३	१२५
०७	वचनामृत - ३४ से ३६	१५२
०८	वचनामृत - ३६ से ३९	१७७
०९	वचनामृत - ४० से ४४	२०१
१०	वचनामृत - ४५ से ४७	२२८
११	वचनामृत - ४७ से ५०	२५३
१२	वचनामृत - ५१ से ५६	२७९
१३	वचनामृत - ४१२ - ४१३	३०४

`वचनामृत रहस्य' के प्रकाशनार्थ प्राप्त दानराशि

श्रीमती चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर ५,०००/-

हे परमकृपालु गुरुदेव ! आप के गुणों की क्या महिमा करूँ ! आप के उपकारों का क्या वर्णन करूँ ! असली स्वरूप के ज्ञान के दातार अपूर्व महिमा के धारक श्री गुरुदेव के चरणकमल की सेवा-भक्ति निरंतर हृदय में बसी रहे, परम-परम-उपकारी श्री गुरुदेव के चरणकमल में इस सेवक के वारंवार भावभीगी भक्ति से कोटि कोटि वंदन हो, नमस्कार हो। - पूज्य बहिनश्री

`मैं ज्ञानमात्र हूँ'

⌘

सुखधाम अनंत सुसंत चही,
दिनरात रहे तद्ध्यान महीं;
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वरते जयते.

⌘

पावन मधुर अद्भुत अहो ! गुरुवदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी नित्ये अहो ! चिद्रस भर्यां.
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्यां,
गुणमूर्तिना गुणगणतणां स्मरणो हृदयमां रमी रह्यां.

⌘

हुं एक, शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञानदर्शनमय खरे;
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे.

⌘

सहजात्मस्वरूप सर्वज्ञदेव परमगुरु

⌘

ॐ

वीतरागाय नमः

वचनामृत रहस्य

हे जीव ! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मामें रुचि लगा। आत्मामें रुचे ऐसा है। आत्मामें आनंद भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगतमें कहीं रुचे ऐसा नहीं है परंतु एक आत्मामें अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मामें रुचि लगा।।१।।

वचनामृत - १ से ४ १

ये बहिन के वचनामृत हैं। आप लोगों की भावना थी कि दोपहर को इस पर प्रवचन हो। बहिन की उम्र वर्तमान (में) ६६ वाँ वर्ष

चलता है। परंतु उन्हें पूर्वभव के असंख्य अरब सालों का ज्ञान है। जगत को विश्वास आना मुश्किल है (परंतु सत्य बात है)। अभी जैसे कल का स्मरण में आये वैसे असंख्य अरब साल पूर्व का याद आता है। नौ भव हैं, नौ भवों का ज्ञान है। स्वर्ग का भव असंख्य वर्ष का होता है। उनके आश्रय में ६४ बाल ब्रह्मचारी बेटियाँ हैं। बाल ब्रह्मचारी ! उन लोगों के बीच में रात्रि में थोड़ा कुछ बोलते थे, तब उसी वक्त लिख लिया था। वरना वे खुद तो कुछ लिखने का कहे नहीं ! उन्हें कहाँ प्रसिद्धि में आना है। वे तो अतीन्द्रिय आनंद की मस्ती में हैं।

अनुभव यानी कि सम्यग्दर्शन जिसको कहे वह बहुत सूक्ष्म वस्तु है। इस सम्यग्दर्शन में धर्म की पहली श्रेणी में - पहली धारा में आत्मा का अनुभव होता है। अनुभव होते ही इसमें आत्मा के आनंद का स्वाद आता है। दुनिया में ये जो जड़ के स्वाद हैं, कल्पना के स्वाद (हैं) वे तो दुःख हैं। अंतर में आत्मा आनंदस्वरूप है इसका भान होने पर - प्रथम धर्म (प्रगट) होने पर - प्रथम सम्यग्दर्शन होते ही, यह अतीन्द्रिय आनंद का नाथ प्रभु जो (है), पर्याय में उसके आनंद का स्वाद आता है, उसे अनुभव कहते हैं। आ..हा..हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु !

**`अनुभव रत्न चिंतामणी, अनुभव है रसकूप, अनुभव मार्ग मोक्षनो अनुभव मोक्षस्वरूप।'** `अनुभव रत्न चिंतामणी' - आत्मा का अनुभव है सो धर्म है। राग से, पुण्य से - दया-दान, व्रत के विकल्प से भिन्न होकर अंतर आत्मा का अनुभव करना और आनंद का वेदन करना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन - धर्म की पहली श्रेणी - धर्म की प्रथम सीढ़ी कही जाती है। आ..हा...हा...!

बहन (को) आनंद का अनुभव है। वे अनुभवपूर्वक जो बोले, लोगों

ने थोड़ा लिख लिया। उसमें यह बात प्रसिद्धि में आ गई! वरना वे तो प्रसिद्धि में आते ही नहीं। (बाहर से) मुर्दा शरीर - जैसे मर चुके हो वैसा (दिखे) !

जब आत्मा को प्रथम सम्यग्दर्शन होता है तब अंतर में अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के आगे जगत के सारे स्वाद छूट जाते हैं। सभी स्वादों की मिठास छूट जाती है। उस वक्त आनंद के स्वाद सहित जो भी वाणी निकलती है (उसे) `अनुभव वाणी' कहने में आता है। ऐसी यह `अनुभव वाणी' है ! डॉक्टरों ने मनाई की है कि, उन्हें ज्यादा मुसाफिरी नहीं करनी है, वरना तो यहाँ आने का भाव (था)। लोगों का आग्रह भी था, परंतु आराम करना और बाहर नहीं जाना है (ऐसा डॉक्टरों का कहना था)। इसलिए आ नहीं सके। परंतु उनकी यह पुस्तक साठ हज़ार तो छप चुकी हैं। (`बहिनश्रीके वचनामृत') का प्रचार काफ़ी है। साठ हज़ार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। हमलोग अभी समझने के लिए पहले बोल का स्वाध्याय करें।

पहला बोल - `**हे जीव** !' आ..हा...हा...! (जीव को) संबोधन किया है। हे प्रभु ! जीव मतलब आत्मा ! प्रभु ! `**हे जीव** ! **तुझे कहीं नहीं रुचता हो...**' अगर कहीं नहीं रुचता हो तो ! कहीं न कहीं रुचता होगा जब तो अंतर में नहीं जा सकेगा। कहीं जैसे धूल में - पैसे में या पत्नी और बच्चों में या आबरू-कीर्ति में, इसमें अगर तुझे अच्छा लगता हो जब तो तू अंतर में नहीं जा सकेगा। तुझे धर्म प्राप्ति नहीं हो सकेगी। परंतु (अगर) तुझे कहीं नहीं रुचता हो तो... यह एक शर्त (है)। यह एक शर्त है।

बहिन की वाणी रात्री को निकल गई। इसमें ६४ बाल ब्रह्मचारी बहिनें-बेटियाँ जो हैं, पचास-पचास लाख की (आमदनी हो ऐसे घराने

की) बेटियाँ हैं। ऐसी ६४ बाल ब्रह्मचारी बेटियाँ वहाँ हैं। काफ़ी प्रचार जो है। उन लोगों के बीच ये थोड़ा कुछ बोले थे उसे (उन बेटियों ने) लिख लिया और उनके भाई ने इसे प्रसिद्ध किया !

`**हे जीव** !' यह प्रथम - शुरूआत की बात (की है)। `**तुझे कहीं न रुचता हो तो...**' यह शर्त ! आत्मा के अलावा किसी भी चीज़ में तुझे सुहाता न हो तो ! आ..हा...हा...! यह शर्त ! `**तो अपना उपयोग पलट दे...**' सूक्ष्म बात है प्रभु ! यानी कि तेरा जो भीतर में उपयोग है, जो जानने-देखने का कार्य कर रहा है वह (अभी) पर में कार्य कर रहा है। अनादि से राग-द्वेष और विकल्प में कार्य कर रहा है। वह संसार है, दुःख है, भटकने का पंथ है। लेकिन अगर तुझे वहाँ रुचता न हो तो... आहा...हा...हा...! `**अपना उपयोग पलट दे...**' यह जानने-देखने का जो भाव है वह पर में लगा है - पर की ओर झुक गया है, उसमें यदि तुझे रुचता न हो तो सूक्ष्म उपयोग करके अंतर में जा ! आहा...हा...!

जानने-देखने का जो उपयोग है (उसे पलट दे)। यह किसकी बात चल रही है ? पर्याय की ? (श्रोता :- घर की) घर की ! यह भगवान आत्मा...! प्रभु ! क्या कहे ? यह सारी दुनिया से अलग प्रकार की बात है।

आत्मा के अलावा तुझे कहीं न रुचता हो तो... यह शर्त ! पुण्य भी न रुचे, पाप भी न रुचे, विषय भी न रुचे, भोग भी न रुचे, आबरू भी न रुचे तो...! यह शर्त ! उपयोग को अंतर में ले जा, भाई ! आ..हा..हा..हा...!

जानने-देखने का जो कार्य हो रहा है, वह पर को जानने-देखने का कार्य कर रहा है, (वैसे) तो अपने में कर रहा है,

परंतु पर की ओर झुककर कार्य कर रहा है। अंतर आनंद का नाथ प्रभु ! उसकी ओर का झुकाव कभी एक सेकंड भी जीव ने किया नहीं, अरे ! इसके लिए दरकार भी अनंतकाल में नहीं की। इसलिए कहते हैं कि तेरा उपयोग - जानने-देखनेरूप भाव को पलट दे। आहा..हा...हा...! यह पहला बोल ऐसा आया है।

पहला बोल यह है, प्रभु ! तू तो ऐसा है (यानी कि) तेरा जो जानने-देखने का भाव है न वह (बाहर की ओर) झुका हुआ है (अर्थात्) पुण्य और पाप, पुण्य-पाप के फल में शरीर, इन्द्रिय, विषय, भोग, पत्नी, बच्चें, कुटुंब, व्यापार-धंधा, उनमें लगा हुआ है वह तो पाप का उपयोग है। लेकिन इससे आगे बढ़कर दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा में लगा हुआ हो तो वह पुण्य का उपयोग है। अब दोनों में अगर तुझे नहीं रुचता हो तो... आहा..हा...हा...! तेरा उपयोग पलट दे। (ऐसे) शब्द हैं, प्रभु ! (लेकिन) शब्दों में भाव भरा है। आहा...! अनुभव की वाणी है। अनुभव के आनंद के स्वाद सहित यह वाणी है। धर्म - सम्यग्दर्शन ऐसी ही कोई चीज़ है...! बहुत सूक्ष्म है। धर्म की पहली सीढ़ी ! इसमें अनुभव की शुरूआत से ही धर्म होता है। ऐसे आत्मा का अनुभव - आनंद का अनुभव (करने के लिए) उपयोग को पलटकर भीतर (आत्मा में) लगा दे। (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...!

इसप्रकार उपयोग जानने-देखने का कार्य बाहर में करता है, वह तो सुबह आया था कि बाहर में जानता है वह खुद की पर्याय है। वह किसी पर को नहीं जानता। वास्तव में जानता तो है अपनी ही पर्याय को। क्योंकि खुद की पर्याय के - दशा के अस्तित्व में वह मालूम होता है। जाननेवाले की पर्याय तो खुद की ही है। वह (पर) वास्तव में नहीं जानने में आता, (अपनी) पर्याय ही

मालूम होती है। परंतु पर्याय में पर सम्बन्धित ज्ञान जो हो रहा है उसे प्रभु ! एकबार उपयोग को पलट दे ! अरेरे...! अनंतकाल से प्रभु तूने काम नहीं किया ! (तो अब) एकबार (उपयोग को) पलट दे ! '**और आत्मा में रुचि लगा।**' आहा...हा...हा...!

बाहर में कुछ पाँच-पचीस लाख रुपया या पाँच-पचीस करोड़ ले लो न ! (मिल जाए) तो भी वैसा अनंतबार हो चुका है। वह कोई नई चीज़ नहीं है। वहाँ तुझे रुचता न हो तो अब यहाँ आओ, (ऐसा) कहते हैं। अब पहली शर्त ही यह है। और उपयोग को पलट दे। ये कोई सिर्फ बातें नहीं है, बापू ! आहा...हा...! यह कार्य कोई पैसे से या शरीर से नहीं हो सकता।

अंतरंग जाननेवाला उपयोग यूँ जो (बाहर की ओर) झुका हुआ है उसे सूक्ष्म करके, उपयोग को स्थूल करता है इसलिए बाहर में भटकता है, (उस उपयोग को) सूक्ष्म करके अंतर में देख ! आहा...हा...! और आत्मा में रुचि लगा। '**आत्मा में रुचे ऐसा है।**' आत्मा में रुचे ऐसा है (यों कहते हैं)। अंदर आनंद है प्रभु ! आहा...हा...हा...!

आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के आगे, बत्तीस लाख विमान का स्वामी इन्द्र जो है, एक-एक विमान में असंख्य देव हैं उनका स्वामी जो इन्द्र (है, वह) समकिती है, आत्मज्ञानी है। लेकिन (बाहर में) भले ही इतना (वैभव) दिखे किन्तु (अंतर में) आत्मा का भान है और परमें से सुखबुद्धि उड़ चुकी है। वह जीव भी भगवान के पास सुनने आता है। महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं। बहिन तो वहाँ थे, वहाँ से आये हैं। थोड़ी माया हो गई थी इसलिए स्त्री की देह (मिली है)। अभी स्त्रीपना जो है वह पूर्व की माया के कारण है। माया-कपट हो गया था। इसीमें आयुष्य का

बंध पड़ गया और स्त्री हो गए। भगवान के पास थे। अभी भगवान विराजते हैं। महाविदेह में मौजूद समवसरण में यों विराजते हैं। वहाँ थे, सेठ के पुत्र थे। परंतु अंत में देह छूटते समय थोड़ी अस्थिरता हो गई, थोड़ी माया हो गई (इसलिए) स्त्री के रूप में यहाँ आ गए हैं। बाद में उन्हें (संवत) १९८९ की साल में पूर्वभव का ज्ञान हुआ था। जातिस्मरण में पहले तो पाँच भवों का ज्ञान हुआ था, फिर अभी पाँच साल पहले दूसरे चार भवों का हुआ, (वैसे) नौ भवों का ज्ञान (है)। कल की बात जैसे याद आती हो वैसे असंख्य अरब साल की बातें याद आती हैं। इनके (ये) वचन हैं। यहाँ लोगों का निमंत्रण था, आने का विचार भी था। परंतु शरीर ऐसा है कि ज्यादा घूमना-फिरना नहीं क्योंकि भीतर में Heart पर कुछ असर है। वे स्वयं तो आनंद में हैं ! उन्हें तो जैसे कुछ है ही नहीं। वे तो आनंद-आनंद...और आनंद... अतीन्द्रिय आनंद (में हैं) बस !

अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव सहित कहते हैं कि `**आत्मा में रुचे ऐसा है।**' परंतु `आत्मा' कौन है ? यह जाने बिना जीव को रुचि कहाँ से होगी ? वह चीज़ क्या है ? उस चीज़ का खयाल आये बिना इसकी रुचि कहाँ से होगी ? जो चीज़ खयाल में भी नहीं आयी - ज्ञान में खयाल में भी नहीं आयी तो इसकी रुचि व पोषण तो कहाँ से होगा ? आहा...हा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात है, प्रभु ! (लेकिन) है तेरे घर की बात। तू तो प्रभु है बापू ! परंतु तुझे तेरी खबर नहीं। इसलिए यहाँ कहते हैं आहा...हा...हा...! तुझे `**आत्मा में रुचे ऐसा है।**'

क्यों (रुचे ऐसा है) ? (क्योंकि) `**आत्मा में आनंद भरा है;...**' आहा...हा...! ये क्या ?! जब कोई चीज़ है तो उस चीज़ का

स्वभाव होगा कि नहीं ? वस्तु जब है तो वस्तु में वस्तु के गुण बसे हैं कि नहीं ? जब आत्मा वस्तु है तो उसमें इसके (गुण भी) बसे हैं। वस्तु में बसी हुई शक्तियों को गुण कहते हैं। तो आत्मा में एक आनंद नाम का गुण भी पूरा भरा है। आहा...हा...हा...! अब यह बात कैसे बैठे ? कैसे (बैठे) ?

बाहर में यह धूल में (सुख) मानते हो। महीने की पाँच-पचीस लाख की आमदनी हो और अरबपति आदमी हो, (उसे यह बात कैसे मानने में आये) ? जिसको उसमें मिठास है, उसको तो आत्मा में आनंद है यह बात रुचेगी भी नहीं। क्योंकि उसको नाप करना नहीं आता। आहा...हा...! आहा...हा...!

एक लड़का था। रविवार का दिन था। उसका बाप, यह अलपाका का कोट आता है न ? अलपाका! अलपाका का कपड़ा आता है न ? वह पचास हाथ लंबा कपड़ा ले आया। फिर लड़के को दिया (और कहा) इसके अब कोट बनाये जाए। उसने पचास हाथ (कपड़ा) को नापा। लड़का आठ साल का (था), (उसने) अपने हाथ से नाप किया (और कहा) `बापूजी ! आप पचास हाथ कपड़ा बताते हो लेकिन इतना नहीं ये तो सौ हाथ लंबा कपड़ा है।' बापूजी ने कहा `बेटा ! तेरे हाथ नापने के काम में नहीं आ सकते। हमारे व्यापार में तेरे हाथ काम नहीं आ सकते। इसमें तो हमारे हाथ काम में आयेंगे।' वैसे ज्ञानी कहते हैं कि तेरी कल्पना जो है वह सत्य समझने के काम में नहीं आ सकती। तू कल्पना कर-करके विकल्प में दौड़ता जा रहा है इसमें यह (सत्य का) नाप नहीं आएगा। इसे नापने के लिए अंतर की रुचिपूर्वक उपयोग को अंतर में ले जा तो नाप आ सकता है। सूक्ष्म है भगवान ! आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**आत्मा में आनंद भरा है;...**' आहा...! जैसे शक्कर

में मीठापन है, अफीम में कटुता है, (वैसे) प्रभु में (आत्मा में) आनंद है - दुःख नहीं। यह दुःख तो जीव ने अनादि अज्ञान से विकार उत्पन्न किया (इसलिए है)। (पंचेन्द्रिय के) विषय में, स्त्री में, पैसे में, आबरू में - पर में सुख है ऐसी कल्पना अज्ञानी ने, मूढ़तावश स्व के भान बिना, स्व सत्ता की पहचान बिना पर में सुख की कल्पना कर-करके चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है। अब उस उपयोग को पलट दे बापू ! तुझे ऐसा मनुष्यभव मिला। (यह) उपयोग (पलट दे) क्योंकि **'आत्मा में आनंद भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा।'** आहा...हा...हा...!

अरे ! कहाँ अभी तो बाहर में उपयोग में आनंद... आनंद लगता हो (!) छः लड़के, आठ लड़के हो, एक-एक लड़के को पाँच-पचीस लाख की मासिक आमदनी हो, उस आनंद को भोगते हुए कौन ढूँढ़ने जाएगा कि आत्मा में आनंद है। आ..हा...हा...हा...! 'अनंतकाळथी आथड्यो विना भान भगवान, सेव्या नहीं गुरु संत ने मुक्युं नहि अभिमान' - अभिमान नहीं छोड़ा कि, मैं कुछ नहीं जानता, बापू ! वस्तु कोई अलग ही है (जिसकी) मुझे खबर तक नहीं है। अभिमान ही अभिमान में चढ़ गया। 'मुझे आता है, मुझे पता है, यह सब ऐसा है।' - ऐसे अज्ञान ही अज्ञान में - मूढ़ता में मर गया ! 'अनंतकाळथी आथड्यो विना भान भगवान, सेव्या नहि गुरु संतने...' गुरु-संत किसको कहना यह समझना कठिन बात है। जिनको सम्यग्दर्शन, ज्ञान व चारित्र की प्राप्ति हुई हो या सम्यग्दर्शन, ज्ञान की प्राप्ति हुई हो उन्हें यहाँ गुरु कहा जाता है। अभी तो खुद जानता तक नहीं हो कि सम्यग्दर्शन क्या है ? फिर पर की पहचान तो कहाँ से कर सकेगा ? यह कहते हैं।- 'तेरे में आनंद भरा है' ऐसा गुरु तुझे कहते हैं। आहा...हा...हा...!

कहाँ भरा होगा (ऐसा आनंद) ?!

'आत्मा में आनंद भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है...' आहा...हा...हा...! इसका मतलब ? आत्मा के अलावा कहीं भी तुझे प्रेम हो, आनंद आए ऐसी कोई चीज़ नहीं है। आत्मा को छोड़कर किसी भी पर चीज़ में आनंद आए, मज़ा आए ऐसी कोई चीज़ जगत में है ही नहीं। आहा...हा...हा...! सारे जगत से विरुद्ध करके पलटा खाना है, यूँ पड़ा है उधर से पूरा पलटा खाना है।

(यहाँ) कहते हैं **'जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है...'** कहा है न भाई ? **'परंतु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है।'** आहा...हा...हा...! लेकिन अगर तू आत्मा की पहचान कर तो (अवश्य तुझे रुचेगा)। वरना वैसे तो बाहर का सबकुछ अनंत बार मिला व अनंत बार छूटा, वापिस मरकर चला गया चार गति में भटकने ! बड़ा अरबपति हो (वह) मरकर सूअर बन जाए ! बड़ा अरबपति हो मरकर कुत्ता बन जाए, कौआ या कुत्ता बन जाए। चौरासी के अवतार में ऐसे (भव) अनंत बार किये। आ...हा...हा...!

जिसको आत्मा की खबर नहीं उसे पुण्य और पाप भाव के फलस्वरूप चार गतिमें से कोई न (कोई एक) गति मिलेगी। कुछ पुण्य किये होंगे तो मनुष्यत्व या देवादि को प्राप्त होगा। पाप (किये) होंगे तो नरक में (जाएगा) या तिर्यंच में जाएगा, परंतु ऐसे ही चार गति में भटकता रहेगा।

(इसलिए यहाँ कहते हैं कि,) अगर तुझे आत्मा में रुचे आहा...हा...हा...! (तो) **'आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।'** यह पहला बोल है। अनुभवपूर्वक कहा गया (बोल) है। आहा...हा...!

बहिन की तो बात ही कुछ और है। हिन्दुस्तान में (उनके जैसा) अभी कोई है नहीं। ऐसी विशिष्ट व्यक्ति हैं ! ऐसे ही अंतर अनुभव के आनंदमें (से ये सारी बातें निकल गई हैं।) सूक्ष्म बात हैं। भगवान के पास थे। वहाँ से यहाँ आ गये हैं। पूर्व में हमलोग मित्र थे इसलिए इतनी बात करते हैं वरना तो बात भी न करे। कुछ पड़ी नहीं है, बोलना (कम), सिर्फ आनंद... आनंद और आनंद बस ! अतीन्द्रिय आनंद का वेदन रहते हुए कोई पैर छूए, हाथ जोड़े (तो भी) सामने तक नहीं देखे ! एक आनंद की लहर में मस्त हैं। वे ऐसा सहज बोल गए कि चाहे कैसे (भी) `**तू आत्मा में रुचि लगा।**' आहा...हा...हा...!

स्त्री की देह या स्त्री-शरीर यह कोई आत्मा नहीं है। आत्मा तो भिन्न वस्तु है। यह देह तो हड्डियों का बना हुआ पुतला है। हड्डियाँ, मांस व चमड़ी का पुतला दिख रहा है। पैसा धूल समान दिख रहा है। आत्मा तो इससे भिन्न (है)। अरे...! पुण्य-पाप के विकल्परूप राग से भी भिन्न (है)। वहाँ (तू) जा, (वहाँ) तुझे रुचेगा। (क्योंकि) वहाँ आनंद है। आहा...हा...हा...! आया न ? `**तू आत्मा में रुचि लगा।**' यह पहला बोल हुआ।

अंतर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन लगे और अंतर में मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्मा की लगन लगनी

चाहिये; उसके पीछे लगना चाहिये। आत्मा को ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये। `मेरा हित कैसे हो ?' `मैं आत्मा को कैसे जानूँ ?' - इस प्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।।२।।

(अब) दूसरा बोल। `**अंतर की गहराई से...**' आ...हा...हा...! `**अंतर की गहराई से...**' गहराई से (मतलब) अंदर में पुण्य-पाप के भाव से आगे जाकर, आ...हा...हा...! `**अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ...**' `**अंतर की गहराई से अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी,...**' आहा...हा...!

माँ-बेटा साथ-साथ चल रहे हो, बेटा छोटी उम्र का करीब छः - सात साल का हो, चलते-चलते माँ के हाथ से बेटे का हाथ छूट जाए और माँ कई दूर चली जाए, दोनों बिछड़ गये हो तो बेटा `माँ-माँ' करता रहेगा। `माँ-माँ' (करता रहे)। फिर उसे कुछ भी पूछेंगे तो (कहेगा) `मेरी माँ।' ऐसा एकबार पोरबंदर में हुआ था। एक लड़की उपाश्रय के पास खो गई थी। सिपाही ने उसको पूछा `तू कौन है ?' तो (कहा) `मेरी माँ' फिर पूछा `किस मुहल्ले में रहती है ?' तो (कहा) `मेरी माँ', `तेरी सहेली कौन है ?' (तो कहे `मेरी माँ')। क्योंकि अगर पुलिस को पता

चले कि किस मुहल्ले में रहती है, जब तो वहाँ छोड़ने जाए न? `माँ-माँ' की रट लगा ली। वैसे जिसको अंतर में `आत्मा-आत्मा' की रट लगी हो (उसकी बात करते हैं)। आहा...हा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**अपना हित साधने को जो आत्मा जागृत हुआ...**' जागृत हुआ अंदर से ! आहा...हा...! अरे...! में तो आनंद और ज्ञान की मूर्ति हूँ ! मेरे स्वरूप में राग भी नहीं, दया-दान के विकल्प भी जब मेरी चीज़ में नहीं है, तो ये धूल-पैसे और शरीर-मिट्टी-धूल तो अंदर में हो ही कैसे सकते हैं ? आहा...हा...! परंतु इसके प्रेम और प्रीति में आसक्त हो चुका है। अब कहते हैं कि गहराई में उतर ! आहा...हा...!

`**जिसे आत्मा की सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।**' आत्मा की लगन लगनी चाहिए बापू ! आ...हा...हा...! उसकी लगन लगी तो वह उसे मार्ग कर देगी। उसको मार्ग मिले बिना रहेगा नहीं ! आहा...हा...! परंतु लगन लगनी चाहिए। आहा...हा...! `**सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।**'

`**आत्मा की सच्ची लगन लगे और अंतर में मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता।**' कुछ लोग कहते हैं - `हम बहुत प्रयत्न करते हैं परंतु समझ में नहीं आता है।' तो इसका मतलब कि वह प्रयत्न ही अयथार्थ (करता) है। जिसको पकड़ना चाहिए (इसकी पहचान के लिए) प्रयत्न हो तो पकड़ में आये बिना रहे ही नहीं। समझ में आया ? (उसे पकड़ने के लिए) उपयोग को सूक्ष्म करना पड़ता है, प्रभु ! बहुत सूक्ष्म करना पड़े। जानने-देखने की दशा को बहुत सूक्ष्म करनी पड़ती है और सूक्ष्म करे तो सूक्ष्म चीज़ हाथ में आये। अलग जाति है, प्रभु ! आहा...हा...हा...!

(इसलिए कहते हैं) `**आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्मा की सच्ची लगन लगे और अंतर में मार्ग न हो जाये ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्मा की लगन लगनी चाहिये;...**' अंतर से लगन लगनी चाहिए, आहा...हा...! एक ही आत्मा... आत्मा... आत्मा...! स्वप्न में आत्मा... जागृति में आत्मा... विचार में आत्मा... कल्पना में आत्मा... आहा...हा...! ऐसी जिसको लगन लगती है (उसे मार्ग मिलता ही है)।

`**उसके पीछे लगना चाहिये।**' आत्मा के पीछे लगना चाहिए। जैसे पैसे, स्त्री और बच्चों के पीछे लगा है, वैसे आत्मा के पीछे लगना चाहिए। आहा...हा...! (वैसे) `**उसके पीछे लगना चाहिये।**'

`**आत्मा को ध्येयरूप रखकर...**' क्या कहते हैं ? आत्मा को ध्येय(रूप रखकर) यानी कि लक्ष्य में लेकर, ध्येय बनाकर, दृष्टि में उसे ध्येय बनाकर, उसे लक्ष्य में लेने के लिए `**दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये।**' ऐसी बात है बापू ! आहा...हा...!

यह कोई ऐसी बात नहीं है कि शास्त्र की जानकारी कर ली इसलिए आत्मा (प्राप्त) हो गया ! (इसके लिए तो) अंतर का ज्ञान चाहिए। अंतर में उतरना चाहिए। आहा...हा...! भगवान अंदर में अतीन्द्रिय आनंद से भरा पड़ा है ! जिसका नमूना मतलब अंतर में आनंद का स्वाद आये तब उसने `आत्मा' को जाना ऐसा कहा जाए। आहा...हा...हा...! अंतर में आनंद है। अतीन्द्रिय आनंद है (इसके आगे) इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए कुत्ते के समान लगते हैं ! वह सुख (ऐसा लगता है) ! सम्यग्दर्शन होते ही, अनुभव होते ही, अनुभवी धर्म की पहली श्रेणीवाले को, धर्म का प्रथम सोपान - प्रथम सीढ़ीवाले को अपने सुख के आगे इन्द्र का सुख भी ज़हर जैसा लगता है ! आहा...हा...!

कहाँ (अज्ञानी को) बाहर में मिठास लगती है (और यहाँ कहते हैं कि धर्मी को) वह ज़हर समान लगता है। लेकिन कब लगे ? आपस में मिलान करे जब तो (लगे न) ! आत्मा के आनंद से मिलान करे कि यह (आत्मा) तो आनंदमूर्ति है और ये (रागादि) सब तो ज़हर हैं। (इसप्रकार) मिलान करे तो जीव को आनंद के आगे ज़हर-सा लगे। परंतु मिलान करे ही नहीं - जाने ही नहीं तो ज़हर-सा कहाँ से लगे ? आहा...हा...! ऐसी बातें हैं।

ये तो बहिन के वचन सहज निकल गए हैं। अंतर अनुभवमें से सिद्धांतरूप निकल गए। अनुभव की वाणी है। ६०,००० पुस्तकें छप चुकी हैं। एक शब्द (वाक्य) तो (ऐसा) आया है ! है यहाँ ? मुंबई की सभा में चारों तरफ चाकळे (चकती) होते हैं। '**जागता जीव विद्यमान है...**' ऐसे शब्द हैं। इसमें है कहीं। कौनसा पन्ना ? इसमें है। ३०६ नंबर का बोल (है)। पन्ना ११९. आखरी पंक्ति (है)। '**जागता जीव विद्यमान है...**' क्या कहते हैं ? ज्ञायक - जानन स्वभाव का धारक जीव विद्यमान (है) मतलब ध्रुव है। ये सब अनित्य और अस्थिर हैं। प्रभु ! अंदर में ध्रुव है। जागृत... जागृत... जागृत... ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु ! विद्यमान है न ! विद्यमान है न अंदर में ! विद्यमान (है) मतलब ध्रुव है न ! आ...हा...हा...हा...! '**जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायेगा ?**' वह कहाँ जाए ? शरीर में जाए ? राग में आये ? जाए कहाँ ? आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! उनके शब्द (अंतर की) गहराई का अमृत है !! '**जागता जीव विद्यमान है वह कहाँ जायेगा ? अवश्य प्राप्त होगा ही।**' ध्रुव पर नज़र करे तो प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। विद्यमान है न ? 'विद्यमान' मतलब ध्रुव है न ! चैतन्य भगवान अंदर ध्रुव है, नित्य है, अनादि-अनंत है, स्वतःसिद्ध है। वह विद्यमान - ध्रुव

है उसे यदि प्राप्त कर ले तो जरूर तुझे आनंद मिलेगा। आ...हा...हा...! इसके बिना दूसरा कोई रास्ता है नहीं। आहा...हा...हा...! शब्द तो काफ़ी (गंभीर) हैं !

यहाँ (कहते हैं) '**आत्मा को ध्येयरूप रखकर...**' ध्येय माने लक्ष्य रखकर। '**दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये।**' ये चलता हुआ विषय। दूसरा बोल (चलता है)। '**मेरा हित कैसे हो ?**' आहा...हा...! मैं आत्मा हूँ, मेरा हित कैसे हो ? ऐसी जीव को लगन लगनी चाहिए। है ? '**मैं आत्मा को कैसे जानूँ ?**' ऐसा मानकर लगन व प्रयत्न करे। '- **इसप्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।**' जरूर मार्ग (प्राप्त) होवे, होवे और होवे ही। आहा...हा...!

क्या करे मकड़ी अपने जाले में जो फँसी ! आहा...हा...! एक जगह ऐसा लिखा है कि, मनुष्य को दो पैर हैं। वह मनुष्य की स्त्री से शादी होती है तब चार पैर होते हैं, दो और दो=चार मतलब वह पशु हुआ ! पशु को चार पैर होते हैं न ! शास्त्र में ऐसा लेख है। उसको जब बच्चा होता है तब छः पैर होते हैं। जब छः पैर हुए मतलब भँवरा हुआ। भँवरे को छः पैर होते हैं। फिर जब उसकी शादी होती है तो आठ पैर हुए, तब वह मकड़ी हुआ। मकड़ी को आठ पैर होते हैं, पता है कि नहीं ? पता भी नहीं होगा। मकड़ी को आठ पैर होते हैं, भँवरे को छः पैर होते हैं, पशु को चार पैर होते हैं (और) मनुष्य को दो पैर होते हैं। वैसे उलझते-उलझते एक, दो, तीन और चार...! आहा...हा...हा...! कहते हैं कि फिर वह मकड़ी की तरह अपनी ही लार में फँसता गया ! मुँह से लार निकालते-निकालते उसमें ही फँसकर मर गया, हो गया...!

यहाँ कहते हैं कि तू प्रयत्न को बढ़ा। आत्मा की लगन लगा प्रभु ! आत्मा... आत्मा... आत्मा की पहचान कर ! अन्य सब कुछ छोड़कर प्रयत्नपूर्वक आत्मा की पहचान कर। (तो) अवश्य तुझे मार्ग हाथ लगेगा। दो बोल हुए।

ज्ञानी की परिणति सहज होती है। हर एक प्रसंगमें भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता, परंतु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है - आत्मामें धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है।।३।।

तीसरा बोल। `**ज्ञानी की परिणति सहज होती है।**' क्या कहा इसमें ? जिसको धर्म होता है उसको आत्मज्ञान होता है। आत्मा का ज्ञान उसको वर्तता है। अतः उस धर्मी को `**ज्ञानी की परिणति...**' नाम अवस्था, परिणति मतलब दशा, ज्ञानी की दशा सहज होती है। वे स्वाभाविक ज्ञाता-दृष्टा रहकर आनंद में रहते हैं। आहा...हा...हा...! ऐसा मार्ग है।

`**ज्ञानी की परिणति...**' अर्थात् पर्याय। ज्ञानी की परिणति अर्थात् पर्याय - अवस्था `**सहज होती है।**' इसमें हठ नहीं होती। आहा...हा...! अंदर ज्ञानानंद, सहजानंद प्रभु का ज्यों ज्ञान और भान हुआ कि धर्म की शुरूआत होती है, वह सहज होती है। उनकी वह दशा सहज होती है, कृत्रिम नहीं।

`**हर एक प्रसंग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता,...**' क्या कहते हैं ? जिसको भेदज्ञानपूर्वक आत्मज्ञान हुआ उसको फिर प्रसंग-प्रसंग पर राग से अलग होने का प्रकार (याद) नहीं करना पड़ता। भिन्न हुआ सो हुआ। फिर उसको नया भेदज्ञान (विकल्पात्मक) करना नहीं पड़ता। अरे...! अरे...! आत्मा आनंदमूर्ति भगवान जो भीतर से अलग हुआ (उसको अब) `**हर एक प्रसंग में भेदज्ञान को याद करके उसे घोखना नहीं पड़ता...**' मतलब ? यह राग सो मैं नहीं, पुण्य सो मैं नहीं - ऐसा ज्ञानी को बार-बार करना पड़ता नहीं। आहा...हा...हा...!

उस राग के विकल्प से चाहे तो दया, दान, और व्रत का विकल्प - राग हो इससे भी धर्मी की दशा - परिणति भिन्न होती है। उसे भिन्नता को घोखना नहीं पड़ता कि, इस राग से मैं भिन्न हूँ, राग से मैं भिन्न हूँ। राग से भिन्न उसकी दशा - परिणति हुआ ही करती है। ऐसा उसका सहज स्वभाव है। आहा...हा...! धर्म की बात ऐसी है। कठिन लगे ! (बाहर में) प्रवाह दूसरा चलता है परंतु मार्ग तो कोई दूसरा है, इसलिए कठिन तो लगे !

`**परंतु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है...**' इसतरह धर्मी को - ज्ञानी को तो आत्मा का ज्ञान हुआ है अतः उनके उस ज्ञान में अब राग को भिन्न करना नहीं पड़ता। भिन्न किया सो किया। भिन्न परिणमन हुआ करता है। धर्मी को राग के विकल्प से (स्वयं को) भिन्न करने के पश्चात् राग से भिन्न करने का प्रयत्न फिर से करना नहीं पड़ता। आहा...हा...हा...! भेद हुआ सो हुआ। भेद यूँ ही कायम रहा ही करता है। (यानी कि) राग से भिन्न ज्ञान और आनंद में ही मस्त रहते हैं। भले ही बोले, चाहे इधर-उधर गमन करे परंतु उस क्रिया से अंदर भिन्न ही रहते हैं।

आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग ! अभी तो व्यवहार का भी ठिकाना न हो उसके कान (पर) ऐसी बातें आने पर (कठिन) लगे।

`**परंतु उनके तो ऐसा सहज परिणमन ही हो जाता है...**' अर्थात् आत्मा में एकबार (ऐसा) परिणमन (होने के पश्चात्) कायम ही रहता है। धर्मी (एकबार) राग से भिन्न हुआ फिर उसको राग से भिन्न होने (का प्रयत्न करना) नहीं पड़ता। आहा...! आनंद की धारा, ज्ञान की धारा धर्मी को धारावाहीरूप से सदा रहा ही करती है। इसको धर्म कहा गया है। कठिन है भाई ! आहा...हा...!

अभी तो सुना भी न हो (वह) भीतर में विचार कब करे ? अंदर में रुचि कब करे ? अभी तो सुनने न मिले।

(यहाँ) कहते हैं (ज्ञानी को) `- **आत्मा में धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है।**' धारावाहीरूप से ! है न ? `**धारावाही परिणमन वर्तता ही रहता है।**' आहा...हा...!

ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरेको प्रोत्साहन देनेवाले हैं। ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुंधा हुआ कषाय है। परंतु ज्ञान न होनेसे जीव कषायको पहिचान नहीं पाता। ज्ञान स्वयं मार्गको जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निस्पृह एवं स्वकी मौजमें ज्ञानको टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियमसे वैराग्यमय ही होता है।।४।।

अब चौथा बोल। `**ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं।**' यहाँ क्या कहते हैं ? आत्मा का ज्ञान (अर्थात्) शुद्ध आनंदस्वरूप का (ज्ञान) और पुण्य-पाप के राग का वैराग्य। (अर्थात्) पुण्य-पाप के प्रेम से छूटकर राग से विरक्त हुआ - राग से विरक्त हुआ वह वैराग्य और आत्मा का ज्ञान हुआ सो ज्ञान। ये ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देते हैं। आहा...हा...हा...! है ?

`**ज्ञान और वैराग्य**' वैराग्य उसे कहे कि आत्मा का ज्ञान जो राग रहित हुआ वह ज्ञान और राग में जो पुण्य और पाप के भाव हैं, उन दोनों से छूटकर विरक्त होना। (मतलब) राग में रक्त है, वहाँ से विरक्त होना। पुण्य और पाप के (परिणामों से), पुण्य के परिणाम में रक्त है वहाँ से विरक्त हो उसे वैराग्य कहें। स्त्री और बच्चों को छोड़ा, दुकान छोड़ दी और साधु बन गया इसलिए वैरागी है, सो बात नहीं - ऐसा कहते हैं। अंतरंग में पुण्य और पाप के भावों (से विरक्त होना वह वैराग्य है)। है ? `**ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देनेवाले हैं।**'

`**ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है...**' (अर्थात्) जिसको भीतर में आत्मज्ञान नहीं है, जिसको भीतर में आत्मानुभव नहीं है, उसका वैराग्य है सो सही वैराग्य नहीं। वह यदि कुटुंब-कबीला छोड़कर साधु हो जाए तो भी वह साधु है नहीं। क्योंकि ऐसा साधुपना तो अनंतबार लिया है। `मुनिव्रत धार अनंत बैर, ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' अनंतबार मुनिपना धारण किया, २८ मूलगुणों का पालन किया, (पाँच) महाव्रतों को अंगीकार किया जबकि ऐसे महाव्रतादि के परिणाम तो राग, आस्रव और दुःख है। आहा...हा...हा...! इससे जब वैराग्य आता है तब पुण्य व पाप - दोनों ही परिणाम से विरक्त होता है और आत्मा

में रक्त होता है। अतः आत्मा का ज्ञान (सो ज्ञान) और पुण्य-पाप (के परिणामों से) विरक्त नाम वैराग्य। दोनों एक-दूसरे के सहायक हैं। सूक्ष्म बात है भाई !

ये तो सादी भाषा में बहिन सहज बोले सो लिखने में आ गया। पुस्तकें काफ़ी छप चुकी हैं। यहाँ भी बहुत-सी आयी होगी। (श्रोता : तीन हज़ार आयी हैं)। साठ हज़ार छप चुकी हैं। मुंबई, कलकत्ता, दिल्ही, चारों तरफ प्रचार है। लंदन, अमरिका सब जगह पुस्तकें गई हैं। लेकिन (यह बात) थोड़ी सूक्ष्म तो लगे ! (क्योंकि) अन्यथा प्रचार बहुत और यह बात तो सुनने भी मिले नहीं तो इसपर विचार भी कब करे और अंतर में निवृत्ति तो लेवे ही कब ? आहा...!

यहाँ कहते हैं '**ज्ञान रहित वैराग्य...**' मतलब क्या ? जिसको आत्मा का ज्ञान (हुआ हो, यानी कि) राग से भिन्न दया, दान और व्रत के परिणामरूप विकल्पों से भी भिन्न ऐसा जिसको ज्ञान हो, उसको साथ ही साथ राग का वैराग्य (अर्थात्) विरक्तभाव अवश्य होता ही है। सूक्ष्म बात है। आहा...हा...! '**ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है।**' आत्मा के अनुभव बिना का वैराग्य सच में वैराग्य नहीं है। वह चाहे कुटुंब-कबीला छोड़कर, दुकान छोड़कर, पाँच-पचीस लाख की पैदाइश हो तो उसे छोड़कर साधु बन गया हो, पंच महाव्रत का पालन करता हो परंतु यदि अगर आत्मा का अनुभव नहीं है तो वह अज्ञानी है।

श्रोता :- आत्मा के अनुभव की कीमत है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अनुभव की कीमत है। प्रथम सम्यग्दर्शन की कीमत है। अनुभव कहो या समकित कहो (दोनों एकार्थ हैं)। ज्ञान माने आत्मा। (आत्मिक) ज्ञान रहित वैराग्य वह वास्तव में वैराग्य नहीं है। '**किन्तु रुंधा हुआ कषाय है।**' दबा हुआ कषाय है। रुंधा

हुआ माने दबा हुआ है। (राग) हटा नहीं, राग गया नहीं (परंतु) उसे दबाया है। वह जब उदय में आएगा (उसमें जुड़कर पुनः) चार गति में भटकेगा ! आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है परंतु बापू ! सत्य बात तो यह है।

६४ बाल ब्रह्मचारी बहिनें-बेटियाँ हैं। उनलोगों के बीच बहिन ये बोले तब नौ बेटियाँ ने उसे लिख लिया था सो यह प्रसिद्ध हुआ। वरना तो प्रसिद्धि में आता ही नहीं। उन्हें तो प्रसिद्धि में आने का भाव ही नहीं, कोई लिख रहा है उसकी भी उन्हें तो खबर नहीं। लिखा हुआ प्रसिद्ध करे तो उसकी भी उन्हें खबर नहीं। लेकिन यह बात अभी तो प्रसिद्धि में आ गई।

(यहाँ) कहते हैं '**ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है...**' यह क्या कहा प्रभु ! आत्मा राग, दया, दान के विकल्पों से भिन्न है, ऐसे आत्मा का जिसको अनुभव और ज्ञान नहीं है उसका वैराग्य तो रुंधा हुआ (कषाय है) अर्थात् कषाय को दबाया है। कषाय अभी गया नहीं, इसका अभाव नहीं हुआ (परंतु) दबाया है। (अतः) पुनः इसका उफान आएगा। आहा...हा...! बाहर से वैराग्य दिखे, स्त्री-बच्चें आदि को छोड़ दिया हो (इसलिए) वैरागी दिखता हो परंतु अंदर में आत्मज्ञान न हो तो वह वैराग्य (नहीं है।) उसको यथार्थ वैराग्य है ही नहीं। ज्ञान रहित वैराग्य रुंधा हुआ है - दबा हुआ कषाय है। आहा...हा...!

'**परंतु ज्ञान न होने से जीव कषाय को पहिचान नहीं पाता।**' आहा...हा...! ये क्या कहते हैं ? अंदर आत्मा ज्ञानमूर्ति, चिदानंद अतीन्द्रिय आनंद स्वरूप - उसे वह नहीं जानता इसलिए ज्ञान बिना कषाय को पहिचान सकता नहीं। कषाय किसको कहना ? दया, दान, व्रत के परिणाम को भी कषाय कहा जाता (है)। यह (बात)

को वह जान सकता नहीं। आ...हा...हा...हा...!

अंतर में आत्मा के ज्ञान बिना वैराग्य नहीं होता। परंतु ज्ञान न होने से वह जीव कषाय को पहिचानता तक नहीं। उसको कषाय होता है। महाव्रत के परिणाम है सो कषाय है। आ...हा...हा...हा...! (यह सुनकर) भी चिल्लाने लगेगा न ! ऐसा विकल्प उठता है। व्रत, अहिंसा, सत्य है सो वृत्ति - विकल्प है। भगवान (आत्मा) तो विकल्प से रहित है। ऐसे निर्विकल्प चैतन्य के ज्ञान बिना जो भी वैराग्य दिखता है वह दबा हुआ कषाय है।

(अब कहते हैं) '**ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,...**' और ज्ञान बिना (अर्थात्) अंतर सम्यक्ज्ञान बिना यह कषाय है, राग है - ऐसी पहचान नहीं कर सकता। ज्ञान का स्वाद राग के स्वाद से भिन्न है - ऐसा जिसने जाना नहीं वह राग के स्वाद को पहचान सकता नहीं। आहा...हा...हा...! ऐसा तो उपदेश...! मार्ग तो ऐसा है भाई !

अज्ञानी (जीव) ज्ञान के अभाव के कारण कषाय को पहचान सकता नहीं। '**ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,...**' राग से, विकल्प से भिन्न हुआ ज्ञान (अर्थात्) चैतन्यरस (स्वरूप) आत्मा के चैतन्यरस का - आनंद का अनुभव (जिसे) हुआ वह कषाय को पहिचानता है कि, यह राग है सो दुःखरूप है (और) मेरा स्वरूप है वह आनंदरूप है। आनंद और राग के भाग को (स्वाद को) दोनों को भिन्न करके जानता है। अज्ञानी को कषाय का ज्ञान नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? कितनी सूक्ष्म बातें ?

हमारे वहाँ सोनगढ़ में तो कायम (ऐसा) चलता है। ४५ साल से चलता है। कायम यही चलता है। हमेशा लोग सुबह-शाम (आते हैं)। यहाँ तो पहली बार आये हैं। इसलिए अनजाने लोगों को

थोड़ा कठिन लगे ऐसा है। (लेकिन) सुने तो सही ! (कि) चीज़ कोई दूसरी है ! आ...हा...हा...हा...!

'**ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है,...**' राग के विकल्प से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, ऐसा जो ज्ञान हुआ जीव को वह राग को पहिचानता है कि यह राग है जो मेरी चीज़ नहीं। अज्ञानी को राग की खबर नहीं है क्योंकि राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान और आनंद उसको है नहीं। आनंद नहीं है तो आनंद के साथ दुःख का मिलान करे कैसे ? राग है सो दुःख है। चाहे तो शुभराग हो, पुण्य-राग हो (परंतु वह) दुःख है। आहा...हा...!

आनंद के स्वाद की बराबरी में, धर्म की पहली सीढ़ी के आनंद की बराबरी में जब राग दुःखरूप लगे तब वह राग को जानता है। ज्ञान बिना राग को जान सके नहीं। जिसको आत्मज्ञान नहीं है वह राग को जान सकता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

'**और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता...**' क्या कहा इसमें ? अंदर में ज्ञानस्वरूप को जाना, राग से (मैं) भिन्न हूँ ऐसा भान हुआ इसलिए वह राग को पहचानता है और उसके साथ में वैराग्य जो है वह राग से विरक्त है। (अतः) वह वैराग्य राग में फँसता नहीं है। है ? '**वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता...**' ज्ञान राग को जानता है परंतु राग से विरक्त हुआ वैराग्य राग में फँसता नहीं। आ...हा...हा...हा...! ये तो शब्द थोड़े हैं ! महामंत्र है ! थोड़े समझने में मुश्किल लगे ऐसे हैं। बाहर की महिमा - चमक-दमक को देखने में अंतर आत्मा कहाँ है और कहाँ पड़ा रहा बेचारा ! बाहर की महिमा में यूँ ही उलझ-उलझकर मर गया। इसमें भी अगर पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़, पाँच-दस करोड़ मिल गये...! फिर तो हो चुका...! आँखें फाड़-

फाड़कर देखने लगे !! आहा...!

अरेरे...! प्रभु ! वह ज्ञान रहित राग को तू पहिचान सकेगा नहीं। अतः पहले आत्मा का ज्ञान कर। और ज्ञान करेगा तो तू राग को पहिचान सकेगा और राग को पहिचानने पर उस राग से विरक्तरूप जो वैराग्य है, वह वैराग्य राग में फँसेगा नहीं। समझ में आया ? आ..हा...हा...हा...!

**`वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सब से निस्पृह...'** जिसको आत्मज्ञान हुआ, समकित हुआ वह (पहले) पुण्य-पाप के भाव से रक्त था सो विरक्त हुआ। वह अब कहीं नहीं फँसता - कहीं भी राज़ी नहीं होता। दुनिया की किसी भी चीज़ में उसको रुचि होती नहीं। कोई भी चीज़ उसको नहीं पुसाती। क्योंकि `रुचि अनुयायी वीर्य' ! जिसको जिसकी रुचि हो उसका पुरुषार्थ उस तरफ मुड़े बिना रहता नहीं। जिसको जो पुसाता है उसका वीर्य इसके प्रति उछले बिना रहे नहीं। वैसे यदि आत्मा ही जिसको चाहिए उसका वीर्य आत्मा के प्रति उछले बिना रहे नहीं। `रुचि अनुयायी वीर्य !' जिसको जहाँ की रुचि उसका वीर्य वहीं कार्य करेगा। आहा...हा...हा...! बाहर में रुचि होगी तो उसका वीर्य वहाँ काम करेगा - राग और द्वेष, पुण्य और पाप में। धमा-चौकड़ी मचायेगा। आ...हा...हा...हा...! कठिन काम है!

यह तो अनुभव की वाणी है। जगत से कोई अलग ही जाति है। **`सबसे निस्पृह एवं स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है।'** (यानी कि) स्व के आनंद में टिकाये रखता है। आहा...! आत्मा का ज्ञान हुआ और राग से जो विरक्त हुआ उसे कहीं भी मौज नहीं लगती। अन्यत्र कहीं पर भी मौज नहीं लगती। (परंतु) **`स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है।'** अपने अतीन्द्रिय आनंद

में रहता हुआ, (जिसको) राग होने पर उस पर भी प्रेम नहीं रहता। उसे राग की रुचि (नहीं है)। दया, दान, व्रत की रुचि भी नहीं होती। (राग) आता है जरूर ! परंतु (उसका) स्वामी नहीं होता, धनी नहीं होता। स्वरूप का वह धनी है, वह स्वरूप का धनी रहता है, राग का धनी नहीं रहता। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। वैसे ही जिसको राग से विरक्त नाम वैराग्य है, वह वैराग्य राग में फँस जाय ऐसा नहीं बनता। वह ज्ञान आत्मा को जानता है और वैराग्य जो है इसलिए राग में फँसता नहीं है। इस प्रकार **`स्व की मौज में ज्ञान को टिका रखता है।'**

(अब कहते हैं) **`ज्ञान सहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है।'** आ...हा...हा...हा...! जिसको आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, ऐसे ज्ञानसहित उत्पन्न वैराग्य को वैराग्य कहते हैं। उसका जीवन वैराग्यमय ही होता है। उसका जीवन रागमय नहीं होता। विशेष कहेंगे....

वचनामृत - ६ से १२ २

स्वभावकी बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाय। `स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीरको चीरता हुआ हृदयमें उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय - इतना हृदयमें हो, और स्वभावको प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिकामें ऐसा होता है।।६।।

बहिन के वचनामृत। चार बोल चले हैं। पाँचवाँ पढ़ लेना। (अब) छठा बोल। छठवें बोल से लेते हैं। यह वचनामृत का छठा बोल। सूक्ष्म बात है भाई ! अपूर्व बात है। अनंतकाल से भीतर में चैतन्य आत्मा स्वभाव क्या है इसकी जीव को महिमा - माहात्म्य आया नहीं। (शास्त्र की) जानकारी भी अनंतबार की, क्रियाकाण्ड भी अनंतबार किये, पंच महाव्रत आदि के परिणाम भी अनंतबार धारण किये परंतु वस्तुस्वरूप के स्वभाव को प्रतीत में व अनुभव में नहीं लिया। (अनुभव नहीं होगा) तब तक जन्म-मरण का अंत नहीं आएगा।

सम्यग्दर्शन के बिना जन्म मरण का अंत नहीं आता। तो अब यह (सम्यग्दर्शन) कैसे हो ? (यह कहते हैं)।

`स्वभाव की बात सुनते ही...'** आत्मा (का) स्वभाव। आत्मवस्तु है वह स्वभाववान (है)। उसका स्वभाव ज्ञान और आनंद (है)। ये ज्ञान और आनंद जिसका स्वभाव (है) यह बात सुनते ही **`हृदय पर चोट लग जाय।' आहा...हा...! भीतर में चोट लग जाय कि अंदर में आत्मा आनंदस्वरूप है। राग से रहित है, विकल्प से रहित है। यहाँ (तो) वस्तुधर्म की बात है, भाई ! यहाँ तो कोई पाप छोड़कर पुण्य करो और पुण्य से आपका कुछ (कल्याण) होगा, यह बात इधर नहीं है। यह बात तो लोगों ने अनंतबार की और लोगों ने भोगी भी। पुण्य-पाप के भाव से रहित (भिन्न आत्मस्वभाव की बात कभी सुनी नहीं)।

शब्द थोड़े हैं (परंतु) भाव इसमें काफ़ी गहरा है। **`स्वभाव की बात सुनते ही हृदय पर चोट लग जाय।'** आहा...हा...हा...! अंतर में आत्मा आनंद और ज्ञानस्वरूप है - ऐसी भीतर में चोट लग जाय। पुण्य और पाप की दूसरी-दूसरी बात तो एक तरफ रह गई, परंतु जहाँ पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है (ऐसे) त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की यहाँ तो बात है। त्रिकाली ज्ञायक और आनंद जिसका स्वभाव (है) यह बात सुनते ही हृदय में चोट लग जाय।

`स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाय,...' सूक्ष्म बात है। आहा...हा...हा...! अंदर में आत्मा आनंद और ज्ञान का नाथ पूर्णानंद प्रभु है। अनंत आनंद और अनंत शांति... जिसमें अपार शांति और अपार आनंद भरा पड़ा है ऐसा जो भगवान आत्मा ! इसके स्वभाव की बात सुनते ही, (वह) भाव शरीर से भिन्न आरपार हो जाय (ऐसा) कहते हैं। तब जाकर इसकी प्राप्ति

होती है वरना इसकी प्राप्ति हो ऐसा है नहीं। आ...हा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है भाई ! (परंतु) अपूर्व बात है। आहा...!

`**रोम-रोम उल्लसित हो जाय...**' भीतर में रोम-रोम खड़े हो जाय। अंदर स्वरूप में स्थिर होने पर आनंद और ज्ञान का अनुभव होने पर रोम-रोम खड़े हो जाए। ऐसी बात आती है। याद है? `टोडरमल्लजी' की `रहस्यपूर्ण चिट्ठी' में (आती है)। `रोमांच होता है' - ऐसा आता है। पता है। बात सुनते ही भीतर में रोमांच खड़ा हो जाता है। आहा...हा...हा...! यह आत्मा !! अतीन्द्रिय आनंद का सागर ! अंतर अतीन्द्रिय ज्ञान का अनंत महिमावंत प्रभु ! क्या है यह !! ऐसे भीतर में आरपार उतर जाय।

`**रोम-रोम उल्लसित हो जाय...**' आहा...! बाहर की कोई बात सुनते हुए जीव को उमंग व उत्साह आ जाता है न ? वैसे यह बात सुनते हुए अंतर में उत्साह व उमंग आ जाय। आहा...हा...! `**इतना हृदय में हो...**' इतना जब हृदय में हो `**और स्वभाव को प्राप्त किये बिना चैन न पड़े,...**' आ...हा...हा...!

यह तो क्या है, `बहिन (पूज्य बहिनश्री)' थोड़ा बहिन-बेटियों के बीच (स्वाध्याय दौरान) बोले थे। जिसे लिख लिया गया तो ये बातें प्रसिद्धि में आ गई। भगवान की वाणी सुनकर अंतर अनुभव जो हुआ, उस अनुभवमें से यह वाणी निकली है। जगत को सूक्ष्म लगे, बाहरी प्रवाह में सबकी डोर (चलती है) इससे यह प्रकार अलग लगने से जीव को कठिन लगती है। बिलकुल अनभ्यासित लोगों को तो कठिन लगे। परंतु प्रभु यह करने पर ही छुटकारा है वरना जन्म-मरण का अंत-निवेडा नहीं आयेगा।

वह बात यहाँ करते हैं `**इतना हृदय में हो, और स्वभाव को प्राप्त किये बिना चैन न पड़े...**' आहा...हा...! भगवान अतीन्द्रिय

आनंदस्वरूप प्राप्त हुए विना उसे चैन न पड़े, `**सुख न लगे,...**' जीव को इसके बिना, आत्मा के बिना कहीं पर भी सुख न लगे, किसी भी चीज़ में सुख लगे नहीं। `**उसे लेकर ही छोड़े।**' अंतर में आत्मा के सुख स्वभाव को प्राप्त करके ही रहूँगा।

`**यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।**' सम्यक्दर्शन की प्राप्ति के पूर्व ऐसी यथार्थ भूमिका होती है (ऐसा कहते हैं)। आ...हा...हा...हा...! धर्म - सम्यग्दर्शन तो धर्म की प्रथम सीढ़ी है। प्रथम से प्रथम पाई है। इसके पहले यह स्थिति (यह) भूमिका अंदर में आनी चाहिए। आहा...हा...हा...! `**यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।**' ऐसी भूमिका आने पर आत्मा को अंतरंग अनुभवदशा प्राप्त होती है। तब जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान वेदन में आता है। जो बात धारणा में थी कि `यह आत्मा ऐसा है और ऐसा है' - वह बात जो धारणा मात्र में थी वह छूटकर वेदन में आ जाती है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म लगे !

उनके (साथ) तो केवल बेटियाँ बैठी थी, उन लोगों के बीच रात्रि में कुछ बोले होंगे जो किसीने लिख लिया होगा सो उनको तो पता भी नहीं था। बहिन-बेटियों ने लिख लिया। लिख लिया सो बाहर आ गया। वरना सोनगढ़ की ओर से तो बाईस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आठ लाख पुस्तकें जयपुर की ओर से प्रकाशित हुई हैं। इसप्रकार कुल मिलाकर तीस लाख पुस्तकें (प्रसिद्ध) हो चुकी हैं। फिर भी मैंने कभी किसीको नहीं कहा कि, यह पुस्तक छपवाईये। हम तो उस मामले में कभी पड़ते ही नहीं। एक व्याख्यान देने के अलावा (कुछ नहीं करते)। दुनिया दुनिया का करे और जाने। लेकिन यह (`बहिनश्री के वचनामृत') जब हाथ में आया - बहिन (की) वाणी जब हाथ में आयी तो मैंने कहा,

भाई ! इसकी लाख प्रति छपवाईये !! (आगे) तीस लाख (पुस्तकें) छपी इसके बारे में मैंने तो कभी नहीं कहा, हं ! कि ऐसा कीजिए ! ये मकान (मंदिर आदि) करोडों रुपया खर्च करके वहाँ (सोनगढ़ में) जो बनाये हैं, २६ लाख का तो एक मकान (`परमागम मंदिर') तो अभी बनाया। २६ लाख का !! मैंने किसीको नहीं कहा कि बनवाईये या आप यहाँ पैसा दीजिए और समर्पण कीजिए ! हम तो एक उपदेश मात्र देते हैं, बस इतना ! (लेकिन) ये बात - ये शब्द जब सामने आये - जब लक्ष में आये तब कहा, **`भाई ! यह पुस्तक अपूर्व है और इसकी लाख नकल छपवाईये** !!' ६० हज़ार तो छप चुकी हैं और-और भी काफ़ी छपवाने की तैयारी चालु है।

ऐसी भूमिका हो उसे आत्मा का आनंद स्वभाव - अनुभव (में) प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। इसके अलावा सिर्फ क्रियाकाण्ड या सिर्फ क्षयोपशमरूप धारणा बहुत कर ले इससे कोई आत्मा के आनंद का स्वाद आ जाए ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है। प्रभु ! यह छठा बोल हुआ।

जगतमें जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसेकी जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार आत्मामें पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्यायमें पुरुषार्थ ही आवश्यक है। पुरुषार्थके बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती। अर्थात् रुचिसे लेकर ठेठ केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।।७।।

सातवाँ बोल। **`जगत में जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसे की जरूरत पड़ती है,...**' दुनिया में तो यों कहते हैं न? (कि) पैसे के बिना सब्ज़ी मिले नहीं, पैसे के बिना दूध मिले नहीं, पैसे के बिना मकान मिले नहीं, पैसे के बिना किराये पर रहना मिले नहीं, इसप्रकार बिना पैसे तो चलता नहीं, ऐसी बात दुनिया में करते हैं। यह तो दृष्टांत है।

`उसी प्रकार आत्मा में पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ ही आवश्यक है।' आहा...हा...हा...! जीव की समय-समयवर्ती जो पर्याय है उसमें आत्मा प्रत्ययी पुरुषार्थ प्रतिसमय चाहिए। जब तो वह प्राप्त हो ऐसी चीज़ है। पहले उसका ज्ञान तो करे। इसका ज्ञान तो करे कि, मार्ग ऐसा है ! इसके अलावा दूसरा मार्ग - रास्ता है नहीं। यह ज्ञान करे तो इसके खयाल में आये फिर अंदर में प्रयोग करेगा। लेकिन अभी तो सही समझ का ठिकाना न हो वह प्रयोग तो कहाँ से करे ? और किस तरफ अपनी दिशा को मोड़े ?

यहाँ कहते हैं **`जगत में जैसे कहते हैं कि कदम-कदम पर पैसे की जरूरत पड़ती है, उसी प्रकार आत्मा में पग-पग पर अर्थात् पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ ही आवश्यक है।**' आहा...हा...! अंतर में पुरुषार्थ की जागृति चाहिए। जगत में कैसे उल्लास आ जाता है। पाँच-पच्चीस करोड़ की पूँजी हो, बेटे की शादी हो और इसमें पचास लाख - करोड़ खर्च करना हो, तब तो उसकी खुशी की सीमा नहीं, हर्ष की सीमा नहीं रहती। जीव को लगता है जैसे हमने क्या कुछ नहीं किया ! जबकि है केवल पाप ! तो यहाँ कहते हैं कि जब कदम-कदम पर तुझे पैसे के बिना नहीं चलता है वैसे यहाँ भीतर में कदम-कदम पर पुरुषार्थ बिना चलता नहीं।

अंतर में पर्याय-पर्याय में पुरुषार्थ चाहिए। यह सर्व प्रथम जीव को ज्ञान में आना चाहिए। आहा...हा...!

`**पुरुषार्थ के बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती।**' पुरुषार्थ के बिना एक भी पर्याय प्रगट नहीं होती (ऐसा कहते हैं)। आत्मा यूँ ही प्रगट हो जाए, ऐसा है नहीं। लेकिन यह `क्रमबद्ध' है न? क्रमबद्ध है वह एक महा सिद्धांत है। परंतु इस क्रमबद्ध में अकर्ता का पुरुषार्थ है। आहा...! राग का पुरुषार्थ तो नहीं करना है किन्तु पर्याय की ओर भी लक्ष नहीं है। अंतर भगवान सत्‌चिदानंद प्रभु परमात्मस्वरूप शक्ति के रूप में - स्वभाव के रूप में चैतन्यसिंह विराजमान है। यह चैतन्यसिंह है ! एक अंश जागृत होते ही - एक झपट्टा मारते ही कर्मों को चूर-चूर कर दे ऐसी जीव में ताकत है। समझ में आया ? बात तो ऐसी है। बापू !

उन (अज्ञानियों का) कहना है कि हम तो पापी हैं (इसलिए) पाप कम करने के लिए पुण्य (करने का) तो कहिये ! लेकिन पुण्य और पाप दोनों अनंतबार किये हैं, प्रभु ! यहाँ तो धर्म की बात है। पाप छोड़कर पुण्य करे तो वह भी संसार है। वह कोई आत्मा नहीं। आ..हा...हा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं `**रुचि से लेकर ठेठ केवलज्ञान तक...**' `रुचि अनुयायी वीर्य' ! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति ! ऐसी अंतररुचि उत्पन्न होने पर जीव का पुरुषार्थ नाम वीर्य अंतर स्वभाव के प्रति झुके बिना रहे नहीं। पर तरफ से हट जाये और स्व तरफ बस जाये। आहा...हा...हा...! पुरुषार्थ पर तरफ से हट जाये और स्व तरफ झुक जाये।

`**रुचि से लेकर...**' (अर्थात्) आत्मा आनंद स्वरूप ज्ञान की रुचि। रुचि माने `पुसाना'। बनिया जो माल उसे पुसाता हो वह माल

खरीद ने जाता है। तीन रुपये की चीज़ यहाँ साढ़े तीन रुपये या चार रुपये में बिकती हो तो वह माल उसको पुसाता है। तीन रुपये की चीज़ लाये और यहाँ पर भी तीन (रुपये) में बिके, या ढाई रुपये में बिके तो ऐसी चीज़ लायेगा ? वह चीज़ उसे (खरीदना) पुसाता है ? तीन रुपये की चीज़ लाये, तीन रुपया तो अभी साधारण (कहलाता है)। यह तो पहले की बात है। अभी तो तीन रुपया मतलब कुछ नहीं। पहले तो बारह आना में एक मन जुआर मिलती थी ! ढाई रुपये शक्कर मिलती थी। साढ़े तीन रुपये में तो बढ़िया से बढ़िया शक्कर मिलती थी। साढ़े तीन रुपये में मन।'

मेरी दीक्षा के समय एक छकड़ा भरकर शक्कर मँगवाई थी - २५ मन ! साढ़े तीन रुपये में एक मन ! लेकिन बहुत ऊँची जाति की। हमारे बड़े भाई ने घर में दीक्षा दी थी, उस दिन घर पर दी थी। इसको ६७ साल हो गये। दीक्षा देते वक्त, उस जमाने में दो हज़ार रुपये खर्च किये थे। वह शक्कर साढ़े तीन रुपया मन, परंतु कैसी ? एकदम बढ़िया ! इस शक्कर की भी जब इतनी कीमत है, वैसे अभी तो दाम बढ़ गया, उतने में ते एक किलो मिले ! अभी तो साढ़े तीन रुपये में एक किलो भी नहीं मिलती। अब पाँच रुपये किलो (मिलती है)। इसकी कीमत बढ़ गई। इसतरह जब कीमत जानता है तो कीमत चुकाकर वस्तु खरीदता है। तो आत्मा की कीमत ?

आ...हा...हा...! जिसके स्वभाव के सागर की महिमा का - माहात्म्य का पार नहीं उसकी कीमत करें कैसे ? इसकी कीमत कितनी ? अंतर में पुरुषार्थ का झुकाव हो व प्रतिसमय पर्याय अंतर आत्मा (की ओर) ढले उसको आत्मा प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। `**अर्थात् रुचि से लेकर ठेठ**

केवलज्ञान तक पुरुषार्थ ही आवश्यक है।' (ये) सात बोल हुए। आठवाँ पढ़ लेने जैसा है।

पुरुषार्थ करनेकी युक्ति सूझ जाय तो मार्गकी उलझन टल जाय। फिर युक्तिसे कमाये। पैसा पैसेको खींचता है - धन कमाये तो ढेर हो जाये, तदनुसार आत्मामें पुरुषार्थ करनेकी युक्ति आ गई, तो कभी तो अंतरमें ढेरके ढेर लग जाते हैं और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है।।९।।

नौवाँ बोल। `**पुरुषार्थ करने की युक्ति सूझ जाय...**' बहिन के शब्द बहुत संक्षेप में हैं। अंतर में पुरुषार्थ करने की युक्ति सूझ जाय (मतलब) कला सूझ जाय, ज्ञान में इसके भान संबंधित सूझ आ जाय `**तो मार्ग की उलझन टल जाय।**' उलझन में आने जैसा नहीं है। कि, इतना कठिन है इसलिए नहीं प्राप्त होगा, ऐसी उलझन में आने योग्य नहीं है। यह सहज सहजानंदमूर्ति प्रभु ! जिसको पर की अपेक्षा है नहीं ऐसी चीज़ भीतर में पड़ी है, जागृत ज्योति मौजूद है इसके पुरुषार्थ की युक्ति संबंधित सूझ आनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...हा...! इस ओर की कला की सूझ आनी चाहिए। पर संबंधित युक्ति में ज्यों होशियारी का प्रयोग करता है वैसे यदि आत्मा संबंधित कला में होशियारी का प्रयोग करे

तो प्राप्ति हो सकती है। आ...हा...हा...! है ?

`**फिर युक्ति से कमाये।**' अंदर में चाबी हाथ लगे (कि) आनंदस्वरूप हूँ। पुण्य और पाप के विकल्प में दुःख है, इस दुःख से अंदर में आनंदस्वरूप भिन्न है। शुभभाव हो चाहे अशुभ(भाव) हो - दोनों में दुःख है। दोनों में आकुलता है। इससे रहित ज्ञान और आनंद की कला अगर सूझे (तो) अंदर में जाये (और) फिर वह पुरुषार्थ किये बिना रहे नहीं।

`**धन कमाये तो ढेर हो जाये,...**' ऐसा नहीं कहते ? दुनिया ऐसे नहीं कहती ? कि `**धन कमाये तो ढेर हो जाये,...**' फिर बुद्धि की कोई जरूरत नहीं। पाँच करोड़ या दस करोड़ रुपये होने के बाद तो करोड़ की संख्या बढ़ती ही जाती है। इसलिए `धन रळे ने ढगला थाय' ऐसी अपने गुजरातियों में कहावत है।

(जैसे) यहाँ धन कमाये तो ढेर हो जाये - `**तदनुसार आत्मा में पुरुषार्थ करने की युक्ति आ गई,...**' आ...हा...हा...हा...! बात सूक्ष्म तो काफ़ी है लेकिन ऊँची है, भाई ! वह अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप भगवान वीतरागमूर्ति है। वीतराग स्वरूप जो प्रगट होता है वह कोई बाहर से नहीं आता। अंतर में जो है सो बाहर आता है। प्राप्त की प्राप्ति है। भीतर में स्वयं तो वीतरागमूर्ति प्रभु है। आहा...हा...हा...! स्वयं परमेश्वर की जाति का है। कैसे स्वीकार आये ? दो बीड़ी पीने पर तो भाईसाब को पाखाने में टट्टी लगे !! ऐसे जिसके अपलक्षण हो उसको आत्मा सुनाना !! सिगरेट पीते हैं न ? टट्टी करने बैठा हो जंगल में तो भी हाथ में बीड़ी हो ! जब तो जंगल में भी ठीक से टट्टी लगे !! इतने तो अपलक्षण !! उसको यह कहना कि, भीतर में आत्मा ऐसा है !!

अतीन्द्रिय आनंद का नाथ, सागर भरा है, प्रभु ! `तारी नज़रने

आळसे रे...' ऐसा वहाँ कहते हैं। - `नज़रने आळसे रे, में नीरख्या न नयणे हरि, मारी नज़रने आळसे रे, में नीरख्या न नज़रे हरि' हरि मतलब कौन ? आत्मा। हरि क्यों कहा ? क्योंकि अज्ञान व राग-द्वेष को हर ले सो हरि। मिथ्याभ्रांति, अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करे वह हरि। वह स्वयं हरि है। आहा...हा...हा...! समझ में आया ? `नज़रने आळसे रे, नीरख्या न नयणे हरि' कर्म का ज़ोर (है) या उसके कारण अटका हूँ सो बात है नहीं। जीव नज़र की आलस के कारण भीतर में नहीं जाता।

यह नज़र की आलस छूटने पर, कला की सूझ आने पर `**आत्मा में पुरुषार्थ करने की युक्ति आ गई, तो कभी तो अंतर में ढेर के ढेर लग जाते हैं...**' आ...हा...हा...! यानी क्या कहते हैं ? भीतर में राग से रहित चैतन्य स्वरूप का पुरुषार्थ जागृत हुआ और यदि अंतर में गया तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद के ढेर लग जाये। पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का पूरा वेदन आ जाये। जबकि कभी ज्यों का त्यों रहता है (अर्थात्) जितना वेदन है उतना रहता है। है ?

`**और कभी सहज जैसा हो वैसा रहता है।**' कभी तो ढेर के ढेर लग जाये तो कभी जैसा हो वैसा भी रहता है। पुरुषार्थ उग्रतर न हुआ तो। अरे...! ऐसी बातें अब...! तत्त्व पूरा भीतर में पड़ा है। दृष्टांत नहीं दिया था ? लींडीपीपर - छोटी पीपल। कद में छोटी, रंग में काली, गुण में चौंसठ पहर तीखास (होती है)। गुण चौंसठ पहर (है)। चौंसठ पहर मतलब ? सोलह आना नाम एक रुपया। मतलब पूरी की पूरी। वह कद में छोटी, रंग में काली फिर भी चरपराहट पूरी भरी है। बाहर में काला (रंग है) परंतु भीतर में हरा रंग है। रंग हरा और तीखास पूरी सोलह

आना भरी है। कद में इतनी छोटी फिर भी !

यह भगवान आत्मा तो शरीर प्रमाण है। इतना कद होने पर भी अंदर में अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत वीतरागता, अनंत प्रभुता के ढेर लगे हैं। आ...हा...हा...हा...! मुख्य - मूल आत्मा को छोड़कर काफ़ी बातें चलती हैं। इसलिए आत्मा क्या चीज़ है ? इसका उसे माहत्म्य नहीं आता। ये करीये... ये करीये... ये करीये... और ये करीये... (चलता है)। परंतु यहाँ तो जानना-देखना यह आत्मा का स्वरूप है - ऐसी जो कला भीतर में जागृत हुई तो कभी तो भीतर में जाने पर आनंद की धारा एकदम बहने लगे ! तो कभी आनंद की धारा पूर्ववत् ज्यों की त्यों भी रहती है। आ...हा...हा...हा...!

ये बहिन के वचन !! बहिन तो भगवान के पास थे। सीमंधर प्रभु विराजमान हैं। महाविदेह में सीमंधर भगवान विराजमान हैं। अभी हैं। अरबों साल हो चुके और अभी आगे भी अरबों साल रहेंगे। (यहाँ भरतक्षेत्र के) बीसवें मुनिसुव्रत (भगवान के) समय में उन्होंने दीक्षा ली थी और आगे की (भविष्य की चौबीसी) के तेरहवें तीर्थंकर का उदय होगा तब मोक्ष पधारेंगे। इतने अरबों सालों तक महाविदेह में केवलज्ञान सहित प्रभु अभी विराजमान हैं। (बहिन) वहाँ थे। वहाँ थोड़ी-सी भूल हो गई, माया व कपट आखिर में (हो गये) इसलिए यहाँ स्त्री पर्याय में आ गये। लेकिन बाद में बहुत ही छोटी उम्र से अंतरंग में हुलास आने पर अंतर में अनुभव हुआ है। (संवत) १९८९ की साल में (अनुभव हुआ है)। आहा...हा...हा...! कितने वर्ष हुए ? ४७ (वर्ष हुए)। वह धारा बहती है...! उन्हें जब से वह धारा हुई है (तब से) अप्रतिहत बहती है। उस (धारामें से) ये शब्द निकल गए हैं। आहा...! है ? कभी तो ढेर लग जाए।

आ...हा...हा...! यह नौ(वाँ बोल हुआ)।

दसवाँ (बोल)। `**हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...**' आहा...हा...! सब भगवान हैं भीतर में !! इसकी पर्याय में - अवस्था

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हींको राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपनेको भले ही चाहे जैसा मानते हों, परंतु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।।१०।।

में भूल है। यह तो एक समय की भूल है वरना वस्तु जो द्रव्य है सो तो चैतन्यमूर्ति सिद्धस्वरूप भगवान है। जिसकी पर्यायदृष्टि छूटी वह सबको अंतर में द्रव्यदृष्टि से सिद्ध समान देखता है। कठिन बात है, भगवान !

`**हम सबको सिद्धस्वरूप ही...**' सिद्धस्वरूप `ही' `**देखते हैं,...**' यहाँ बहिन ऐसा कहते हैं - हम तो सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं ! क्यों ? (क्योंकि) `**हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं।**' हमारे चैतन्य को हमने देखा इसलिए सब में ऐसा ही पूरा चैतन्य है। इसतरह द्रव्यदृष्टि से हम उसे - द्रव्य को देखते हैं। इसकी पर्याय में भूल है, संसार है - यह बात रही अपनी जगह, उसकी

तो वह जाने। आहा...! परंतु उसका जो स्वभाव है, वह शुद्ध चैतन्य (स्वभाव) जैसे मेरा प्रगट हुआ है, पर्यायबुद्धि छूटकर वस्तु (की) द्रव्यबुद्धि जो हुई है, वैसे ही वे भी भगवान (हैं)। द्रव्यबुद्धि से सब ऐसे ही हैं। सब आत्माएँ भगवान सिद्धसमान हैं। आ...हा...हा...! `श्रीमद्' में आता है न ? `सर्व जीव छे सिद्धसम।'

`श्रीमद् राजचंद्र' हो गए। ३३ साल की उम्र में देह छूट गई है। एकावतारी होकर अभी स्वर्ग में गये हैं। वैमानिक स्वर्ग है वहाँ गये हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे, केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष जायेंगे। जवाहरात का धंधा था। लाखों रुपयों का बड़ा व्यापार (था)। उन दिनों ! उस वक्त ! यह तो ५० की साल की बात है। तब उन्होंने कहा था आहा...हा...! `अशेष कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे !!' कुछ अंश में राग भाव रह गया है, अभी राग छूटता नहीं है, इसलिए हमको ऐसा लगता है कि, `अशेष कर्मनो भोग छे, भोगववो अवशेष रे, तेथी देह एक धारीने जाशुं स्वरूप स्वदेश रे।' एकाध भव मनुष्य का धारण करके स्वदेश में परमात्मा होनेवाले हैं। आहा...हा...हा...! गृहस्थाश्रम में थे, समकिती थे, पत्नी थी, बेटा-बेटी थे, लाखों का व्यापार (था), मुंबई में जवाहरात का धंधा था। परंतु नारियल में जैसे गोला छूटा रहता है, नारियल में जो भीतर में गोला छूटा पड़ जाए ऐसे नारियल की तरह समकिती का आत्मा शरीर में राग से छूटा गोला रहता है। आ...हा...हा...हा...! भगवान ! तेरी चीज़ की अंदर बलिहारी है। अंदर अलौकिक बात है !! कहते हैं कि हमको तो थोड़ा राग दिखता है (इसलिए) ऐसा लगता है कि एकाध देह धारण करनी पड़ेगी और उस देह को धारण करके जायेंगे स्वरूप स्वदेश। हम हमारे स्वरूप के स्वदेश में जायेंगे।

बहिन के (वचनामृत) में ऐसा लिखा है। कहीं पर (आता) है न ? भीतर में कहीं पर है। किस जगह है ? कौन-सा नंबर है ? किसी एक जगह पर है तो सही। पन्ना-१७६, - बोल-४०१। बराबर...बराबर... क्या कहते हैं ? `**ज्ञानी का परिणमन विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर ढल रहा है।**' है ? धर्मी जीव का झुकाव, अंतर में आनंद स्वरूप भगवान में पुरुषार्थ का झुकाव हो रहा है। `**ज्ञानी निज स्वरूप में परिपूर्णरूप से स्थिर हो जाने को तरसता है।**' धर्मी भीतर में पूर्णरूप से स्थिर होने के लिए तरसता है। `**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।**' क्या कहते हैं ? जैसे `श्रीमद्' ने कहा न ? कि, `देह एक धारीने जाशुं (स्वरूप) स्वदेश' - स्वदेश माने आत्मा। पुण्य और पाप है वह परदेश है, परदेश है...! आ...हा...हा...हा...! देखो ! (क्या कहा) ? `**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है।**' आ...हा...हा...हा...! पुण्य और पाप का जो विकल्प उठता है प्रभु ! वह आत्मा का स्वदेश नहीं। अरे...! `**इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?**' है अंदर ? आहा...हा...! शुभराग में आने पर भी (ऐसा लगता है कि) अरे...! हम परदेश में कहाँ आ पहुँचे ? शुभ में (ऐसा लगता है) हं...! दया, दान, भक्ति के राग में आने पर भी अरे...! हम कहाँ हमारे देश को छोड़कर आ गये ? आ...हा...हा...! ऐसी बात है। प्रभु ! सूक्ष्म तो है लेकिन परम सत्य है। इस सत्य का सुनने मिलना भी महादुर्लभ है ! भाग्य हो तो मिले ऐसा है बापू ! आ...हा...हा...!

`**यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।**' आ...हा...हा...! अंदर शुभ का भाव आता है, धर्मी को भी आता है; भक्ति का, दया का, दान का (भाव आता है) परंतु हमको इसमें नहीं सुहाता। आ...हा...हा...! है ? `**यहाँ हमारा कोई नहीं है।**' इस पुण्य के परिणाम में हमारा कोई नहीं है। `**जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनंद,...**' ज्ञान, श्रद्धा मतलब समकित, आनंद, `**वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है...**' आ...हा...हा...! जहाँ अंतर में ज्ञान, दर्शन और आनंद (बसते हैं) वह हमारा परिवार है। पुण्य-पाप परिवार है सो आत्मा का परिवार नहीं। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है। भगवान ! आहा...हा...!

`**वह हमारा स्वदेश है।**' `श्रीमद्' ने कहा न कि (हम) स्वदेश जायेंगे, तो यह स्वदेश है। आ...हा...हा...! शुभ और अशुभभाव आते हैं, धर्मी को भी होते हैं किन्तु वहाँ उसको रुचता नहीं, सुहाता नहीं। रुचि और सुहावनापन तो भीतर आत्मा में है। आहा...हा...! उसे यहाँ समकिती और धर्म की दशावंत कहा जाता है। आहा...! `**वह हमारा स्वदेश है। अब हम उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं।**' आहा...हा...हा...!

पुस्तक तो बाहर आ गई। पढ़ा है ? पूरा पढ़ लिया ? प्रकाशित हुए तो काफ़ी समय हो चुका। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**उस स्वरूपस्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से...**' आ...हा...हा...! हमें अब त्वरा से (माने) शीघ्रता से `**अपने मूल वतन में जाकर...**' मूल वतन (कहा)। वह आनंद और ज्ञान का धनी (है) वह मूल वतन (है)। आ...हा...हा...! ये पुण्य और पाप के भाव मेरा मूल वतन नहीं। आ...हा...हा...! ये महाजन का देश छोड़कर यहाँ आफ्रिका में आ गये, यह वतन आपका नहीं !

यहाँ कहते हैं कि हमारा जो देश है वहाँ अब हम जाना चाहते हैं। परदेश में अब रहना नहीं चाहते। आहा...हा...! `**हमें त्वरा से अपने मूल वतन में जाकर...**' मूल वतन (यह) आत्मा! आ...हा...हा...! अतीन्द्रिय आनंद का नाथ भगवान वह आत्मा का

मूल वतन है। शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप है सो आत्मा का (मूल) वतन नहीं, नाथ ! आ...हा...हा...! `**मूल वतन में जाकर आराम से बसना है जहाँ सब हमारे हैं।**' अंतर में जिस वतन में हम जाना चाहते हैं वहाँ सब हमारे हैं। ज्ञान, दर्शन, आनंद, शांति, स्वच्छता, प्रभुता - यह हमारा दश है, ये सब हमारे हैं। पुण्य और पाप हमारे नहीं। आहा...हा...! सम्यक्‌दर्शन होनेपर - अनुभव होनेपर यह रीत और ऐसी रीत से जागृत दशा होती है। आहा...हा...!

धर्म यह कोई साधारण (बात नहीं) कि यह पूजा कर ली, भक्ति कर ली और पाँच-पचीस लाख खर्च कर दिये इसलिए हो गया धर्म ! (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...!

यहाँ तो हमारा देश जहाँ है वहाँ (सब) हमारे हैं। वहाँ हमारा वतन है, वह हमारा देश और वह हमारा स्थान है। वह हमारा देश (है)। वहाँ हमें जाना है। आहा...हा...!

यहाँ बात तो अपनी इधर से चली न ? आहा...! यहाँ आया न ? `**हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...**' अपना चलता था वह दसवाँ बोल। इसका मतलब क्या ? कि सिद्धत्व जो है, उसमें तो सर्व जीव सिद्ध समान स्वरूपरूप ही है। पुण्य और पाप का राग यह कोई अपना स्वरूप नहीं है। इसलिए `**हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...**' हड्डियाँ चाहे स्त्री के शरीर की हो चाहे किसी के भी शरीर की हो, आत्मा कोई हड्डीमय नहीं हो जाता। किसीको पुण्य-पाप के भाव तीव्र होते हैं तो किसीको मंद होते हैं, परंतु आत्मा पुण्य-पापरूप नहीं होता। वह तो अनादि अनंत निर्लेप और निरावरण (है)। सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य वह स्वदेश है। आ...हा...हा...हा...! ऐसा सुनना भी कठिन लगे।

मुमुक्षु :- भाग्यवान को ही मिले ऐसा तो !

पूज्य गुरुदेवश्री :- (भाग्यवान) को ही मिले ऐसा है, बात तो सही (है)। बापू ! आहा...! यह वस्तु ऐसी है, दूसरों को भले ही न लगे। व्यापारमें से समय मिले नहीं। इसमें ऐसी बातें बिलकुल (अनजानी लगे)। बापू ! कोई कहते हैं कि हम तो अभी पाप में पड़े है तो इसमें से कुछ पुण्य में तो ले जाओ ! लेकिन यहाँ हमारे पास तो पुण्य और पाप की बात है नहीं, यहाँ तो धर्म की बात है। जिसको धर्म समझना हो, जिसको धर्म करने की भावना हो, धर्म की रुचि हुई हो उसके लिये यह बात है। प्रभु ! पुण्य और पाप तो अनंतबार किये और अनंतबार भटकता रहा।

यहाँ कहते हैं `**हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...**' आहा...हा...! सब आत्माएँ चैतन्यस्वरूप हैं। उसकी पर्याय में भूल है सो तो अवस्था है। द्रव्य जो है वह तो चैतन्य सिद्ध स्वरूप ही है। त्रिकाल निरावरण (है)। वस्तु जो है सो तो त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रतिभासमय है। ऐसा चैतन्य जो खुद के अनुभव में आया तो हम तो सबको चैतन्य ही देखते हैं कि भीतर में यह चैतन्य प्रभु है। बाहरी चीज़ को जीव भले ही अपनी माने, परंतु इस आत्मा की (अपनी) पर्यायदृष्टि छूटने से दूसरों को भी पर्यायदृष्टि से नहीं देखता। पर्याय का ज्ञान करे किन्तु उसका आदर न करे।

अंदर में चैतन्य सिद्ध समान है। आ...हा...हा...! है ? आया न ? वह भले ही अपने को चाहे जैसा माने किन्तु `**हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं।**' वह क्या कहा ? वस्तु जो है चैतन्य प्रभु ! वह राग-द्वेषरूप है ही नहीं। राग-द्वेष तो पर्याय में भिन्न - अलग चीज़ है। अतः जिसको चैतन्य का ज्ञान हुआ वह दूसरों को भी चैतन्य ही देखता है। वह चैतन्य प्रभु है ! राग

है, द्वेष (है) वह कोई उसके चैतन्य का नहीं। वह स्वयं चैतन्य को चैतन्य देखता है वैसे ही दूसरों को भी चैतन्यरूप ही देखता है। आहा...हा...हा...!

`**हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं।**' आहा...हा...हा...! क्या कहा इसमें ? यह प्रभु आत्मा है वह शुद्ध (स्वरूपरूप है)। राग, द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। इसका जिसको ज्ञान हुआ, भान हुआ वह दूसरे सभी आत्माओं को `आत्मा ऐसा है' - यों देखता है। वह (सामनेवाला) आत्मा भले ही स्वयं को ऐसा न माने, वह भले ही राग-द्वेष को अपना माने, शरीर को अपना माने, परंतु चैतन्य है वह उस रूप हुआ ही नहीं। इसलिए यह आत्मा उसको चैतन्यमय देखता है। वह स्वयं को राग-द्वेषवाला मानता है, परंतु यह (धर्मीजीव) ऐसा नहीं मानता। स्वयं को राग-द्वेषवाला नहीं मानता इसलिए पर को भी राग-द्वेषवाला आत्मा नहीं मानता। आ...हा...हा...! ऐसा उपदेश है।

`**वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परंतु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ...**' क्या कहा ? चैतन्य का जिसको भीतर में भान हुआ, चैतन्य प्रकाशित हुआ हो, राग से पृथक् चैतन्य का जिसको अनुभव हुआ हो, और चैतन्य के आनंद का स्वाद सम्यग्दर्शन होने पर जिसको आया हो (वह सबको चैतन्य ही देखता है)। कोई भी जीव अपने को चाहे कैसा भी मानता हो, लोग अपने को चाहे कैसा भी समझे। `**परंतु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ...**' आ...हा...हा...! जिसको चैतन्य स्वभाव का ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ है `प्रकाशित हुआ' इसका मतलब ऐसा है। भीतर में आनंद का स्वाद आता है, वह स्वाद ही आत्मा है। तो उसीप्रकार सबके आत्माओं को देखता है। आ...हा...हा...हा...! ऐसा सम्यग्दृष्टि का

विषय है। सम्यग्दर्शन कोई साधारण चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान भी झूठा, चारित्र भी झूठा, व्रत, तप और भक्ति सबका कोई मूल्य नहीं। आ...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं `**जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।**' द्रव्य के रूप में हं...! आहा...हा...! वह भगवान आत्मा है, चैतन्यस्वरूप है, आनंदस्वरूप है - वह भले ही पर में आनंद माने। परंतु वस्तु स्वयं आनंद (स्वरूप) मिटकर कोई पर में दुःखरूप हो नहीं जाती। जिसकी पर्यायदृष्टि छूटी व आत्मदृष्टि हुई वह दूसरों को पर्यायदृष्टि से न देखकर द्रव्यदृष्टि - द्रव्य शुद्ध है ऐसे उसको खुद चैतन्य देखता है। वह आत्मा है। पुण्य-पाप है सो आत्मतत्त्व नहीं। (क्योंकि) नौ तत्त्वों में पुण्य-पाप भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं। नौ तत्त्व हैं कि नहीं ? जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। जब आत्मतत्त्व से पुण्य-पाप तत्त्व भिन्न है तो जिसने उस भिन्न तत्त्व को पहचाना वह दूसरों को भी भिन्न तत्त्वरूप देखता है। आहा...हा...हा...! इतनी सूक्ष्म बातें !

कभी सुनने मिला न हो। दुनिया में मजदूरी करते हुए (समय तो मिले नहीं)। सारा दिन मजदूरी करता रहे। बड़ी मजदूरी ! सुबह से शाम ! यह करूँ, वह करूँ, और यह करूँ...! सारा दिन कषाय की मजदूरी करता है। आहा...!

`**जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है।**' आहा...हा...हा...! ये दस बोल हुए। ग्यारहवाँ बोल थोड़ा सूक्ष्म है इसलिए समझ में नहीं आयेगा। जगत को अपवाद (मार्ग) और उत्सर्गमार्ग समझना थोड़ा कठिन पड़ेगा। वह प्रवचनसार का अधिकार है।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्यके तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तलमें ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूतिके कालमें या बाहर उपयोग हो तब भी तल परसे दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्यके पातालमें पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफामें, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधनाकी सहज दशा साधी हुई है। (**बोल - १२**)

अब बारहवाँ बोल। `**जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई...**' अर्थात् यह चैतन्यस्वरूप भगवान शुद्ध पवित्र है और पुण्य-पाप के राग से वह भिन्न है, ऐसी धर्मदृष्टि जिसको हुई है। धर्मदृष्टि कहो चाहे द्रव्यदृष्टि कहो या समकित कहो (सब एकार्थ हैं)। `**जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।**' क्या कहा इसमें ? आत्मा में जो राग है और राग को जानने की जो वर्तमान पर्याय है, उस पर्याय के पीछे जो वस्तु है वह उसका तल है, उसका पाताल है।

राग को जाननेवाली अभी जो ज्ञान की पर्याय है, उस एक

समय की पर्याय के (पीछे) अंतर में, पाताल ज्यों का त्यों, अंतर में पाताल अंतर आत्मा है, वह उसका तल है। जगत में (दूसरी वस्तुओं) का पाताल हाथ लगता है, समुद्र के नीचे पाताल होता है फिर इसके ऊपर (पानी होता है), इसका (आत्मा का) तो तल हाथ लगना मुश्किल है, (ऐसा) कहते हैं।

एक समय की पर्याय द्रव्य पर तिर रही है, द्रव्य नाम वस्तु पर तिर रही है अतः उस पर्याय के तल पर - द्रव्य पर उसकी दृष्टि पड़ी है। आहा...हा...हा...! इतना कठिन लगे ! आपकी तरफ से ही यह बात छपवाई गई है। आहा...!

मुमुक्षु :- आपश्री ने ही यह बात प्रसिद्ध की है। यह बात तो थी ही कहाँ ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बात (तो) सही है।

`**दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।**' इसका मतलब ? भगवान आत्मा जो शुद्ध चैतन्य तल है, अंदर (ऐसी) जिसकी भूमि (है), उस पर जो पर्याय है और उस पर जो राग है, उस राग को न देखते हुए, पर्याय को न देखते हुए, पर्याय इसके तल को मतलब ध्रुव को देखती है। यह पर्याय है वह ध्रुव को देखती है। वह उसका तल है। आहा...हा...! है ?

`**उसकी दृष्टि** (**अब चैतन्य के**) **तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है।**' मतलब ? ध्रुव जो चीज़ है, नित्यानंद प्रभु ! वहाँ उसकी वर्तमान पर्याय ढली है। `एकमेक हो गई है' मतलब पर्याय और द्रव्य एकमेक (हो गये ऐसा नहीं), (परंतु) राग में एकत्व था सो (छूटकर) द्रव्य में एकत्व हुआ, इसलिए `एकमेक हो गई' ऐसा कहा जाता है। वरना पर्याय है सो द्रव्य में एकमेक नहीं होती। पर्याय पर्यायरूप रहती है (और) द्रव्य द्रव्यरूप रहता

है। अर्थ कठिन है।

`**परिणति एकमेक हो गई है।**' परिणति एकमेक हुई है - इसका अर्थ ? वर्तमान में भीतर चैतन्य को देखते हुए उसकी वर्तमान दशा भीतर चैतन्य की ओर ढल गई है। ढल गई है (इसे) एकमेक हो (गई) है ऐसा कहा जाता है। वरना पर्याय और द्रव्य (दोनों) वास्तव में एकमेक नहीं होते। दोनों भिन्न चीज़ हैं। पर्याय की मुद्दत एक समय की है जबकि ध्रुव की मुद्दत त्रिकाल है। दो चीज़ ही भिन्न हैं, अंदर में भिन्न है। राग से तो भिन्न है परंतु पर्याय से भी अंदर में द्रव्य भिन्न है सो भिन्न है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं। आहा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात आयी है। यह ध्रुव इसका तल है। वह पर्याय तल को देखती है।

(अब कहते हैं) `**चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।**' धर्मी की दृष्टि चैतन्य के तल पर है। यानी कि ध्रुव है वहाँ दृष्टि पड़ी है। आहा...हा...हा...! ऐसा उपदेश...! दूसरी स्थूल बातें सुनी हो - व्रत कीजिए, उपवास कीजिए, त्याग कीजिए, तपस्या कीजिए - वह सब फट से समझ में आ जाए। क्योंकि अनादि का अभ्यास है। एक सेकण्ड भी भीतर में यह चैतन्य तत्त्व कौन है इसके सामने नहीं देखा, नाहीं कुछ किया (इसलिए) चौरासी में भटका है।

यहाँ तो कहते हैं - (चैतन्य) तल में उसकी पर्याय एकमेक हुई है। पहले राग में जो एकत्व था वह राग से (एकत्व) छूटकर उसकी पर्याय आत्मा के साथ एकमेक हुई है। एकमेक (हुई है) मतलब उस तरफ ढल गई है। `एकमेक' का अर्थ उस तरफ ढल चुकी है। पर्याय और द्रव्य एक नहीं होते। पर्याय है सो द्रव्य पर तिरती है। पर्याय द्रव्य में प्रवेश नहीं करती। वह पर्याय

द्रव्य को जानती है। द्रव्य का जितना सामर्थ्य है उतना पर्याय जानती है फिर भी वह पर्याय द्रव्य में गई नहीं। ठीक वैसे ही पर्याय में वह द्रव्य आया नहीं। यह द्रव्य का सामर्थ्य है जो कि (जानने में - प्रतीति में) आया है। सूक्ष्म है, भाई ! आहा...हा...! यह पूरा अधिकार सूक्ष्म है।

`**चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है।**' धर्मी की (दृष्टि) तो चैतन्य-तल नाम ध्रुव (उस पर ही है)। एक समय की अवस्था पर से दृष्टि छूटकर त्रिकाली ध्रुव पर दृष्टि है।

`**स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो तब भी...**' क्या कहते हैं ? आत्मा अपना अनुभव करता हो उस वक्त या अनुभव में न हो और राग की उत्पत्ति के काल में भी उसकी दृष्टि तो (चैतन्य के) तल पर ही है। त्रिकाली स्वभाव पर दृष्टि है। वह तो अनुभव के समय भी वहाँ ही है और अगर राग उत्पन्न हुआ तो उसे जानता (है), फिर भी दृष्टि तो तल पर ही है (मतलब) द्रव्य पर है। ऐसी भाषा...!

ये तो हज़ारों पुस्तकें छप चुकी हैं। आपके यहाँ भी आयी न ? तीन हज़ार तो यहाँ आयी हैं। तीन हज़ार आयी हैं - सुना (है)। आ...हा...हा...!

`**स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती,...**' क्या कहते हैं ? चैतन्यवस्तु जो ध्रुव नित्यानंद प्रभु इसकी जो सम्यग्दृष्टि हुई है, उसे अनुभव चलता हो तो भी दृष्टि ध्रुव पर है और अनुभव से छूटते ही राग आता है जरूर, अशुभ मिटाने के लिए शुभराग आता है। अशुभराग भी आता है कमज़ोरी की वज़ह से। फिर भी उसकी दृष्टि शुभ-अशुभ(भाव) और पर्याय पर नहीं है। उसकी दृष्टि तो अंदर में ध्रुव त्रिकाली

चीज़ है उस पर है। उसे धर्मी और (आत्मा की) अनुभूति करनेवाला समकिती कहा जाता है। आहा...हा...हा...! इतनी सूक्ष्म बातें हैं।

`**दृष्टि बाहर जाती ही नहीं।**' आ...हा...हा...! चैतन्य ध्रुवस्वरूप जो है वहाँ दृष्टि पड़ी है इसलिए यह दृष्टि ध्रुव पर से हटती ही नहीं। चाहे अनुभव का समय हो चाहे राग की उत्पत्ति का समय हो फिर भी दृष्टि के विषय में तो ध्रुव ही है। आहा...हा...हा...! है ?

`**ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं;...**' आहा...हा...! पाताल मतलब ध्रुव (स्वरूप)। पर्याय जो वर्तमान अवस्था है उसका पाताल ध्रुव है। वह पर्याय पाताल तक पहुँच गई है। आहा...हा...हा...! भाषा भी नई और भाव भी नये-नये !! आ...हा...हा...! `**ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं;...**'

`**गहरी-गहरी गुफा में,...**' चैतन्य भगवान जहाँ भीतर में विराजमान है, वहाँ गुफा में `**बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं;...**' आहा...हा...हा...! `**साधना की सहज दशा साधी हुई है।**' साधना की सहज दशा को साध्य कर ली है। साधना, साधन मिले तब नई करनी है वैसे नहीं परंतु भेद हो ही चुका है। स्वरूप की साधनारूप (सहज दशा) प्रगट हो चुकी है। इस साधना के द्वारा अब परमात्मा होनेवाले हैं। अब वहाँ से पीछे जाना नहीं होगा। विशेष कहेंगे...

वचनामृत - १३ से १९ ३

`**मैं ज्ञायक और यह पर', बाकी सब जानने के प्रकार हैं। `मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर' - ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो उसमें सब आ जाता है, परंतु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं, करने की ठानता ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है।।१३।।**

वचनामृत, १३ वाँ बोल। १२ वाँ बोल चला। `**मैं ज्ञायक और यह पर...**' मैं एक जाननेवाला ज्ञायक और बाकी सारी चीज़ें राग से लेकर सारी दुनिया सब पर। `**बाकी सब जानने के प्रकार हैं।**' आदर तो यह ज्ञायक स्वरूप भगवान त्रिकाली ज्ञान आनंद स्वरूप ध्रुव का ही करना है। वह एक ही आदरणीय और स्वीकार करने लायक है। आहा...हा...हा...! है ? `**बाकी सब जानने के प्रकार हैं।**'

`**मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर' - ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो...**' आहा...हा...! मैं तो एक जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला...

(हूँ)। इसके अलावा और सब चीज़ें मेरी नहीं। इस एक धारा से (अर्थात्) एक ही प्रकार से अंतर्मुख होकर चले `**तो उसमें सब आ जाता है।**' एक ज्ञायक को जानेसे `एगं जाणी सो सव्वं जाणी।' जिसने एक को जाना उसने सबको जाना। सूक्ष्म बात है भाई !

एक ज्ञायक ध्रुव हं...! पर्याय भी नहीं। जाननेवाली पर्याय अवस्था (है) परंतु जानने में आने योग्य ज्ञायक सो मैं हूँ। बाकी सब जानने के अनेक पहलू आते हैं परंतु आदरणीय तो एक ज्ञायक हूँ। आहा...हा...!

`**परंतु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं,...**' आहा...हा...! ऊपर ही ऊपर रहता है, भीतर में जाने का प्रयत्न ही नहीं करता। बाहरी क्रियाकाण्ड और बाहरी विकल्पों के लगाव में फँसा (इसलिए) अंतर में उतरने का प्रयत्न करता नहीं। आहा...! है ? `**परंतु स्वयं गहरा...**' गहरा मतलब ? ऊपर जो पर्याय है और ऊपर जो राग है इससे गहरा (मतलब) जिसका पूरा तल चैतन्य है, अतीन्द्रिय आनंद का सागर भगवान है, उसके अंतर में तो जाता नहीं। क्योंकि ? `**उतरता ही नहीं, करने की ठानता ही नहीं,...**' आहा...हा...! मैं एक जाननेवाला हूँ, ऐसा करने की ठानता ही नहीं, `**इसलिये कठिन लगता है।**' कठिन लगता है न ? कि ये सब क्या है ? चार नय, चार नय और व्यवहार - भेद और उसका निषेध और आत्मा एक ज्ञायक विद्यमान अर्थ - ये सब कठिन क्यों लगता है ? क्योंकि अंदर गहराई में उतरता नहीं है। आहा...हा...! ऊपर-ऊपर से सब विकल्पों का लगाव (चलता है)। सुनना, पढ़ना, विचार करना, कहना - इन सब भावों में अटकते हुए गहराई में उतरता ही नहीं। आ...हा...हा...! क्योंकि करने की ठानता ही नहीं इसलिए कठिन लगता है।

आ...हा...हा...! इसलिए कठिन लगता है। `**करने की ठानता ही नहीं, इसलिये कठिन लगता है।**' करने की एक बार ठान ले तो कठिन न लगे, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है।

`**अनुभवमें से शब्द निकल गए हैं। बहिनें-बेटियों के बीच रात्रिचर्चा में सहज बोले और वह लिख लिया गया। सो यह बाहर आया है। अंतर आनंद की भूमिकामें से वाणी निकली है। एक देह स्त्री की है। बाकी अंदर में तो स्त्रीपना, राग और विकल्प भी मेरा नहीं, वे तो अनुभव में - आनंद में रहते हैं। वही मैं हूँ और कुछ भी मेरा नहीं। आहा...हा...!**' १३ हुआ।

`मैं हूँ' इस प्रकार स्वयंसे अपने अस्तित्वका ज़ोर आता है, स्वयं अपने को पहिचानता है। पहले ऊपर-ऊपरसे अस्तित्वका ज़ोर आता है, फिर अस्तित्वका गहराईसे ज़ोर आता है; वह विकल्परूप होता है परंतु भावना ज़ोरदार होनेसे सहजरूपसे ज़ोर आता है। भावनाकी उग्रता हो तो सच्चा आनेका अवकाश है।।१४।।

(अब) १४. `**मैं हूँ' इस प्रकार स्वयं से अपने अस्तित्व का ज़ोर आता है,...**' क्या कहते हैं ? `**मैं हूँ**' ऐसा अपने से (ज़ोर आना), विकल्प से नहीं। स्वयं अपनेआप से `है' (ऐसा) अस्तित्व का ज़ोर आये। आहा...हा...हा...हा...! मैं एक आनंदकंद प्रभु हूँ।

सत्‌चिदानंद आत्मा हूँ। ऐसा स्वयं को अपनेआप पुरुषार्थपूर्वक ज़ोर आये।

`**स्वयं अपने को पहिचानता है।**' ऐसा ज़ोर आये तो अपनेआप को पहिचाने। आहा...हा...! है ? `**पहले ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का ज़ोर आता है,...**' माने क्या ? कि पहले अनुभव नहीं करता। प्रथम अंदर जाननेवाली चीज़ `है', जाननेवाला है वह अनादि अनंत नित्य ध्रुव है - ऐसा पहले ऊपर-ऊपर से माने विकल्प से ज़ोर आता है। `**फिर अस्तित्व का गहराई से ज़ोर आता है;...**' आहा...हा...! `है' भगवान पूर्णानंद प्रभु ! ऐसा यदि गहराईमें से अस्तित्व का ज़ोर आये, सत्ता `है' यह `है'। दूसरी सब सत्ताओं का तो मैं जाननेवाला हूँ - यह भी व्यवहार। (क्योंकि) मेरी पर्याय में मालूम होता है। (और) उस पर्याय का मैं जाननेवाला हूँ और पर्याय को जाननेवाला (कहते हैं) परंतु द्रव्य को जाननेवाला मैं हूँ। पर को तो मैं जानता ही नहीं। मेरी पर्याय में पर का जानना होता है वह भी मेरी अपनी पर्याय के सामर्थ्य से हो रहा है, वह जानने में नहीं आता। आहा...हा...हा...! इतना कठिन लगे...! खुद ऊपर-ऊपर से करता है।

`**अस्तित्व का गहराई से ज़ोर आता है; वह विकल्परूप होता है...**' `विकल्परूप होता है' उसमें क्या कहा ? अंदर गहराई में ज्ञायक है... ज्ञायक है... ज्ञायक है... पर्याय के पीछे ज्ञायक है, विकल्प से पार है - ऐसा एक विकल्पपूर्वक ज़ोर आता है। भले ही पहले विकल्प आये - राग का अंश पहले आये।

`**वह विकल्परूप होता है परंतु भावना ज़ोरदार होने से...**' (अर्थात्) अंदर जाने की भावना यदि ज़ोरदार हो `**सहजरूप से ज़ोर आता है।**' सूक्ष्म बात है। केवल अनुभव की (बात) है। प्रथम अस्तित्व `है' (ऐसा) ऊपर से (यानी कि) विकल्प से लक्ष में आता है कि

यह कोई चीज़ अंदर में है फिर विकल्प टूटकर भीतर की ओर ज़ोर जाता है तब `**भावना की उग्रता हो तो...**' (अर्थात्) आत्मा के चैतन्य स्वभाव की भावना नाम एकाग्रता यदि हो तो `**सच्चा आने का अवकाश है।**' सच्चा आने का मतलब सत्य आने का वहाँ अवकाश है। उसको आत्मा अनुभव में आये (ऐसा) वहाँ अवकाश है। आहा...हा...हा...! ऐसी बाते हैं।

केवल सादी भाषा ! बेटियों के बीच बोले, सो लिख लिया गया और ये प्रसिद्ध हुआ। समझने के लिए बहुत धीरज चाहिए।

जिसको अपना (हित) करना है, उसको पहले तो ऊपर से यह महाप्रभु कोई है, लोकालोक को जाननेवाला सर्वज्ञ शक्तिधारी तत्त्व है (ऐसा लगता है)। (जैसे) सर्वज्ञ परमगुरु (हैं) वैसा सर्वज्ञ (मैं हूँ)। मैं ही सर्वज्ञ परमगुरु (हूँ)। सब से उच्च से उच्चतम मैं - ऐसा ज़ोर यदि भीतर से आये, आहा...हा...हा...! `**तो सच्चा आने का अवकाश है।**' तो अंतर आनंद के अनुभव में आने का उसको अवकाश है। भाषा तो सादी है परंतु भाव थोड़े गहरे हैं। गहरे भाव (हैं)। आहा...हा...! ये १४ बोल हुए।

तीर्थंकरदेवकी दिव्यध्वनि जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है ! अमृतवाणीकी मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवासमें चली गई और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हूमें पिल गया ! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणीकी महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेवके चैतन्यकी महिमाका तो क्या कहना !।।१५।।

(अब) पंद्रहवाँ - `**तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है...**' ध्वनि जो है - आवाज़, ॐ ध्वनि (वह) जड़ है। ये आवाज़ निकलती है (सो) जड़ है। वैस वीतराग की ॐ-आवाज़ निकले सो जड़ है। `**उसे भी कैसी उपमा दी है** !' उस वाणी को (कैसी उपमा दी है !) `**अमतृवाणी की मिठास देखकर...**' उन वीतराग की वाणी की मिठास देखकर `**द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गई...**' (ऐसी) उपमा दी है !

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की ध्वनि - वीतराग की वाणी छूटी और (जिसने) सुनी, वे कहते हैं कि वाणी में इतना अमृत का ज़ोर आया। आहा...हा...हा...! कि द्राक्ष है वह वनवास में चली गई। उसकी मिठास के आगे इसकी मिठास छूट गई। आहा...हा...! अभी तो वाणी की बात है हं...! आत्मा की (बात) तो बाद में है।

`**अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गई और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया** !' कोल्हू में पिल गया ! (ऐसा कहते हैं)। भगवान की वाणी का अमृत ! आहा...हा...! जहाँ भीतर में घूँट... घूँट कर वाणी का रसास्वाद हो, इसे देखकर कहते हैं कि इक्षु भी कोल्हू में पिल गया ! (उसको ऐसा लगा कि) हमारा रस इस (रस) के आगे कुछ नहीं, ऐसी वीतराग की वाणी का रस है ! आहा...हा...!

`**ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है;...**' ये तो वाणी की महिमा गायी, आहा...हा...! इतनी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी ! `**फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना** !' आहा...हा...! वाणी से पार, विकल्प से पार अंदर चीज़ (पड़ी है)। पाताल में अनंत (ज्ञान का) सागर और अनंत आनंद का समुद्र भरा है। उस चैतन्य का तो क्या कहना ! जब तीर्थंकर की वाणी

को भी इतनी उपमा दी जाती है तो उनके चैतन्य के स्वभाव का तो क्या कहना ! (ऐसा) कहते हैं। वहाँ तो अंदर में अमृत का सागर भरा है।

आहा...हा...! भाषा सादी है परंतु तत्त्व बहुत ऊँचा है। वीतराग की वाणी जब ऐसी हो `**फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना** !' जिनकी वाणी ऐसी तो उनका आत्मा कैसा होगा भीतर में ?! सर्वज्ञ स्वभावी यों प्रगट हो गया ! चैतन्य ज्योति... झल-झल ज्योति... झल-झल ज्योति... सर्वज्ञ (प्रभु) उनके आत्मा की तो क्या बात करें ! भाषा तो सादी है परंतु भाव थोड़े गहरे हैं। आहा...हा...!

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतरमें सींचनेसे अमृत मिलेगा, तेरे सुखका फव्वारा छूटेगा; राग सींचनेसे दुःख मिलेगा। इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जलका सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।।१६।।

(अब) सोलहवाँ (बोल)। `**ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतर में सींचने से अमृत मिलेगा,...**' भगवान आत्मा का ज्ञान और पुण्य-पाप भाव से वैराग्य। क्या कहा इसमें ? कि शुभ-अशुभभाव में रक्त है, इससे विरक्त (होना) सो वैराग्य। वैराग्य मतलब स्त्री-बच्चों को छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठा इसलिए वैराग्य है, ऐसा वैराग्य नहीं। अंदर

शुभ और अशुभ भाव हुए उसमें जो रक्त है, उससे विरक्त होना उसका नाम वैराग्य। और अंतर में आत्मा के सन्मुख जाना उसका (नाम) ज्ञान। ज्ञान और वैराग्य - उसरूप पानी को अंतर में सींचने से... आहा...हा...! सम्यग्ज्ञान और वैराग्य को अंदर सींचने से अमृत मिलेगा। भगवान अमृत का सागर है। आहा...हा...!

`श्रीमद्' एक बार लिखते हैं (कि) दुनिया ने बाहर में नारियली देखकर प्रशंसा की परंतु यहाँ तो अंदर में पूरी अमृत की नारियली है। आहा...हा...! अंदर अमृत का सागर भगवान डोलता है। इसकी ओर तो नज़र भी नहीं की, इसकी ओर तो देखा तक नहीं। इसकी बात को सुनते हुए रस और प्रेम अंतर से उजागर हुआ नहीं। आ...हा...हा...! (जिसको) उजागर हो (उसको) अमृत आता है, उसे अमृत मिलता है। आहा...हा...!

ज्ञान और वैराग्यरूपी पानी का अंदर में सिंचन (अर्थात्) स्वरूप का ज्ञान और पुण्य-पाप का वैराग्य अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से विरक्त(पना)। ये दोनों ना यदि अंदर में सींचन किया जाए तो अमृत स्वरूप भगवान के आनंद का अनुभव आये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! शब्द तो सरल हैं।

अमृत मिलेगा अमृत ! (ऐसा कहा) अमृत मतलब ? वह अमृत कभी मरे नहीं, अमृत किसीको मारे नहीं, अमृत किसी से मरे नहीं। क्या कहा इसमें ? अ...मृत है न ? अंदर अमृत स्वरूप भगवान (है), उसमें सच्चे ज्ञान और वैराग्य का यदि सिंचन करे तो वह चीज़, (वह) अमृत ऐसा है कि (वह) किसी भी चीज़ से मरे नहीं, इसका अस्तित्व मिटे नहीं, उसका अस्तित्व अन्य किसी को मारे नहीं। आहा...हा...! और उसके अस्तित्व को दूसरा कोई मार सके नहीं और उसका अस्तित्व किसी को मार सके नहीं। दूसरे का

अस्तित्व उसको मार सके नहीं और अमृत का अस्तित्व दूसरे को मार सके नहीं। आ...हा...हा...! इसलिए उसे अ...मृत कहते हैं, आहा...हा...! इतनी शीतल वाणी है। शीतल वाणी !

`ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा;...' आहा...हा...! फव्वारा जैसे छूटता है वैसे अंदर आनंदसागर में अगर जाये (यानी कि) लक्ष करे और ज्ञान और वैराग्य का सिंचन करे तो आनंद का फव्वारा छूटे। अतीन्द्रिय आनंद का फव्वारा पर्याय में छूटे - फटे, (यानी कि) पर्याय में अतीन्द्रिय आनंद का वेदन आ जाये। उस ध्रुव में अमृत पड़ा है। जिस ध्रुव में अमृत पड़ा है उसमें यदि ज्ञान-वैराग्य का सिंचन किया जाये तो उसकी पर्याय में अमृतपना आये। अमृत का स्वाद आने से कभी मरे नहीं और कभी (किसी को) मारे नहीं ऐसी उसकी दशा प्रगट हो जाती है। आहा...हा...! भाषा तो बहुत संक्षेप में है लेकिन (भाव बहुत सूक्ष्म है)। आपकी फरमाइश थी न ?

सुख का फव्वारा फटेगा। आहा...हा...हा...! अंदर में आनंदसागर है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अंतर के तल जिसके हाथ लगे उसकी पर्याय में अपने सुख का फव्वारा छूटता है और अंतर में आनंद आता है। तब मानना चाहिए कि उसने आत्मा को जाना, तब जाना कि इसने आत्मा का अनुभव किया। इस अनुभव में आत्मा जब आनंदमय मालूम हो तब तो आत्मा को जाना ऐसा कहलाये। आहा...हा...! है ?

**`राग सींचने से दुःख मिलेगा।'** राग में चाहे जैसा शुभराग हो या अशुभराग हो, भगवान के प्रति का राग (होगा तो) भी दुःख मिलेगा। आहा...हा...हा...! `मोक्षपाहुड' की १६ वीं गाथा में कहा

है `**परदव्वाओ दुग्गई।**' तेरा लक्ष स्वद्रव्य को छोड़कर यदि परद्रव्य पर गया, भगवान तो ऐसा कहते हैं कि यदि हमारे प्रति भी तुम्हारा लक्ष गया तो चैतन्य की गति न होकर राग की दुर्गति होगी। आ...हा...हा...!

क्या कहा उसमें ? `**परदव्वाओ दुग्गई**' - ऐसा पाठ है। `**सदव्वाओ सुग्गई।**' परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते (हैं) कि, हम तेरे से परद्रव्य हैं। हमारे पर तेरा लक्ष यदि गया तो तुझे राग होगा और राग होगा तो वह चैतन्य की गति नहीं, परंतु चैतन्य की दुर्गति है। आहा...हा...! ऐसी बात है ! `**परदव्वाओ दुग्गई**' - तेरे से हम परद्रव्य हैं। तेरे द्रव्य में (रहेगा तो) `**सदव्वाओ सुग्गई**' अंदर में स्वद्रव्य में एकाग्रता का सिंचन कर तो तुझे आनंद की सुगति प्रगट हो। वह सुगति (है)। देव(गति) है सो सुगति नहीं। सेठाई या अरबोंपति मनुष्य हो या राज्य (मिले या) बड़ा देव हो - वह सुगति नहीं अपितु वह तो दुर्गति है। वह दुर्गति है ! आहा...हा...!

सुगति तो आत्मा के आनंद में राग रहित होकर चैतन्य की परिणति प्रगट हो, उसे यहाँ सुगति कहा जाता है जबकि परद्रव्य पर लक्ष जाये, राग हो उसको दुर्गति कहते हैं। आहा...हा...! ऐसी बात है। `**सदव्वाओ सुग्गई**' अमृत का सागर भगवान (आत्मा) उसकी दृष्टि, एकाग्रता और ज्ञान करे तो तेरी सुगति - चैतन्य परिणति प्रगट हो। परंतु तेरे चैतन्य को भूलकर परद्रव्य का लक्ष करेगा तो राग होगा। वह चैतन्य की गति से विपरीत गति है। उसकी दुर्गति है। आहा...हा...हा...! अरे...! भगवान प्रत्ययी भक्ति का राग भी वास्तव में दुर्गति है। (राग) आता है, जब तक (पूर्ण) वीतराग नहीं हुए तब तक सम्यग्दृष्टि को भी वीतराग की भक्ति का भाव, स्मरण (और) पूजा का भाव आता है, परंतु वह राग है सो चैतन्य

की गति नहीं, चैतन्य की जाति नहीं। आहा...हा...! अमृत के नाथ से इसकी जाति भिन्न है। (इसलिए यहाँ कहते हैं) `**राग सींचने से दुःख मिलेगा।**' वैराग्य और ज्ञान सींचने से अमृत मिलेगा। और राग करने से - चाहे तो शुभराग हो (तो भी) राग करने से दुःख मिलेगा और दुःख की जीव को खबर नहीं है कि हम दुःखी है या नहीं ? वह राग को वेदता है। जो राग को वेदता है वह दुःख को वेदता है। ये पैसेवाले या राजाएँ या सेठियाँ लोग सब दुःखी हैं। राग के वेदन में पड़े हैं (वे सब दुःखी हैं)। `यह मेरा' और `मैं उसका' इसकी मज़ा का जो राग जीव को आता है, वह राग केवल दुःख है, आत्मा की शांति का वैरी है ! आ...हा...हा...! ऐसी बात पर प्रतीति आना, सुनना कठिन पड़े ऐसा है।

`**इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके...**' आत्मा ज्ञानानंद सत् चिदानंद प्रभु, उसका ज्ञान (करके) और राग से विरक्त होकर, ज्ञान और वैराग्य के जल का सिंचन करके `**मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर।**' आ...हा...हा...! यह अमृत की व्याख्या की ! अमृत क्या (है) ? (तो कहते हैं) `**मुक्तिसुखरूपी अमृत...**' मोक्षरूपी - सुखरूपी अमृत को प्राप्त करे। वैराग्य से और ज्ञान से मुक्तिरूपी सुख के अमृत को प्राप्त कर। राग और द्वेष से दुर्गति के दुःख मिलेंगे, आहा...हा...! यह १६ वाँ (पूरा) हुआ।

जैसे वृक्षका मूल पकड़नेसे सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़नेसे सब हाथ आयगा। शुभपरिणाम करनेसे कुछ हाथ नहीं आयगा। यदि मूल स्वभावको पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शांति - समाधान रहेगा, ज्ञाता-द्रष्टारूपसे रहा जा सकेगा।।१७।।

१७ वाँ (बोल) '**जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है,...**' वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ लगता है। '**वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आयगा।**' आहा...हा...! वृक्ष का मूल पकड़ने से इसके सब पत्तें, फल-फूल उसके हाथ लगते हैं। वैसे इस आत्मा के ज्ञायकपने को पकड़ने से आहा...हा...! सब हाथ लगेगा। अमृत का सागर और अनंत गुण से भरा समुद्र उस ज्ञायक की दृष्टि करने से अनंत गुण, पर्याय में प्रगट होंगे और उस पर्याय में अनंत आनंद भी साथ में आयेगा और प्रत्येक आनंद में प्रभुता भी भरी (होगी)। प्रत्येक गुण की पर्याय प्रगट होने पर उसमें साथ-साथ प्रभुता भी प्रगट होगी। राग करने से रांकाई (दीनता) प्रगट होगी। इतने छोटे सूत्र...! आहा...! बात तो कठिन है बापू ! अंतर मार्ग कोई ऐसा अलौकिक है कि अभी तो सुनने मिलना भी मुश्किल है। (ऐसा) सुने तब लगे कि ये क्या कैसी बातें है ? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि वृक्ष का मूल पकड़ा उसको सब हाथ

लगेगा। '**वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आयगा।**' पर को नहीं, राग को नहीं, पर्याय को नहीं, ज्ञायकभाव त्रिकाली द्रव्य ! त्रिकाली द्रव्य को पकड़ने से सब हाथ आयगा। उसमें सब भरा है। आहा...हा...! भाषा तो बहुत संक्षेप में है लेकिन अंदर में भाव गहरे भरे हैं।

अनुभव सहित वाणी आयी है। आनंद के वेदनमें से यह वाणी आयी है। बहिन अनुभवी हैं (और) यह अनुभव की वाणी है। यह धारणायुक्त और सुनी हुई वाणी नहीं है। आहा...हा...! ऐसी वाणी को समझना, सुनना यह महाभाग्य (हो) तो मिले ऐसा है। साक्षात् त्रिलोकीनाथ के पास थे। भूल हुई इसलिए यहाँ आ गये। परंतु वह भूल पीछे से निकल गई। बाद में यह अमृत भीतरमें से हाथ लगा तब यह वाणी निकल गई।

(यहाँ कहते हैं) '**शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयगा।**' लीजिए...! कई लोग तो ऐसा कहते हैं कि हमलोग पाप में पड़े हैं वहाँ से निकालकर पुण्य में तो लाईये ! लेकिन पुण्य भी अनंतबार किया और पाप भी अनंतबार किया है (परंतु) भवभ्रमण का नाश कहाँ है इसमें ? जिसमें भवभ्रमण का नाश नहीं वहाँ तो नरक और निगोद होंगे। कदाचित् दो-चार घण्टे कुछ शुभभाव किये होंगे और पुण्य बंध होगा तो स्वर्गादि में जायेगा वहाँ से पुनः तिर्यंच में - पशु में जायेगा और चारगति (में) भटकेगा। जिसने भव का नाश किया नहीं उसके भव परिभ्रमण का अंत - कहीं भी अंत नहीं आयेगा। आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं) ज्ञायकभाव को पकड़ने से सब हाथ आयेगा। '**शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयगा।**' णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसे पाँच बार नमस्कार मंत्र का स्मरण करने से

या प्रतिमा आदि की पूजा करने से, भगवान के दर्शन करने से जो शुभभाव होते हैं ऐसे `**शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयगा।**'

मुमुक्षु :- करते -करते आयगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- राग - ज़हर करते-करते, लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी ! ऐसा है ? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी क्या ? वैसे शुभ परिणाम करते-करते आत्मा में शुद्ध का परिणाम आयेगा क्या ! तीनकाल में नहीं आयेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है भाई !

शुभ परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। `**यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा...**' आहा...हा...! चैतन्य स्वभाव, ज्ञायकभाव, नित्य अनुभव भाव, अनुभव के लायक ऐसा जो त्रिकाली भाव इसको यदि पकड़ा होगा `**तो चाहे जो प्रसंग आयें...**' (अर्थात्) चाहे कैसे भी प्रसंग आयें - शरीर में रोग आये, प्रतिकूल अपमान हो, दुनिया अनादर करे, फिर भी अगर आत्मा को पकड़ा होगा `**तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शांति - समाधान रहेगा,...**' आहा...हा...! प्रतिकूल संयोग तो एक ज्ञेय है, वह भी व्यवहार अपेक्षा ज्ञेय है। निश्चय से तो ज्ञेय मतलब उसका जो ज्ञान स्वयं को होता है वह ज्ञान उसका ज्ञेय है।

आत्मा का ज्ञान, पर को जानने का हुआ वह ज्ञान अपना ज्ञेय है। उस ज्ञेय को जाननेवाला ज्ञान ज्ञान है। आहा...! क्या (कहते) हैं ? `**मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें उस समय शांति-समाधान रहेगा, ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।**' आहा...हा...हा...! अंत में करना तो यही है। चाहे कैसे भी प्रसंग में जाननेवाला - ज्ञातादृष्टा रहे वह करना है। उसमें

से धर्म का मूल विकसित होकर केवलज्ञान होनेवाला है। बाकी सब बातें हैं। शुभ परिणाम चाहे कितने भी कर ले इसके फल में कदाचित् स्वर्ग या ये पैसे - धूल (आदि) मिल जाये लेकिन वे सब वहाँ से मरकर पुनः नरक और निगोद में जायेंगे। आहा...हा...!

भव के मूल का जिसने छेद किया नहीं, पत्तें तोड़े लेकिन मूल नहीं काटा, पत्तें तोड़े लेकिन मूल नहीं तोड़ा तो पत्तें पंद्रह दिन होंगे कि पुनः पनपने लगेंगे। पंद्रह दिन होते ही फिर से निकलेंगे। वैसे जिसने ऊपर-ऊपर के शुभभाव के पत्तें तोड़े हैं लेकिन शुद्धभाव का मूल नहीं पकड़ा आ...हा...हा...! उसको चारगति पनपेगी। शुभभाव में तो गति - चारगति पनपेगी। भले अशुभ(भाव) हो तो नरक और निगोद मिले, शुभ होगा तो यह मनुष्य और स्वर्ग मिले परंतु गति - चारगति (उसको मिलेगी)। भव भय से डर चाहिए ऐसा कहा है। वैसे चारगति के भव का डर चाहिए। उसका इस निर्भय आत्मा के प्रति लक्ष जाता है। आहा...हा...!

उसे तो चाहे कोई भी भव हो उससे डर लगता है अरेरे...! देह छूटेगी और कहाँ जाऊँगा ? आत्मा तो अनादि अनंत है। वह कोई नष्ट हो जाये ऐसा नहीं है। तो यहाँ से छूटकर कहाँ जायेगा ? वैसे भव का भय लगे तो उसकी दृष्टि आत्मा पर गये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! परंतु जिसको भव का डर और भय नहीं उसको आत्मा क्या है ? उसकी ओर जाने का झुकाव उसका है नहीं, आहा...हा...! `**ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा।**' लीजिए ! (ये १७ वाँ पूरा हुआ)।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परंतु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परंतु डोर हाथमें होती है, उसी प्रकार `चैतन्य हूँ' यह डोर हाथमें रखना। विकल्प आयें, परंतु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ - ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे दृढ़ता होती है।।१८।।

१८ (वाँ बोल)। `**दृष्टि द्रव्य पर रखना है।**' केवल मक्खन है ! दृष्टि द्रव्य नाम त्रिकाल वस्तु जो है, त्रिकाली ज्ञायक द्रव्य वस्तु है वह पर्याय से भी भिन्न है। उस पर दृष्टि (रखनी है) यानी कि पर्याय (की) दृष्टि उस पर रखनी है। जिसमें पर्याय नहीं है उसमें पर्याय और दृष्टि रखनी है। उसमें राग तो नहीं (अर्थात्) ज्ञायकभाव में राग तो नहीं है परंतु वर्तमान पर्याय है वह (भी) उसमें नहीं। उस पर्याय को वहाँ जोड़ना - उस तरफ मोड़ना फिर भी पर्याय में द्रव्य नहीं आता। फिर भी पर्याय में द्रव्य का सामर्थ्य है। उसका ज्ञान और अनुभव आता (है)। इसलिए ऐसा कहते हैं कि दृष्टि द्रव्य पर रखनी है।

`**विकल्प आयें परंतु दृष्टि एक द्रव्य पर है।**' विकल्प तो होंगे - शुभ आयेंगे, अशुभ आयेंगे, पुण्य-पाप के परिणाम भी होंगे, परंतु दृष्टि तो अंदर द्रव्य पर पड़ी है। ध्रुव के ध्येय पर से दृष्टि हटे नहीं। समुद्र में जो नाव चलती है वह ध्रुव के तारे अनुसार चलती

है। ध्रुव का तारा एक ही सरीखा रहता है। उस पर से नाव की दिशा निश्चित होती है। वैसे यह ध्रुव चैतन्य भगवान - इसकी दृष्टि हो फिर चाहे जैसे परिणाम हो परंतु दृष्टि ध्रुव पर रहे तब उसकी नाव चलती है वरना उसकी नाव चलती नहीं। मोक्ष का मार्ग तो नहीं चलेगा। तो नहीं चलेगा, ऐसा कहते हैं।

आहा...हा...! दृष्टि द्रव्य पर रखना। द्रव्य माने ये पैसा नहीं है ! द्रव्य नाम वस्तु। जिसमें शरीर तो नहीं, वाणी तो नहीं, राग तो नहीं, मैं पर्याय भी नहीं। ऐसा जो त्रिकाली द्रव्य, उस पर पर्याय की दृष्टि रखना। दृष्टि है वह पर्याय है। परंतु उसका विषय है सो द्रव्य है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म लगता है।

`**दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परंतु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है...**' दृष्टांत आता है। पतंग है सो आकाश में उड़ती है `**परंतु डोर हाथ में होती है,...**' डोर हाथ में हो। पतंग भले उड़े, दूर जाये परंतु डोर हाथ में हो। आहा...हा...! `**उसी प्रकार `चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना।**' आहा...हा...! मैं तो एक जाननेवाला, देखनेवाला, ज्ञाता-दृष्टा चैतन्यरस के रस से भरा भगवान सो मैं हूँ। ऐसी दृष्टि रखे, फिर विकल्प भले ही हो ! पतंग भले ही उड़े परंतु डोर हाथ में है। वैसे दृष्टि द्रव्य पर रखे फिर विकल्प भले ही हो, लेकिन उसे जाने अपना माने नहीं। आ...हा...हा...!

`**जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परंतु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार `चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना।**' ये तो रात्रीचर्चा में सहज बोले थे जो थोड़ा-थोड़ा लिख लिया गया, पूरा सत्त्व इसमें भरा है। आहा...हा...! गुजराती भाषा (है) परंतु सरल (है इसलिए) हिन्दी में समझ सके ऐसा है। हिन्दी में समझ में

न आये ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- आप हिन्दी में बोलिये तो गुजरातीवाले समझ सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हिन्दीवाले समझ सकें, गुजरातीवाले ठीक तरह नहीं समझ सकेंगे।

`**जिस प्रकार पतंग आकश में उड़ती है परंतु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार `चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना।**' विकल्प आयेंगे, परंतु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ - `चैतन्यतत्त्व है सो मैं हूँ।' जानने-देखनेवाला तत्त्व आत्मा जो है, जिसकी सत्ता की मौजूदगी में (यह सब) जानने में आता है, वह जाननेवाला है जो कि (जानने लायक) चीज़ से भिन्न है, उस पर दृष्टि रखना। जाननेवाला जो चीज़ जानने में आयी उससे भिन्न है, उस पर दृष्टि रखो। जो जानने में आता है उस पर दृष्टि मत रखो। आहा...हा...हा...!

वह बात तो सरल थी - व्रत करो, उपवास करो और पूजा करो, भक्ति करो व दान दो और दया करो, एकदम सरल था वह तो ! जबकि ये बहुत महँगा निकला ! सरल तो कुछ नहीं था सब भटकने का कारण था ! वह सब कर-करके चार गति के भव किये हैं। आहा...! अनंतबार मुनिपना भी धारण किया। आता है न ? पूर्व में अनंतबार मुनिपना धारण किया लेकिन क्रियाकाण्ड पर दृष्टि (रही) ! दया, दान, व्रत, भक्ति व पूजा उस पर जो दृष्टि है सो तो राग पर दृष्टि है। आत्मा पर दृष्टि नहीं।

`मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो' मुनिव्रत धार - मुनिव्रत को धारण करके अनेक बार ग्रैवेयक उपजायो। नौ वीं ग्रैवेयक में गया। `पण आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' परंतु आत्मा के ज्ञान बिना, राग से भिन्न हुए बिना आत्मा का आनंद नहीं आया।

क्योंकि पंचमहाव्रत के परिणाम हैं सो भी दुःखरूप हैं। आहा...हा...! पंचमहाव्रत के परिणाम आस्रव हैं। वह शुभभाव है, वह दुःख है। इसीलिये कहा कि `मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो।' परंतु आत्मा के ज्ञान बिना जीव को आनंद के अंश का स्वाद आया नहीं। पंचमहाव्रत के परिणाम में आनंद नहीं, दुःख (है) और राग है। आहा...हा...! इतना कठिन कैसे बैठे ? अभी तो बाहर में निवृत्ति का कोई ठिकाना नहीं उसे यह कैसे (प्रतीति में आयेगा) ? बापू ! करना पड़ेगा यह ! इसके बिना तुझे सुख (नहीं होगा)।

जो-जो दिन जा रहे हैं उतना-उतना मृत्यु के समीप जा रहा है। जिस देह की जितनी मुद्दत लेकर आया है वह मुद्दत पकने में एक समय भी इधर-उधर नहीं हो सकता। जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस संयोग में देह छूटनेवाली है सो छूटेगी, छूटेगी और छूटेगी ही ! लाख इन्द्र आयें तो भी इसमें एक समय की हेरफेर हो सके ऐसा है नहीं। तो देह की (स्थिति में) जितना समय - जितने दिन गये उतना मृत्यु के समीप जाता है। वह मृत्यु की (घड़ी) एक दिन आकर खड़ी रह जायेगी तब यह देह छूट जायेगी... एक ही झटके में...! सब उसका पड़ा रहेगा। रुपये, स्त्री, बच्चें... आहा...हा...!

एकबार गाया नहीं था ? एकबार भावनगर (से एक) वैरागी आया था। (वह ऐसा गाता था) `ऊँचा मंदिर ने माळीया - सोड़ ताणी ने सूतो, काढो काढो रे एने सौ कहे, जाणे के जन्म्यो ज नहोतो' `ऊँचा मंदिर ने माळीया' `ऊँचा मंदिर ने माळीया सोड ताणी ने सूतो' (मतलब) मर गया वह ! आहा...हा...! उसको कौन शरण है ? फिर कहा कि `आ रे काया मां हवे कांई नथी' पत्नी देख रही है कि अब इस काया में कुछ नहीं रहा। `ऐसे टकटकी

लगाकर फूट-फूटकर रोये कि हाय... हाय...!' ये ले गया ! बापू ! देह की तो जो स्थिति होनेवाली है वही होगी ! वही होगी ! इसमें फेरफार होगा नहीं। क्रमबद्ध में देह की स्थिति का (छूटने का) जो समय (है) उसे आना ही आना है। उसमें - क्रमबद्ध में कोई फेरफार संभव है नहीं। आ...हा...हा...! डॉक्टर के इन्जेक्शन काम में नहीं आयेंगे वहाँ !

मुमुक्षु :- क्रमबद्ध में जीना लिखा हो तो काम आयेगा न !

पूज्य गुरुदेवश्री :- (तो भी) काम नहीं आते। डॉक्टर खुद मर जाते हैं न !

भावनगर का बड़ा डॉक्टर था। वह ऐसे आपरेशन कर रहा था। करते-करते बोला अरे...! मुझे कुछ हो रहा है ! मुझे कुछ दर्द हो रहा है। ऐसा कहता हुआ ज्यों कुर्सी में बैठा कि देह छूट गयी। डॉक्टर पूरी अस्पताल का सर (था) बड़ा ! कौन डॉक्टर ? दवाई क्या काम करे ? और डॉक्टर भी क्या काम करे ? डॉक्टर की देह छूटेगी तब उसको भी पता नहीं चलेगा कि कैसे छूट गई ? आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि '**चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परंतु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ - ऐसा बारंबार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है।**' 'मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ' विकल्प आये सो मेरी चीज़ नहीं। राग आये, पुण्य-पाप का भाव आये सो मेरी चीज़ नहीं। ऐसा जानने से दृढ़ता हो। आत्मा में इसकी दृढ़ता हो। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... इसका परिणमन हो जाये। ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... होने पर ज्ञायक का परिणमन हो जाये। परिणमन (हो जाये) मतलब आनंद की दशा का परिणमन हो जाये। इसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। और क्रमबद्ध में अवस्था

का फल वह आया। आहा...हा...! इसके क्रम में वह (सम्यग्दर्शन) आया। उस वक्त वह दृष्टि अगर द्रव्य पर चली जाये तो जीव को आनंद का अनुभव हो। इसके क्रमबद्ध में वह फल आयेगा। क्योंकि क्रमबद्धवाला दृष्टि द्रव्य पर रखता है। आहा...हा...! क्रम अनुसार जो होनेवाला है सो ही होगा, इसमें कोई फेरफार होनेवाला नहीं। उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, (अर्थात्) ज्ञायक - चैतन्य पर जाती है। अतः ज्ञायक का आनंदपूर्वक अनुभव करते हुए उसकी देह छूटती है परंतु जिसे ज्ञायक की खबर नहीं है वह भगवान... भगवान का स्मरण करते-करते देह छोड़ेगा तो भी वह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं।

वह यहाँ पर कहते हैं। '**विकल्प आयें, परंतु चैतन्यतत्त्व सो मैं हूँ - ऐसा बारंबार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है।**' आहा...हा...! अब थोड़ी मुश्किल बात आयी।

ज्ञानीके अभिप्रायमें राग है वह ज़हर है, काला साँप है। अभी आसक्तिके कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परंतु अभिप्रायमें काला साँप लगता है। ज्ञानी विभावके बीच खड़े होने पर भी विभावसे पृथक् हैं - न्यारे हैं।।१९।।

(बोल १९ वाँ।) `**ज्ञानी के...**' (अर्थात्) धर्मी (मतलब) जिसको आत्मा का ज्ञान हुआ है उसको, आत्मा जिसको अनुभव में आया है उसको `**अभिप्राय में राग है वह ज़हर है,...**' `समयसार' `मोक्ष अधिकार' में कहा है कि शुभराग है वह विषकुंभ है, ज़हर का घड़ा है। वहाँ `समयसार' के `मोक्ष अधिकार' में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को ज़हर कहा है। उसे विष का घड़ा कहा है ! ज़हर का घड़ा...! आहा...हा...! कैसे माने ? विषकुंभ आता है न ? `समयसार' - `मोक्ष अधिकार' ! विषकुंभ है। वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु :- वह तो मुनि को लागू पड़ता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो अज्ञानी को लागू पड़े ऐसी बात है। अज्ञानी राग को ज़हर न माने और मिठास समझें तो मिथ्यादृष्टि है। `**ज्ञानी के अभिप्राय में राग है वह ज़हर है,...**' अज्ञानी के अभिप्राय में राग है सो अमृत है। राग ही सर्वस्व है। उसने राग के अलावा भीतर में जो चीज़ है उसे तो देखी नहीं और देखने का प्रयत्न भी किया नहीं। आहा...हा...! यह कहा नहीं पहले ? `मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मा के ज्ञान बिना आनंद का आंशिक स्वाद भी नहीं आया।

वही यहाँ कहते हैं - धर्मी के अभिप्राय में राग है वह ज़हर है, `**काला साँप है।**' काला नाग है ! आहा...हा...! अब यहाँ तो (अज्ञानी लोग) शुभभाव में धर्म मनाते हैं। शुभभाव आते हैं, अशुभ को टालने - अशुभ से बचने के लिये शुभ(भाव) आते हैं, ज्ञानी को भी आते हैं; भक्ति का, वंदना का, पूजा का भाव आता है परंतु है तो वह ज़हर ! आत्मा के अमृत स्वरूप से विरुद्ध है

(इसलिये) उसे ज़हर कहा जाता है। ज़हर से विरुद्ध आत्मा का स्वरूप जो (है) उसे अमृत कहा जाता है। आहा...हा...हा...! कठिन लगे जगत (को) !

`**ज्ञानी के अभिप्राय में...**' अभिप्राय में मतलब ? श्रद्धा में - प्रतीति में राग है सो ज़हर है, काला नाग है। आहा...हा...हा...! `**अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...**' आत्मा का ज्ञान हुआ, समकित हुआ फिर भी आसक्ति होती है, राग होता है। (पूर्ण) वीतराग न हो तब तक राग आता है परंतु उस राग को ज़हर समान जानते हैं। (स्वरूपमें से) बाहर थोड़े आते हैं, आत्मा के स्वरूपमें से निकलकर धर्मी को भी थोड़ा राग आता तो जरूर है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो तब तक राग आता है, परंतु वह राग अभिप्राय में काला साँप लगता है। काला साँप मतलब काला नाग जैसे ज़हरीला (होता है वैसा लगे)। आहा...हा...हा...!

अभी इन दिनों वहाँ सोनगढ़ अस्पताल में (एक हादसा बना)। अस्पताल है न ? क्षय, क्षय की ! वहाँ एक बड़ा डॉक्टर था, ठीक ! डॉक्टर यूँ बैठा था वहाँ नीचे से नागिन निकली। बैठते हुए नागिन पर पैर आ गया। नागिन पैर के नीचे दबी इसलिए (नागिन ने) दंश मारा। वहीं का वहीं मर गया ! अभी-अभी सोनगढ़ में बना है। डॉक्टर को साँप-नागिन ने काटा ! तुरंत मर गया, नागिन बच गई ! आसपास के लोग इकट्ठे हो गये ! पैर तले दब गई थी इसलिए थोड़ा उपचार करके छोड़ दिया (अर्थात्) मरी नहीं जबकि डॉक्टर मर गया ! काटते ही ! नागिन ने जैसे ही काटा कि देह छूट गई। अभी-अभी सोनगढ़ में ऐसा बना।

वह (जैसे) ज़हर है वैसे राग भी ज़हर है। उस ज़हर को (राग को) यदि अपना माना तो दंश (मारे वैसे) मर गया। उसके

आत्मा के स्वरूप की शांति मर जाती है। उसका ज्ञायकभाव सत्ता में मर जाता है। उसकी श्रद्धा उसे नहीं रहती। आहा...हा...! राग को यदि कुछ अंश में भी ठीक माना तो राग रहित चीज़ को उसने अठिक माना है ! (उसका) अनादर किया है। आहा...हा...! `**द्वेष अरोचक भाव**' आत्मा के प्रति जिसको राग नहीं - प्रेम नहीं और राग के प्रति जिसको प्रेम है उसको आत्मा के प्रति द्वेष है, समझ में आया ? जिसको राग के प्रति प्रेम है उसको आत्मा के प्रति द्वेष है, आत्मा के प्रति उसको अरुचि है। राग के प्रति जिसकी रुचि है - जिसको राग की रुचि है, उसको आत्मा की अरुचि है। अरुचि है वह द्वेष है। आहा...हा...! श्वेतांबर में एक `आनंदघनजी' हुए, उन्होंने ऐसे शब्द लिखे हैं कि `**द्वेष अरोचक भाव**' (अगर) तुझे ज्ञायक स्वरूप नहीं रुचे और राग रुचे तो तुझे आत्मा पर द्वेष है। आहा...हा...! `**द्वेष अरोचक भाव**' आत्मा सुख (स्वभावी) आनंदकंद है, वह रुचे नहीं - वही द्वेष है। वह अरोचक (भाव) है वही द्वेष है और द्वेष है वह ज़हर है। आहा...हा...! कठिन बात है, भाई ! लोग तो शुभभावों में धर्म मनाते हैं। (कहते हैं) शुभभाव करो - करते-करते (धर्म) होगा ! लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी !! ऐसा है।

(यहाँ कहते हैं) `**अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परंतु अभिप्राय में काला साँप लगता है।**' आहा...हा...! धर्मी जीव को अभिप्राय में राग नाग जैसा - काले नाग जैसा दिखता है। आहा...हा...! अज्ञानी को राग से प्रेम (है), (उसके) प्रेमवाला है, उसको राग का ही प्रेम है। आत्मा के प्रति उसको द्वेष है। आहा...हा...! ऐसा सुनना भी कठिन लगे अंदर में ! यहाँ तो शुभभाव को ज़हर कहा है। अभिप्राय में काला साँप (लगता है)।

`**ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी...**' धर्मी जीव को, आत्मा का ज्ञानस्वरूप राग से भिन्न है - ऐसा अनुभव होने पर भी, राग के संयोग में खड़े (दिखते) हो तो भी `**विभाव से पृथक् हैं,...**' आहा...हा...! विभाव के परिणाम में खड़े होते हुए भी उससे भिन्न है। वह विभाव मेरा नहीं, विभाव का स्वभाव विकार और ज़हर है ! मेरा अमृत स्वरूप उस विभाव से भिन्न है। ऐसा धर्मी को - समकिती को अनुभव में आये बिना रहता नहीं। ऐसा अनुभव में नहीं आये और राग का प्रेम जिसको रहे उसको आत्मा के प्रति द्वेष है और (वह) मिथ्यादृष्टि है। आहा...! फिर भले ही जैन संप्रदाय में जन्मा हो परंतु अगर राग से प्रेम है और स्वभाव के प्रति द्वेष है (तो वह मिथ्यादृष्टि है)। विशेष कहेंगे।

वचनामृत - २१ से २५ ४

चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमें से नहीं उदित हुई भावना - ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को - चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय। परंतु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है - ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनंत तीर्थंकरों की कही हुई बात है।।२१।।

यह वचनामृत, २१ वाँ बोल है, २० (बोल) तो चले। विचार करने में थोड़ा अवकाश हो उसको समझने के लिये यह बात है, बापू ! आहा...! अभी तो जिसकी लौकिक नीति का ठिकाना न हो उसको तो यह बात सुनने भी मिले नहीं। सुनने मिले तो उसे रुचे भी नहीं। लौकिक नीति (मतलब) जिसको दारू, मांस और

परस्त्री का त्याग, इस अनैतिक का त्याग तो पहले होता है। दारू, शराब, मांस, परस्त्री - इसका त्याग तो (अगर) पहले से न हो तो वह नरकगामी जीव है। उसके लिये यह बात नहीं है। आहा...हा...!

`**चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित भावना...**' है शब्द ? क्या कहा इसमें ? यह चैतन्य आनंद स्वरूप भगवान, (ऐसे) चैतन को चैतन्यमें से परिणमित (अर्थात्) अंतरमें से हुई दशा। जिसको संसार के पाप के परिणाम तो न हो, परंतु पुण्य के परिणाम की भी जिसको अंदर में रुचि न हो। जिसके पाप के परिणाम तीव्र हैं उसको यह सुनना भी अंतर में रुचेगा नहीं। ऐसी चीज़ है भगवान !

मुमुक्षु :- हमें छूटने के लिये कोई रास्ता तो चाहिये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह रास्ता (है)। वही कहते हैं न भगवान ! `**चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित भावना...**' यह छूटने का रास्ता ! पहले शब्द में बहिन की वाणी। अनुभव की वाणी है।

असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरण ज्ञान है। जातिस्मरण अर्थात् यह जाति पहला भव... पहला भव... पहला भव... पहला भव... ऐसे नौ भव, उसका बहिन को प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके असंख्य अरब साल होते हैं। क्योंकि सुधर्म स्वर्ग में गये थे। उसमें उन्हें जैसे कल की बात याद आयें वैसे असंख्य अरब (सालों की) बातें याद आयी हैं। उन बातों के आने से पहले अंदर से उन्हें ऐसा उगा कि लौकिक नीति का जिसका ठिकाना नहीं हो उसको तो चैतन्य की बात किसी भी हालात में बैठेगी नहीं। समझ में आया ?

जिसको दारू, मांस, मच्छी और परस्त्री का त्याग नहीं है, उसके तो नैतिक जीवन का भी ठिकाना नहीं है। आहा...हा...! यहाँ तो लोकोत्तर नीति की बात चलती है। वह लौकिक नीति है। साधारण सज्जन जीव की भी ऐसी स्थिति नहीं होती। दारू,

मांस, मच्छी, परस्त्री - ये सब तो साधारण लौकिक नैतिक जीवन में भी ऐसी स्थिति नहीं हो सकती। आहा...! यहाँ तो इससे भी अतीरिक्त जिसको आत्मकल्याण करना हो (इसकी बात है)। उसका (अनैतिकता का) फल तो नरक और निगोद के भव हैं।

जिसको '**चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित...**' इसमें क्या कहा ? चैतन्यस्वरूप जो पुण्य और पाप के विकल्प से रहित है, ऐसे चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित (अर्थात्) उसमें से प्रगट हुई दशा। आहा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात है प्रभु ! (लेकिन) बात तो ऐसी है। यह कोई नई (बात) नहीं है। जैन परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ अनादि से यह बात करते आयें हैं। यह बात कोई नई है नहीं। जीव को समझने में नई लगे परंतु परमात्मा की वाणी - जिनेश्वर त्रिलोकनाथ - इनकी दिव्यध्वनि महाविदेह में तो अनादि से चलती है। यहाँ (भरतक्षेत्र में) तीर्थंकर का विरह होता है, महाविदेह में कभी भी तीर्थंकर का विरह नहीं होता। आहा...हा...! वहाँ भी अनंतबार जन्म लिया और समवसरण में भी गया, परंतु अंतर में, अंदर आत्मा में चोट नहीं लगी। आहा...हा...! जीव बाहर के प्रेम की रुचि में रहकर उसीमें भटकता रहा ! आ...हा...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं, (यह) थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहिन थोड़ा बोल सहजरूप से बोले। वहाँ बेटियाँ बैठी होगी। बहिन के आश्रय में ६४ बाल ब्रह्मचारी बेटियाँ हैं। बाल ब्रह्मचारी हैं...! कई लाखोंपतियों की बेटियाँ और अंग्रेजी पढ़ाई, ये आपकी पढ़ाई को क्या कहते हैं ? (ग्रेजुएट) ग्रेजुएट लीजिये ! भाषा आपकी भूल जाते हैं। ऐसी ग्रेजुएट... ग्रेजुएट... हुई बेटियाँ हैं ! उनके बीच ये बोले थे, उन लोगों ने थोड़ा लिख लिया, सो प्रसिद्धि में आया। वरन तो (प्रसिद्धि) में आता ही नहीं। वे तो बाहर से मर चुके हैं। (चलते हुए देखे तो जैसे) मुरदा चलता हो ! अंतर अतीन्द्रिय आनंद इतना उमड़ पड़ा है कि इस रस के आगे कौन सामने देखता है और कौन नमस्कार करता है, इसकी कोई दरकार नहीं ! उनकी रात्रि - चर्चा में ये वचन सहज निकल गये हैं !

प्रभु ! चैतन्य को (अर्थात्) इस आत्मा को चैतन्य में से (यानी) आत्मामें से परिणमित (भावना), '**परिणमित**' ऐसा क्यों कहा ? क्योंकि मात्र कल्पना - जानकारीरूप धारणा कर रखी हो, ऐसा नहीं, परंतु अंदर में उसका परिणमन हुआ है। आत्मा ज्ञानानंद है, ऐसी दशा हुई है। जानकारी - धारणा के आधार पर बात नहीं की। आहा...हा...हा...!

'**चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित...**' शब्द थोड़े हैं परंतु भाव बहुत ऊँचे हैं ! आहा...हा...! समझ में आया ? 'चैतन्य को' (ऐसा कहा तो) अब चैतन्य कहना किसको ? (कि) यह परम आनंद और परम ज्ञान की शक्ति का पिण्ड, अतीन्द्रिय आनंद और सच्चिदानंद प्रभु, द्रव्य स्वभाव जो अनादि अनंत (है) उस चीज़ को तो आवरण भी नहीं ऐसी चीज़ भीतर में है। ऐसी चीज़ की दृष्टि हुई और चैतन्य को चैतन्यमें से (अर्थात्) उसमें से परिणमित दशा। आहा...! यानी कि सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट करने की भावना। समझ में आया ? बात तो यहाँ बापू ! भव के अभाव की है प्रभु ! बाकी तो सब देखा है हमने तो ! इस चीज़ को हम ७२ साल से तो देख रहे हैं।

घर की दुकान थी वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता था। घर की बड़ी दुकान चलती है, पालेज में है। पाँच साल वहाँ दुकान चलाई लेकिन तब भी मैं तो ये शास्त्र ही पढ़ता था। '**पूर्व के संस्कार थे न** !' तब से अंदर से बात उठी है कि '**चैतन्य को**

चैतन्यमें से परिणमित...' आहा...हा...! राग-द्वेष नहीं, पुण्य-पाप नहीं। आहा...! जिसके नैतिक जीवन भी ऊँचे होते हैं, उस जीवन के प्रति भी लक्ष्य नहीं। आहा...हा...! अंतर चैतन्यमें से चैतन्य वस्तु जैसी है वैसी दृष्टि होने पर उसमें से निकली हुई परिणमनरूप दशा। आहा...हा...! उस चैतन्य के प्रवाहमें, से परिणतिमें से अवस्था का प्रवाह आया। जैसे कुएँमें से उबारा में पानी आता है वह प्राप्त की प्राप्ति है। कुएँ में था जब तो उबारा में आया। उबारा कहते हैं न ? आहा...हा...! वैसे चैतन्य में अंदर वस्तु से आहा...हा...हा...! उसमें से परिणमित हुई दशा वह '**भावना अर्थात् राग-द्वेषमें से नहीं उदित हुई भावना...**' आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात तो है प्रभु ! तेरी प्रभुता की बात तो बापू भगवान भी पूर्णरूप से नहीं कह सकें। आहा...!

'जे स्वरूप सर्वज्ञे दीठुं ज्ञान मां,...
जे स्वरूप सर्वज्ञे दीठुं ज्ञान मां,
कही शक्या नहीं ते पण श्री भगवान जो,
ते स्वरूप ने अन्य वाणी ते शुं कहे !
अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो।'

'श्रीमद् राजचंद्र' हो गये। ३३ वर्ष की उम्र में देह छूट गयी है। परंतु वे एकावतारी हो गये। मुंबई में लाखों का जवाहरात का व्यापार था। फिर भी अंदर में भिन्न हो चुके थे। नारियल में जैसे गोला छूटा पड़ता है वैसे धर्मी को सम्यग्दर्शन में राग से और देह से अंदर (चैतन्य) गोला भिन्न पड़ जाता है। आहा...हा...!

वे 'श्रीमद्' ३३ साल की उम्र में देह छूट गई, फिर भी अनुभव की दृष्टि के ज़ोर में इतनी प्रतीति आयी थी कि हमें अब एक भव करना है, बापू ! हम अब हमारे स्वदेश जायेंगे। हमारा

स्वदेश अंदर चैतन्य भगवान यह हमारा देश है। यह (बाहर का) देश नहीं। अरे...! पुण्य और पाप के परिणाम भी प्रभु ! हमारा देश नहीं ! यह बात 'बहिन' के (वचनामृतमें से) चल गई, परसों कही थी। ४०१ (नंबर का) बोल है। आ...हा...हा...! यह तो संसार से पागल होनेवाले की बातें हैं।

(यहाँ) कहते हैं कि जिसकी भावना चैतन्यस्वरूप भगवान (आत्मा) ! उसमें से उदित, प्रगट अंकुर परिणमन करे वह पर्याय - भावना कैसी होती है ? कि जिसमें पुण्य और पाप, राग-द्वेष रहित भावना होती है। आहा...हा...!

अरेरे...! ऐसा अवतार मिला इसमें अगर आत्मा का हित कुछ नहीं किया (तो) फिर से मनुष्यत्व कब पायेगा प्रभु ? चौरासी के अवतार में अनंत काल से भटक रहा है। नरक और निगोद के दुःख...! तेरे दुःख देखकर देखनेवालों को रोना आया है बापू ! इतने दुःख सहन किये हैं। लेकिन भूल गया ! थोड़ी बाहर में अनुकूलता मिली, दो-पाँच करोड़ रुपये मिले और बच्चे आदि अनुकूल रहते हो, शरीर थोड़ा सुंदर मिला हो कि बस ! गये काम से...! मर गया उसमें ही ! मेरी चीज़ अंदर में कौन है ? इसको देखने का, विचार करने का अवकाश तक नहीं लेता !!

यहाँ तो कहते हैं कि, आहा...हा...! चैतन्यमें से उदित भावना राग-द्वेष रहित (होती है) ! राग-द्वेष रहित...! आहा...! यहाँ तो धर्म की बात है न प्रभु ! धर्म (प्राप्ति) पहले नैतिकता की बात तो कही आगे। नैतिक जीवन तो होना ही चाहिये। साधारण प्राणी - सज्जन जिसको कहे उसको भी दारू, मांस और परस्त्री तो हो ही नहीं सकते। सर्व (स्त्रियाँ) बेटियाँ, माता और बहिन समान उसको तो होती हैं। आहा...हा...! ऐसा तो जिसका नैतिक जीवन होता

है।

ऐसे जीवनमें से जब चैतन्यमें से परिणमित पर्याय आती है, वह राग और द्वेष रहित दशा आती है। आहा...हा...! थोड़ा कठिन लगे लेकिन प्रभु ! सुनना हं...! कठिन लगे तो भी...! दूसरी बात क्या करेंगे ? यहाँ तो ४५ साल से यह बात चलती है। ४५ साल हुए ! ४५ यहाँ हुए और ४५ इसमें (यानी) संसार में ४५ हुए ! संसार में तो २३ वर्ष गये लेकिन बाद में भी वहाँ संप्रदाय में इसमें (मुहपत्ती में) रह गये न ! ऐसे करके ४५ हुए और ४५ यहाँ (सोनगढ़ में) हुए। लेकिन यह बात जो उगी...! आहा...हा...हा...!

राग और द्वेष रहित भावना है ? `**ऐसी यथार्थ भावना हो...**' `ऐसी' यथार्थ भावना - यथार्थ भावना क्यों कही ? क्योंकी शास्त्र की जानकारी करके बात की धारणा कर रखी हो परंतु अंदर की भावना न हो। आहा...हा...! शास्त्रों को पढ़कर धारणा कर ली हो लेकिन अंदर में राग-द्वेष रहित होकर चैतन्य की भावना परिणमित न हुई हो। (यहाँ तो यथार्थ भावना हुई हो) ऐसे जीव की बात ली है।

वह जीव जब चैतन्य में परिणमन करता है आहा...हा...! भगवान अंदर चैतन्य के नूर का पूर (बाढ़) है ! चैतन्य का ध्रुव प्रवाह है। पानी का प्रवाह जैसे धारावाहीरूप से यों चलता है। नदी में पानी जब बहुत ज़ोर से दोनों तट को छूता है... हमारे उमराला - जन्मधाम में बड़ी नदी है। सैलाब आता है तब २०-२५ फुट पानी आता है। पूरा किनारे पर पानी छा जाता है। सामने देख न सके उतना पानी...!

यहाँ कहते हैं कि, नदी में जब बाढ़ आती है तब (पानी का)

प्रवाह जितना ज़ोर में होता है, इससे भी अनंत गुना प्रवाह अंदर आत्मा (का) चैतन्यप्रवाह है ! आहा...! चैतन्य के तेज का - प्रकाश का नूर का पूर है ! अरेरे...! उसमें से उदित हुई भावना (अर्थात्) `**ऐसी यथार्थ भावना हो...**' यहाँ `यथार्थ' पर ज़ोर है। कल्पना करके (कुछ परिणमन हुआ) वह नहीं परंतु `यथार्थ' (भावना है)। जैसी चीज़ है वैसी अंदर भावना हो `**तो वह भावना फलती ही है।**' तो वह भावना फलती ही है ! अर्थात् उस भावनामें से केवलज्ञान को आना ही होगा ! दूज का उदय हुआ अब पूर्णिमा न हो ऐसा तीन काल में नहीं बनता। क्या कहा ?

दूज उगती है न ? दूज के बाद तेरहवें दिन पूर्णिमा होती ही है। वह पूर्णिमा न हो ऐसा कभी नहीं बनता। आहा...हा...हा...! वैसे जिसको आत्मा के सम्यक्‌रूपी बीज का जहाँ अंदर में उदय हुआ...! भगवान चैतन्यमूर्ति आनंद का नाथ ! अंदर में राग और द्वेष के भाव से रहित होकर अंदर चैतन्य बीज खिल उठा...! आहा...हा...! परिणमित दशा का उदय हुआ वह बीज है। उस बीजमें से (दूजमें से) अब पूर्णिमा होगी ही, वैसे यह सम्यग्दर्शन की परिणति हुई उसको केवलज्ञान की उत्पत्ति अवश्य होगी ही। जैसे यह दूज (का चंद्र) तेरह दिन बाद (पूर्णरूप से परिणमित) होता है वैसे इस जीव को एक या दो भव में केवलज्ञान आये बिना नहीं रहता। आहा...हा...हा...! ऐसी बातें हैं भाई ! है (अंदर) ? (चैतन्यमें से) उदित भावना ऐसी यथार्थ हो तो वह भावना फलती ही है। आ...हा...हा...!

बहिन विचारपूर्वक अनुभवमें से बोलते थे कि, `**यदि नहीं फले तो जगत को - चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...**' क्या कहा ? आहा...हा...! चैतन्य की भावना (यानी कि) राग-द्वेष से रहित अंदर

चैतन्य स्वरूप - प्रभु की भावना हुई उसका फल अवश्य आता है। (अर्थात्) केवलज्ञान होकर ही रहेगा। न फले तो जगत को - चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े। क्योंकि यदि इस भावना का फल न आये तब तो जगत शून्य हो जाये। क्योंकि हरएक (द्रव्य की) पर्याय का (यदि) फल न आये तो - तो जगत शून्य हो जाये। आ...हा...हा...हा...!

पाप के परिणाम का फल भी नरक-निगोद न आये, पुण्य का फल भी स्वर्ग और मनुष्यपना न आये और चैतन्य के परिणाम का फल केवलज्ञान न आये (तो) जगत को शून्य होना पड़े !! आहा...हा...! समझ में आया ? पाप के बीज बोये उसको नरक और निगोद न मिले, पुण्य का भाव हुआ उसे स्वर्ग या मनुष्यत्व न मिले और चैतन्य की भावना हुई उसे केवलज्ञान न मिले, (तो) जगत को शून्य होना पड़े !! (पंरतु) ऐसा तीनकाल में बनता नहीं ! आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है भगवान ! दुनिया से अलग प्रकार की लगे लेकिन बात तो यही है प्रभु ! आ...हा...हा...!

उसको मनुष्यत्व मिला तो मनुष्य कहना किसको ? `गोम्मटसार' में एक पाठ है। मनुष्य किसको कहे ? आहा...हा...! `**ज्ञायक ते इति मनुष्यः**' (अर्थात्) आत्मा का चैतन्य स्वरूप जाने उसे मनुष्य कहते हैं, बाकी सबको पशु कहते हैं। आहा...हा...! `गोम्मटसार' में (आता) है। `**ज्ञायक ते इति मनुष्यः**' आत्मा चैतन्यस्वरूप है उसे जो जाने वह मनुष्य कहलाये। `**मनन कर्ते इति मनुष्यः**' चैतन्य का मनन करे, ध्यान करे वह मनुष्य (है)। बाकी इसके बिना सबको पशु कहा जाता है। आहा...हा...!

शास्त्र में तो यहाँ तक पाठ है कि जिसको चैतन्य की भावना - सम्यग्दर्शन नहीं है - वे सब चलते हुए मुरदे हैं !! `मोक्षपाहुड'

में है। `अष्टपाहुड' है न ? इसमें आता है - चलते हुए मुरदे हैं। मरे हुए को जैसे उठाकर श्मशान में ले जाते हैं, वैसे ये भी चलते हुए मुरदे हैं !! चैतन्यस्वरूप अंदर भगवान पूर्ण वीतरागमूर्ति ! इसकी जिसको रुचि नहीं, इसके प्रति ढलन नहीं, इसकी ओर का झुकाव नहीं, इसकी ओर का प्रेम नहीं, वे सब चलते हुए मुरदे हैं। ऐसा है, बापू ! आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं कि `**चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...**' मतलब ? जैसी-जैसी भावना (हो) उसका फल यदि न आये तो जगत रहे नहीं। पाप करे (उसे) नरक, निगोद न मिले तो जगत रहे नहीं। पुण्य करे और मनुष्यत्व - स्वर्ग न मिले तो जगत रहे नहीं। वैसे आत्मा की भावना करे उसे केवलज्ञान न हो तो तत्त्व रहे नहीं और जगत रहे नहीं ! आहा...हा...! बापू ! मार्ग तो कोई अलग है प्रभु ! आहा...हा...!

ये तो आमंत्रण था और आ गये ! वरना तो सोनगढ़ से बाहर...!

मुमुक्षु :- हमारे अहोभाग्य कि हमें समझने मिला !!

पूज्य गुरुदेवश्री :- बापू ! यह तो `वनमी मारी कोयल' बिछड़ जाती है वैसे कोयल आ गई है। आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं प्रभु ! एक बार सुन तो सही ! जिसको आत्मा की भावना हो उसका फल सर्वज्ञपना न आये तो जगत में पाप का फल नरक-निगोद और पुण्य का फल (मनुष्य) - स्वर्ग, वह सब नष्ट हो जाये। समझ में आया ? इन शब्दों मे ऐसी भावना भरी है !! आहा...हा...!

मुमुक्षु :- बहुत अच्छा अर्थ आया।

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्या कहा ?

मुमुक्षु :- बहुत अच्छा अर्थ आया आज !

पूज्य गुरुदेवश्री :- वस्तु ऐसी है, प्रभु ! आहा...हा...!

पाप के परिणाम करे और उसे नरक-निगोद न मिले तो-तो वह वस्तु - नरक और निगोद रहेंगे ही नहीं। पुण्य के परिणाम करे और स्वर्ग, मनुष्यत्व न मिले तो वह वस्तु ही नहीं रहती। वैसे चैतन्य के परिणाम करे और केवलज्ञान न हो तो वह वस्तु ही नहीं रहती। आहा...हा...! बोल आया है ऊँचा !! चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े इसका यह अर्थ (है) हं...! क्या कहा इसमें समझ में आया ?

जगत है, पुण्य और पाप के फलस्वरूप स्वर्ग - नरक है और आत्मा की भावना के फलस्वरूप सिद्धपद है। तो (ऐसी) जो वस्तु हैं (अर्थात्) सिद्धपद है, नरक - निगोद है, स्वर्ग-मनुष्य है - यह सब भाव अनुसार न मिलते हो तो-तो ये वस्तुएँ रहती ही नहीं। वैसे चैतन्य की भावना हुई और केवलज्ञान न हो तब तो सिद्धपद नहीं रहता। आहा...हा...! दूज उगे और पूर्णिमा न हो तो वह दूज उगी ही नहीं। आहा...हा...! वैसे भगवान आत्मा ! (जिसने) चैतन्य के बीज अंदर बोये वह यदि उगे नहीं और केवलज्ञान न हो तो-तो यह आत्मा ही नहीं रह सकता। आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु !

`**चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय।**' देखा ? क्योंकि उसकी पर्याय है और (उसका) फल यदि न आये तो द्रव्य ही न रहे। जिस आत्मा ने नरक - निगोद के भाव किये, उस भाव अनुसार नरक में (न जाये तो वह द्रव्य ही नहीं रहता)। ब्रह्मदत चक्रवर्ती ! छः खण्ड का धनी ! ९६ हज़ार स्त्रियाँ और ९६ करोड़ पायदल...! उसका नायक मरकर सातवीं नरक में गया। (यहाँ) कहते हैं कि उस पाप का फल

यदि न आये तो जगत ही नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। बात समझ में आती है न ? वैसे पुण्य के फलस्वरूप स्वर्गादि, मनुष्यादि न मिले तो वस्तु ही नहीं रहती, जगत शून्य हो जाये। आहा...हा...! बहुत गहरी (और) सूक्ष्म बात है। `**परंतु ऐसा होता ही नहीं।**' आ...हा...हा...! `**अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय।**' मतलब ? परिणाम जो है उसका फल यदि न आये तो द्रव्य रह ही नहीं सकता। जैसी पर्याय की उसका फल अगर न आये तो पर्याय के बिना द्रव्य रह ही नहीं सकता। द्रव्य का नाश हो जाय। थोड़ी सूक्ष्म बात है परंतु ऊँची बात है। आ...हा...हा...! `**परंतु ऐसा होता ही नहीं।**' आहा...हा...हा...! जैसे परिणाम किये वैसा फल आये बिना रहता ही नहीं। आहा...! चारगति और सिद्धगति - यह परिणाम का फल है। उन परिणामों का फल अगर न आये तो चारगति और सिद्धगति ही नहीं रह सकती। आहा...हा...! समझ में आया ? वैसे आत्मा में राग और द्वेष रहित चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान की भावना (जिसको हुई) उसको केवलज्ञान और परमात्मपद न मिले तब तो उस पर्याय रहित द्रव्य का नाश हो जाये, उसका नाश होने पर जगत का भी नाश हो जाये। ऐसा अंदर कहते हैं, देखो ! है ?

`**चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है।**' पाप किये हो तो नरक-निगोद, पुण्य किये हो तो स्वर्गादि और चैतन्य के परिणाम किये हो तो मुक्ति (मिले बिना रहे नहीं)। ऐसा...है ? `**चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है।**' - कुदरत में इसका फल आये बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! जिसको चैतन्य की भावना प्रगट हुई उसका मोक्ष हुए बिना रहता ही नहीं, दूज उगी उसकी पूर्णिमा हुए बिना रहती ही नहीं। आहा...हा...! बात तो थोड़ी

सूक्ष्म (है) लेकिन...! बहिन के शब्द हैं। आप लोगों ने लिखाया है न ! कि दोपहर में यह पढ़ना। वहाँ कागज आया था। सुबह `समयसार' और दोपहर में यह (`वचनामृत' पर स्वाध्याय किया जाये)। आहा...हा...!

`**परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है**' मतलब क्या कहा ? जैसे पुण्य, पाप और धर्म के परिणाम करेगा इसके अनुसार जगत में इसका फल आये - ऐसे कुदरत बँधी हुई है।

मुमुक्षु :- महा सिद्धांत है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- इसका फल आये बिना रहे ही नहीं। आहा...हा...हा...! मांस, दारू और मच्छी खाये, परस्त्री का सेवन करे और वह नरक में न जाय (तो) जगत को शून्य होना पड़े। इस परिणाम के फलस्वरूप जो गति है वह गति ही नहीं रहेगी। वैसे जिसने पुण्य के परिणाम किये और उसे स्वर्ग न मिले तो वह स्वर्ग ही नहीं रहेगा। वैसे जिसने चैतन्य के परिणाम किये (उसको) मुक्ति न मिले तो वह सिद्ध (गति) नहीं रह सकती। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है लेकिन प्रभु ! तेरे घर की है ! तेरे घर की बात है, प्रभु ! आहा...हा...! `**ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।**' कहा न ? शुभ, अशुभ और शुद्ध - इन परिणामों का फल ही यह जगत है। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। आहा...हा...! `**यह अनंत तीर्थंकरों की कही हुई बात है।**' है उसमें ?

बहिन तो तीर्थंकर के पास थे। महाविदेह में भगवान विराजते हैं उनके पास थे। वहाँ हमारे साथ थे।

(बहिन) ऐसा कहते हैं कि अगर इन परिणामों का फल ऐसा नहीं आया आहा...हा...! तो अनंत तीर्थंकरों की कही हुई बात झूठी ठहरेगी ! यह बात अनंत तीर्थंकरों ने कही है कि, जो पाप के

परिणाम करे उसे नरक-निगोद मिलता है, पुण्य के परिणाम करे उसे स्वर्गादि मिलता है फिर भले ही चार गति में भटके ! और चैतन्य के परिणाम करे तो उसे मुक्ति मिले - अनंत तीर्थंकरों ने यह बात कही है। है न उसमें प्रभु ? आ...हा...हा...! अरेरे...! दरकार कहाँ है ? इसमें अगर पैसे ५-५० लाख, करोड़-दो करोड़ मिल गये तब तो क्या कहना...! `हुं पहोळो ने शेरी सांकडी' (अभिमान का पार नहीं)। ऐसा हो जाय ! उलझ जाय... इसीमें उलझ जाय !

यहाँ कहते हैं कि इसके परिणाम का फल जगत में न आये तो जगत को शून्य होना पड़े। जगत जगतरूप रह सके नहीं। पुण्य-पाप का फल और धर्म का फल न मिले तो यह दुनिया - जगत का अस्तित्व न रहे। चारगति और सिद्धपद का अस्तित्व नहीं रह सकता। आहा...हा...! जिसने जो बोया उसका बीज उगे बिना रहता नहीं और अगर उगे नहीं तो उसने बीज बोया ही नहीं, और उगा तो बीज बोया है और उसका फल आया, फल आया तो जगत का अस्तित्व टिका रहा। इस तरह जगत में जैसे परिणाम किये वैसा उसका फल आया तो जगत यों का यों टिक रहा है। आहा...हा...! `**यह अनंत तीर्थंकरों की कही हुई बात है।**' इस एक बोल में इतना समय गया। ऐसी बात है।

प्रभु ! तू है न ! वह तो त्रिकाली द्रव्य है। अब यदि तेरे वर्तमान परिणाम हो (और) इन परिणामों का फल नहीं आता तो यह जगत में स्वर्ग-नरक ही नहीं रहते। और यदि मोक्ष के परिणाम कर और मोक्ष न आये तो सिद्धपद (-सिद्ध)गति ही नहीं रहती। ये चारगति और सिद्धगति - सबका नाश हो जाता। आहा...हा...! ऐसी बात है प्रभु ! यह अनुभव की बात है। यह २१ वाँ बोल हुआ।

गुरुदेवको मानो तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। वाणीका प्रभाव ऐसा है कि हजारों जीव समझ जाते हैं। तीर्थंकरकी वाणी जैसा योग है। वाणी ज़ोरदार है। चाहे जितनी बार सुनने पर भी अरुचि नहीं आती। स्वयं इतनी सरसतासे बोलते हैं कि जिससे सुननेवालेका रस भी जमा रहता है, रसभरपूर वाणी है।।२२।।

२२ वाँ बोल पढ़ लेना।

मुमुक्षु :- २२ वाँ भी भले ही स्वाध्याय में चले !

पूज्य गुरुदेवश्री :- २२ वें बोल में मेरा नाम आता (है इसलिये) इसमें हमारा काम नहीं ! बहिन खुद तो कहें लेकिन मेरे मुँह से यह बात कहना शोभा नहीं देता। बहिन को तो खुद के भाव में जो आया सो कहा। वह बात अपने स्थान में रही। मैं अपनी बात नहीं कह सकता। समुच्चय बात कर सकते हैं। समुच्चय समझें ? वरना तो कहाँ से आयें और कहाँ जानेवाले हैं ये सब अंदर से नक्की हो चुका है ! अंदर से नक्की हो चुका है !! ऐसा है, बापू ! (सब) नक्की हो चुका है।

मुमुक्षु :- हमको अब बताईये !

पूज्य गुरुदेवश्री :- महाविदेह से आये हैं। प्रभु विराजते हैं,

सर्वज्ञदेव सीमंधर प्रभु समवसरण में महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ मैं राजकुमार था। पिताजी को हाथी, घोडें, (और) अरबों की पैदाइश थी। महीने की अरबों की पैदाइश और घर में हाथी, घोड़े थे। उसका मैं राजकुमार था।

'कुंदकुंदाचार्य' संवत ४९ में यहाँ से भगवान के पास गये थे। उसवक्त मैं भी हाथी की सवारी पर भगवान के दर्शन करने, 'कुंदकुंदाचार्य' के दर्शन करने समवसरण में गया था। आ...हा...हा ! ऐसी बात है, बापू ! बहुत सूक्ष्म बातें हैं ! और भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बातें हैं। ऐसी बातें हैं कि यह जीव...!

मुमुक्षु :- बहिन कौन थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बहिन वहाँ नगरसेठ के लड़के थे। हमलोग चार जन वहाँ थे। एक वे थे, एक शांताबहिन हैं, वे भी नगरसेठ के लड़के थे। एक नारणभाई थे जिन्होंने (यहाँ) हमारे पास दीक्षा ली थी, गुज़र गये। वे वहाँ वेश्या के लड़के थे। मैं राजकुमार था, वहाँ हम चार लोग थे। वहाँ से यहाँ भरत में आये हैं। अब यहाँ की बात को छोड़ो... हमारी बातें बहुत सूक्ष्म हैं, ऐसी बातें अपने मुँह से कहना शोभा नहीं देता। बाकी वैसे यहाँ से देहांत के पश्चात् हम स्वर्ग में जानेवाले हैं। वहाँ देव होनेवाले हैं। दूसरे भव में तीर्थंकर के पुत्र के रूप में अवतार है। तीसरे भव में स्वर्ग है। चौथे भव में तीर्थंकर होकर केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष जानेवाला हूँ। यह भाईने पूछा, यह सेठ ने पूछा इसलिये उत्तर देते हैं।

मुमुक्षु :- हम तो आपके पुत्र समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हमारे लिये तो सब बड़े सेठ ही कहलाये न !

मुमुक्षु :- गुरुदेव ! सभा में प्रथम बार आपने घोषणा की !

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसी बातें नहीं कही जाती। ये तो बहिन ने इसमें लिखा है। इसलिये थोड़ा कहा, बापू ! इससे भी सूक्ष्म बातें अभी दूर हैं। हमें तो भीतर में प्रत्यक्ष हो चुकी है !! लेकिन अभी जीवन थोड़ा है तब तक ये बातें चलेगी। फिर तो स्वर्ग में जाना है, देवलोक में... वैमानिक में...! वैमानिक...! वैमानिक देव है ! देव चार हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक (ऐसे) चार प्रकार के देव हैं। उसमें मेरा वैमानिक में अवतार है। (अब) इस बात को रखो एक तरफ...!

ऊपर-ऊपरके वांचन-विचार आदिसे कुछ नहीं होता, हृदयसे भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। अंतस्तलमेंसे ज्ञायककी खूब महिमा आनी चाहिये।।२३।।

अब यहाँ २३ वाँ बोल (लेते हैं)। २३ वाँ बोल। `**ऊपर-ऊपर के वांचन-विचार आदि से कुछ नहीं होता,...**' आहा...हा...! ऊपर-ऊपर से थोड़ा पढ़ लिया और विचार कर लिया इससे कुछ उपलब्धि नहीं होती, बापू ! अंदर गहराई में जाना पड़ेगा। आहा...हा...! समझ में आया ? आहा...हा...! ऊपर-ऊपर का वांचन, सुनना, विचार आदि ! `आदि' शब्द पड़ा है न ? ऊपर-ऊपर से सुना

हो इसमें कुछ मिलनेवाला नहीं। आहा...हा...! उसे आत्मा में उतारना होगा, प्रभु ! अंदर में उतारने के लिये पहले श्रद्धा व भावना तो जीव को करनी पड़ेगी। श्रद्धा और ज्ञान में तो लेना पड़ेगा कि आत्मा में जाऊँगा तब मेरा कल्याण होगा। ऐसा पहले ज्ञान में निर्णय करना होगा। भले ही वैसा परिणमन न हो लेकिन ज्ञान में वैसा निर्णय तो पहले होना चाहिए कि मुझे इस द्रव्य आत्मा जो है उसमें जाना ही होगा। इसके बिना मेरा कल्याण है नहीं। आ...हा...हा.....हा...! सूक्ष्म बातें हैं, बापू !

(अब कहते हैं) `**हृदय से भावना उठे...**' आहा...हा...! हृदय से भावना उठे (ऐसा) कहा। ऊपर-ऊपर से वांचन, श्रवण और मनन (करे) सो नहीं। आहा...हा...! भीतरमें से भावना उठे, आत्मामें से जागृत दशा हो `**तो मार्ग सरल होता है।**' तो मार्ग सरल होता है। `**अंतस्तलमें से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिये।**' आहा...हा...! प्रभु ! जो ज्ञायक है, जो जाननेवाली चैतन्य ज्योति है, अंदर में झिलमिलाती ज्योति प्रज्वलित है, प्रभु ! चैतन्य के पूर (बाढ़) - ज्ञान के पूर भरे हैं, पानी का प्रवाह जैसे यों बहता है वैसे यह चैतन्य का नूर ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... यों जाता है। ऐसा जो चैतन्य के पूर का ध्रुवपना आहा...! इसकी अंतरमें से भावना उठे तो मार्ग सरल हो। आहा...हा...! पहले जीव को सुनना तो होगा न प्रभु ! सुनने भी मिले नहीं वह जाये कहाँ ? आ...हा...हा...!

`**अंतस्तलमें से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिये।**' आहा...हा...! शास्त्र की धारणा भी की हो, पढ़ा हो परंतु वह तो ऊपर-ऊपर की बात है। आहा...हा...! अंतर में ज्ञायकभाव...! अंतस्तल में। ज्ञानज्योति चैतन्य ध्रुव विराजमान है, प्रभु ! इसकी अंतस्तलमें से खूब महिमा आनी चाहिये। तब उसे अंतर में प्रवेश होकर सम्यग्दर्शन

होता है, तभी उसकी धर्म की प्रथम दशा होती है। प्रथम दशा...! आहा...हा...! थोड़े शब्द में बहुत गहरा भर दिया है !

क्या कहा इसमें ? (कि) `**अंतरस्तलमें से खूब महिमा आये**' बाहर से नहीं। पुण्य-पापरूप भाव के फल की महिमा सो तो धूल की महिमा (है)। (यहाँ तो) आत्मा (का) अंतरस्तल - जो क्षेत्र है, जिस क्षेत्र में आनंद की फसल है। (इसके महिमा की बात है)। जगत में भी... क्या कहते हैं उसे ? चावल के अलावा वह क्या...? आपके नाम भी भूल जाते हैं ! कुलथी...! कुलथी के खेत-जमीन साधारण होते हैं जबकि चावल के खेत ऊँचे होते हैं। अच्छे खेत में चावल पकता है। कुलथी अच्छे खेत में नहीं पकती। वह साधारण पत्थर की जमीन में कुलथी पकती है। हमारे वहाँ पास-पास में गाँव है, वहाँ कुलथी पकती है, चावल पकते हैं सब बगल-बगल में हैं। वैसे यह आत्मा - जमीन (अर्थात्) अंतरस्तल (वह) अतीन्द्रिय आनंद की फसल हो, ऐसा यह खेत है। आहा...हा...! जबकि पुण्य-पाप के खेतमें से संसार की गति मिले ऐसा यह खेत है। आहा...हा...!

पुण्य और पाप के भाव, वह खेत चार गति में भटकने का (खेत) है जबकि यह अंतर खेत जो है आहा...! उसमें आनंद की फसल हो ऐसा यह खेत है। इसमें से अतीन्द्रिय आनंद का अंकुरा फूटता है ! आहा...हा...! ऐसा आत्म-तल अंदर तल है !! वर्तमान पर्याय से अंदर देखे तो, उसका तल नाम ध्रुव (स्वरूप को) देखे तो उसकी पर्याय में आनंद के अंकुर फूटे ऐसा वह क्षेत्र है, ऐसा वह आत्मा तल है। अरे... अरे...! ऐसी बातें...!

यहाँ तो बाहर में कुछ पैसेवाला हो जाये कि फिर तो पूछना ही क्या ? खान-पीन का ठिकाना नहीं, अभक्ष्य खा रहे हैं कि नहीं... (इसकी भी खबर नहीं रहे)। यह आता है न क्या कहते

हैं ? अंडा और आहा...! मछली का तेल और कॉडलिवर (तेल) आता है न ? काफ़ी कुछ पता है न ! ऐसा आये और दुनिया इस्तेमाल करे...! अररर...! इसका फल तो बापू नरक है ! उस नरक के दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। प्रभु ! तेरे क्षण के दुःख...! प्रभु कहते हैं कि नरक के दुःख का वर्णन मैं क्या करूँ ? करोड़ों भव व करोड़ों वर्ष तक, करोड़ जीभों से कहे तो भी पूरा न हो इतना वहाँ दुःख का वेदन है !! नरक में...!

एक आदमी का खून करे (और) उस खून की साक्षी अगर मिले तो राजा शायद एकबार फाँसी दे दें, परंतु २५-५०-१०० (आदमी) के खून किये हो तो क्या राजा उसे (१०० बार) फाँसी दे सकता है ? क्या करेगा ? १०० बार फाँसी देगा ? एकबार खून किया उसे एकबार फाँसी और २५-५० खून किये हो उसके लिये क्या ? उसके लिये कुदरत में नरक है। यहाँ राजा उसका फल नहीं दे सकता। उसको २५ बार फाँसी पर नहीं लटका सकता। आहा...हा...हा...! उसका फल नीचे (नरक में) है। आहा...हा...!

वह यहाँ कहते हैं कि अंदरमें से भावना उठनी चाहिये। ऊपर-ऊपर से विचार (चलते) हो उसका फल कुछ नहीं आता। (`**हृदय से भावना उठे तो**) **मार्ग सरल होता है। अंतरस्तलमें से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिये।**' आहा...हा...! (२३ पूरा हुआ)।

आत्मार्थीको स्वाध्याय करना चाहिये, विचार-मनन करना चाहिये; यही आत्मार्थीकी खुराक है।।२४।।

(अब) २४ `**आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिये,...**' बहिन की भाषा है, (कि) स्वाध्याय करना चाहिये। दो-चार घण्टे शास्त्र स्वाध्याय के लिये समय निकालना। एक घण्टा, आधा घण्टा पढ़ लेना कोई पर्याप्त नहीं। संसार हेतु - पाप हेतु कैसे चौबीस घण्टे निकालते हैं कि नहीं ? तो उसमें से दो-चार घण्टे शास्त्रवांचन के (लिये) समय निकालना चाहिये। भगवान के कहे हुए आगम, तीनलोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि - वाणी - आगम का वांचन करना चाहिये, उस पर विचार करना चाहिये, उसका मनन करना चाहिये। `**यही आत्मार्थी की खुराक है।**' आहा...हा...! इसके बिना उसे रुचे नहीं, सुहाता नहीं। समझ में आया ? दो पंक्ति में इतनी बात भर दी है !!

`**आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिये,...**' स्वाध्याय मतलब ये शास्त्र (स्वाध्याय)। स्वाध्याय के दो प्रकार हैं। एक वांचन, श्रवण, मनन वह स्वाध्याय और एक स्वाध्याय माने आत्मा - स्व का अंदर मनन (व) आनंद का अनुभव वह स्वाध्याय है - वह निश्चय स्वाध्याय (है)। आहा...हा...! जबकि शास्त्र वांचन आदि करना वह व्यवहार स्वाध्याय (है)। परंतु पहले व्यवहार स्वाध्याय होना चाहिये। वांचन चाहिये, विचार चाहिये, मनन चाहिये, चिंतवन चाहिये। (इसलिए कहा कि,) स्वाध्याय करना चाहिये। आहा...हा...! वांचन करना, पूछना, प्रश्नोतर करना, इसका विचार करना, ये सब पहले जीव को होना चाहिये। बापू ! भगवान द्वारा कथित आगम - शास्त्र पर विचार करना चाहिये। आहा...हा...!

यहाँ (हमारा) तो ६४ की साल से शास्त्र वांचन है। ६४ की साल से ! पिताजी की अपनी दुकान है न ! वहाँ पालेज में दुकान है। अभी भी दुकान चल रही है। बड़ी दुकान है। ४० लाख रुपये हैं। ४ लाख की उपज है। परंतु मैं तो (वहाँ भी) स्वाध्याय करता था। १९ साल की उम्र से इन शास्त्रों का स्वाध्याय कर रहा हूँ। दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग, आहा...हा...! (ये सब पढ़ा हुआ है)। ऐसे मैं जब ७८ में `समयसार' हाथ लगा कि पुकार उठा और कहा कि, `**बापू ! अगर शरीर रहित होना हो तो यह पुस्तक है** !!' दामनगर के एक सेठ थे। उसको मैंने कहा था, `**सेठ ! यह समयसार शरीररहित होने की चीज़ है** !' ७८ की (साल की) बात है। कितने वर्ष हुए ? ५७ हुए न ! उन दिनों की बात है। कहा कि, शरीररहित होना हो तो यह `समयसार' है। इसमें आत्मा की बात है। और आत्मा का मोक्ष कैसे हो ? (व) सम्यग्दर्शन (कैसे हो) ? यह चीज़ इसमें है। ऐसी चीज़ और जगह है नहीं।

यहाँ कहते हैं `**आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिये,...**' आहा...हा...! वांचन करना, विचार करना, पूछना, पर्यटन करना। आहा...हा...! दूसरों के आगे बात को रखना कि यह कैसे है ? `**विचार-मनन करना चाहिये; यह आत्मार्थी की खुराक है।**' आत्मार्थी की खुराक यह है। श्रीखंड, पुड़ी और पत्तरवेलीयां...! पत्तरवेलीयां समझते हैं ? अरवी के पत्ते की पकौड़ी ! अरवी के पत्ते की पकौडी

को पत्तरवेलीयां कहते हैं न ! श्रीखंड, पुड़ी और अरवी के पत्ते की पकौड़ी !! अरवी के पत्तें होते हैं न ? फिर उसे बेसन में डालकर गोल बीड़ा बनाते हैं न ! बीड़ा बनाकर इसके टुकड़े करते हैं ! सब देखा तो है न ! किया नहीं है कुछ ! (परंतु) देखा है सब ! उस पत्ते के बीड़े के टुकड़े करके उसे घी में तलते हैं और इसके साथ श्रीखंड (हो)...! (तब ऐसा लगे जैसे) आहा...हा...हा...! सब प्रकार देखा है। बापू ! हर-एक ! एक स्त्री के साथ शादी नहीं की इतना फ़र्क है। बाकी सब देखा हुआ है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मार्थी की तो यह खुराक है। २४ घण्टेमें से स्वाध्याय, मनन का समय निकाल लेना चाहिये। चाहे कैसे भी दो-चार घण्टे निकालने चाहिये। यह २४ वाँ बोल हुआ।

प्रथम भूमिकामें शास्त्रश्रवण-पठन-मनन आदि सब होता है, परंतु अंतरमें उस शुभ भावसे संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। इस कार्यके साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभ भावसे रहित मार्ग भीतर है - ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिये।।२५।।

(अब) २५ (वाँ बोल)। `**प्रथम भूमिका में शास्त्रश्रवण-पठन-मनन आदि सब होता है,...**' पहले (ये सब) होता है। एकदम अनुभव हो जाये, ऐसे नहीं। प्रथम भूमिका में शास्त्रपठन (यानी कि) भगवान द्वारा कथित शास्त्र का पठन, उसका श्रवण-सुनना, उसका मनन आदि सब होता है। `**परंतु अंतर में उस शुभभाव से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये।**' आहा...हा...! ऐसा जो भाव वह सारा शुभभाव है, पुण्य है। इससे संतुष्ट नहीं हो जाता। आहा...हा...! होता है जरूर...!

`**प्रथम भूमिका में शास्त्रश्रवण-पठन-मनन आदि सब होता है, परंतु अंतर में उस शुभभाव से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये।**' कि हमने तो काफ़ी पठन कर लिया, बहुत श्रवण किया और बहुत कुछ स्मरण में है - (ऐसे) संतोष नहीं पकड़ना। `**इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये...**' कौन-सा कार्य ? पठन, श्रवण और मनन। शास्त्र का मनन।

`**इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है।**' शास्त्रवांचन करे, सुने, विचार करे परंतु भीतर में देखना है कि भाई ! मार्ग तो भीतर में कोई अलग ही है। इन शुभ विकल्पों से भी कोई (मोक्ष)मार्ग नहीं। शुभभाव (हो) किन्तु वह कोई मार्ग नहीं - ऐसा खटका तो भीतर में रहना ही चाहिए। आ...हा...हा...! ये (कइयों को) तो शास्त्रवांचन का भी ठिकाना नहीं होता !

(आत्मार्थी को) प्रथम भूमिका में शास्त्रवांचन (के भाव) आते हैं परंतु अंदर शुभभाव में संतुष्ट नहीं हो जाता। (उन सब) कार्यों के साथ खटका रहना चाहिए कि, `**यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है।**' आहा...हा...! शास्त्र पढ़े, सुने परंतु जानता है

कि ये तो शुभ विकल्प हैं। अंदर में मार्ग कोई अलग है। शुभराग से हटकर अंदर चैतन्य स्वरूप में जाना, वह मार्ग कोई अलग प्रकार का है। शास्त्रवांचन किया इसलिये मार्ग मिल गया ऐसा संतोष नहीं लेना है। आहा...हा...! इसका भी (अभी तो) कइयों का ठिकाना नहीं ! ये तो जिसको (इतना सब होता है) उसको (कहते हैं कि) परंतु भीतर में खटका तो रहना ही चाहिए। आहा...हा...! (कि) `**मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभ भाव से रहित मार्ग भीतर है...**' शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप के विकल्प - भाव हैं, (उन) दोनों भाव से रहित आहा...हा...! अंदर मार्ग है। उन शुभाशुभ भावों में मार्ग नहीं। पुण्य-पाप के भाव में मार्ग नहीं। (कोई) ऐसा कहे कि हम पापी हैं इसलिए पहले हम पुण्य में तो आये, लेकिन ऐसा पुण्य में आये तो वैसा पुण्य भी अनंतबार किया है। वह कोई मार्ग नहीं। जिसको जन्म-मरण रहित होना हो उसके लिए वह मार्ग नहीं है। आ...हा...हा...!

`**ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिये।**' उन सब में भी ऐसा खटका तो लगा ही रहना चाहिए। शास्त्रवांचन करे, विचार करे, कहे, बोले, कथा करे परंतु खटका तो रहना ही चाहिए कि इन विकल्पों से मार्ग भीतर में कोई अलग है। ऐसा खटका लगे बिना यदि विचार में अटक जाये तो आगे नहीं बढ़ सकता। अतः इस वांचन में भी अंदर में खटका तो (रहना चाहिए)। शुभाशुभ भाव से भिन्न मार्ग है - ऐसा रहना चाहिए। विशेष कहेंगे...

वचनामृत - २६ से ३० ५

भीतर आत्मदेव बिराजमान है उसकी सँभाल कर। अब अंतरमें जा, और तृप्त हो। अनंत गुणस्वरूप आत्माको देख, उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनंदसे भरपूर स्वभावमें क्रीड़ा कर, उस आनंदरूप सरोवरमें केलि कर - उसमें रमण कर।।२६।।

वचनामृत, २६ वाँ बोल है। २५ वाँ (पूरा) हुआ। इसके पहले जो ऐसा कहा न ? कि `णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं।' पाठ तो अभी इतना है कि `णमो अरिहंताणं' परंतु आखरी पंक्ति ऐसी है कि `णमो लोए सव्व साहुणं।' (ऐसा) आता है न ? वहाँ (`सव्व') सब पद को लागू पड़ता है और इसके अतिरिक्त `धवल' (शास्त्र में) एक बात आती है कि, `णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं' ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। भूतकाल के, भविष्य के और वर्तमान अरिहंतों को नमस्कार ! ऐसे `णमो लोए

सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं' - जो सिद्ध हुए, हो रहे हैं और होंगे उन्हें भी अभी से नमस्कार करता हूँ। वैसे `णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आयरियाणं' - उसमें आचार्य... वैसे तो आत्मा में पाँच पद समाविष्ट हैं। उन्हें यहाँ सम्यक्‌दृष्टि नमस्कार करते हैं कि, तीनकाल में वर्तते सर्व आचार्य और उपाध्याय को जिसमें अभी कोई जीव नरक में भी हो (तो उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ)।

जैसे तीर्थंकर श्रेणिक राजा अभी पहली नरक में हैं। आगे होनेवाली चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। वे भी अभी त्रिकालवर्ती नमस्कार में आ जाते हैं। आहा...हा...! तीनों काल विराजमान पंचपरमेष्ठी, भूतकाल, वर्तमान और भविष्य - तीनों काल प्रवर्तमान सर्व पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करके वचनामृत की शुरूआत करते हैं। इसमें यह २६ वाँ बोल आया (है)। आहा...हा...हा...!

`**भीतर आत्मदेव विराजमान है...**' मुश्किल लगे जगत को ! (क्योंकि) अभ्यास जो नहीं। दुनिया के अभ्यास आड़े यह बात एक तरफ छूट गई ! संसार में भटकने के भाव - मिथ्यात्व और शुभाशुभ भाव, ये तो चारगति में भटकने के भाव हैं।

यहाँ कहते हैं कि `**भीतर आत्मदेव विराजमान है...**' सब में हं...! आहा...हा...हा...! अंतर दिव्य शक्ति, जैसी दिव्य नाम प्रधान शक्ति, पंचपरमेष्ठी होने का सामर्थ्य है, ऐसी शक्ति इस आत्मा (में) अंतर में बिराजमान है। आहा...हा...! `**उसकी सँभाल कर।**' आहा...हा...हा...!

भगवान आत्मा अंतर (में) बिराजमान है। यह देह, वाणी, मन, पैसा, लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति - जड़ ये तो सब धूल हैं - पर (हैं)। अंदर में पुण्य और पाप के भाव होते हैं वे भी पर हैं और विकार व संसार का कारण अर्थात् संसार है। इससे भिन्न आत्मा अंदर

में बिराजमान है - वह आत्मदेव है ! (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! नाप कैसे कर सके ? कभी करता नहीं और करने की दरकार कभी की नहीं। (इसलिए कहते हैं, अब) `**उसकी सँभाल कर।**' सब की सँभाल करने के लिए तू तत्पर हो रहा है परंतु अंतर में यह भगवान बिराजमान है उसकी सँभाल कर। एकबार इसके सन्मुख देख तो सही ! कि, अंदर कौन है ? आहा...हा...!

बाह्य में व्यवस्था करने के (पीछे) समय का अवकाश कहाँ? सारा दिन इस व्यवस्था में - यह धूल की, पैसे की, स्त्री और बच्चों की व कुटुंब की व्यवस्था के (पीछे) केवल पाप (बंध करता है)। धर्म तो नहीं लेकिन पुण्य भी नहीं !! पुण्य तो कब होता है ? कि जब चार-चार घण्टे, तीन-चार घण्टे सत्‌समागम करे, वांचन करे, श्रवण करे तो भले ही धर्म न हो परंतु पुण्य होता है। परंतु यहाँ तो कहते हैं कि इस पुण्य से भी पार भीतर में आत्मा बिराजमान है। आ...हा...हा...! `**उसकी सँभाल कर।**' उसकी सँभाल कर (ऐसा कहते हैं)। आहा...हा...!

मैं एक आनंदमूर्ति प्रभु हूँ ! इसकी रुचि और दृष्टि अनंतकाल में एक सेकण्ड मात्र भी नहीं की। इसकी तो सँभाल कर। `**अब अंतर में जा,...**' अंतर की गहराई में - पाताल में भगवान परमात्मा बिराजमान है। आहा...हा...हा...! वर्तमान पर्याय, शुभाशुभ भाव के पीछे अंतरात्मा भगवान बिराजमान है। आहा...हा...हा...! वहाँ जा। है? `**अंतर में जा,...**' इतना समय ही कहाँ है ?

भक्ति, पूजा, व्रत, तप आदि सब भाव शुभभाव हैं। वह कोई धर्म नहीं। आते हैं... धर्मी जीव को भी ऐसे भाव आते हैं जरूर, फिर भी उसे हेय जानते हुए अंदर चिदानंद भगवान की वे सँभाल रखते हैं। धर्मी जीव उसे कहते हैं जो अंतर में बिराजमान चैतन्य

भगवान है उसकी सँभाल लेते हुए अंतर में जाते हैं। आ...हा...हा...!

(इसलिए यहाँ कहते हैं) `**अंतर में जा, और तृप्त हो।**' बाहर में प्रभु तुझे कहीं तृप्ति नहीं मिलेगी। आहा...हा...! अंदर शुभ और अशुभ विकल्परूप राग के पीछे चैतन्यदेव दिव्यशक्ति का (धारक) भगवानआत्मा बिराजमान है। आहा...! उसे परमात्मस्वरूप भी कहते हैं। वह परमात्मा - स्वभाव-शक्ति अंदर बिराजमान है। परमात्मा स्वयं सिंह समान (है)। (ऐसा) परमात्मा का बल अंदर भरा है। इसकी सँभाल कर। प्रभु ! और तृप्त हो। वहाँ तुझे शांति मिलेगी, वहाँ तृप्ति होगी। यहाँ बाहर में तुझे पाँच-पचीस लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ मिले इससे तृप्ति नहीं होगी। तेरा भिखमंगापन छूटेगा नहीं। भिखारी हो गया है भिखारी...! ये लाईये... ये लाईये... ये लाईये... ये लाईये...

एक बार कहा था न ? (वांचन में) भावनगर दरबार आये थे। उन्हें साल भर की एक करोड़ की उपज है, पैदाइश है। हमारे पास में ही है - सोनगढ़ से नजदीक (है)। व्याख्यान में आये थे तब कहा `दरबार ! महिने में जो लाख या दो लाख माँगे वह छोटा भिखमंगा है, करोड़ माँगे वह बड़ा भिखमंगा, भिखारी है।' यहाँ हमको कहाँ उनसे कुछ लेना - देना था ? (वह) राज़ी हो जाये तो कुछ पैसे दे (जाये) ! यहाँ तो कुछ है नहीं। आहा...! दरबार खुद आये थे। (उन्होंने कहा) `सही बात, महाराज !' मैंने कहा बापू ! यह धूल है तेरे पास ! इस राज्य की एक वर्ष की करोड़ की उपज है वह धूल है ! अंदर में भगवान बिराजमान है उसे न देखकर भिखमंगा (होकर बाहर में भिख माँगता है)। भिखमंगा... भिखमंगा समझे ? भिखारी को भिखमंगा कहते हैं न ! जो माँगते हैं... माँगते हैं। भिखारी (की तरह) यह लाईये... यह

लाईये... यह लाईये... यह लाईये... यह लाईये.... यहाँ कहते हैं कि भाई ! ऐसा भिखमंगापन छोड़ दे ! और (भीतर आत्मा में) तृप्त हो। अंदर में तृप्ति हो, ऐसी चीज़ पड़ी है। प्रभु ! ऊपर के शरीर को तू मत देख ! स्त्री का, पुरुष का, नपुंसक का, तिर्यंच का, पशु का, सिंह-नाग (आदि) शरीर को न देख ! इसके आत्मा को अंदर देखे तो वह चैतन्यदेव बिराजमान है। आहा...हा...!

(अतः कहते हैं कि) `**अंतर में जा और तृप्त हो।**' वहाँ तुझे तृप्ति होगी। अंतर में जा, वहाँ तुझे तृप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! बाहर में - धूल में कहीं भी तृप्ति नहीं होगी। करोड़-करोड़ की महिने की पैदाइश हो तो भी भिखारीपना (करे)... अधिक करूँ... अधिक करूँ... और ज्यादा करूँ... भिखमंगा की माफिक भिखारी (होकर घूमता है)। शास्त्र में उन्हें `वरांका' कहे हैं। शास्त्र में वरांका माने भिखारी कहा है। सिद्धांत में पाठ है। `वरांका' शब्द आता है - `वरांका' ! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तू अंतर में देख तो सही एकबार ! `**अनंतगुणस्वरूप आत्मा को देख,...**' अंदर अनंतगुणस्वरूप आत्मा है। आ...हा...हा...! एक गुणरूप नहीं, रागरूप नहीं, अनंता... अनंता गुणस्वरूप...! एकबार कहा था - आकाश के (जितने) प्रदेश हैं इससे अनंतगुने गुण एक जीव में हैं। जगत को प्रतीति में आना मुश्किल। (क्योंकि कभी) सुना नहीं। जीव की संख्या अनंत है। इससे भी ये परमाणुओं की संख्या अनंतगुनी है। यह (अंगुली) एक चीज़ नहीं, यह तो अनंत परमाणुओं का दल है। टुकड़े करते... करते... आखरी परमाणु रहे उसे जिनेश्वरदेव ने परमाणु कहा है। ऐसे अनंत परमाणुओं का यह पिण्ड है। आत्मा की संख्या से परमाणुओं की संख्या अनंतगुनी है। आहा...हा...! इससे अनंतगुने तीन काल

के समय हैं। एक सेकण्ड में असंख्य समय जाते हैं। ऐसे तीनकाल के समय, परमाणुओं की संख्या से अनंतगुने अधिक हैं। इससे अनंतगुने आकाश के प्रदेश हैं। यह चौदह ब्रह्माण्ड है। जितने में जीव, जड़ और छः द्रव्य रहते हैं उसे लोक कहते हैं। लोक (से) बाहर खाली जगह (है)। खाली... खाली... कहीं भी इसका अंत नहीं, ऐसा दसों दिशा में आकाश (छाया है)। अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... अनंत... आकाश। इसमें एक परमाणु को रखे और वह जितनी जगह (रोके उसको) प्रदेश कहते (हैं)। इस आकाश के जितने प्रदेश हैं इससे अनंतगुने गुण एक जीव में हैं। आहा...हा...हा...! है ?

`**अनंतगुणस्वरूप आत्मा को देख,...**' आ...हा...हा...! लेकिन समय कहाँ है ? फुरसद कहाँ है ? आहा...! एकमेक हो चुका है - पुण्य और पाप में एकमेक हो चुका है। अंदर भिन्न भगवान है इसकी एकबार सँभाल कर ! `**उसकी सँभाल कर। वीतरागी आनंद से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,...**' आ...हा...हा...! क्या कहा इसमें ?

अंदर वीतरागी आनंद पड़ा है। अनादि अनंत वीतरागी आनंद की मूर्ति है प्रभु ! उसकी वर्तमान दशा में सारी गड़बड़ है। पुण्य और पाप, संसार, नरक और निगोद (सारी गड़बड़ है)। वस्तु है सो तो वीतरागी आनंद से भरा स्वभाव है। आहा...! उसमें क्रीड़ा कर - उसमें केलि कर, उसमें जाकर मौज कर। अन्यत्र कहीं भी मौज है नहीं। आ...हा...हा...हा...!

देखो ! ये बहिन अनुभवमें से बोले हैं। अतीन्द्रिय आनंद के अनुभवमें से (बोले हैं)। बालब्रह्मचारी ६४ बेटियाँ हैं। लाखोंपतियों की बेटियाँ हैं। कुछएक Graduate हैं। उन लोगों के बीच बहिन इतना बोले, (उन) लोगों ने लिख लिया तो यह प्रकाशित हो गया। आहा...! लेकिन बोले हैं अंतर के अनुभव के नाद से !! नाद

अंतर में आया, जो बेटियों ने सुना सो लिख लिया।

`**वीतरागी आनंद से भरपूर...**' क्या कहा ? वीतरागी आनंद से भरपूर स्वभाव है। राग और पुण्य-पाप से भरा स्वभाव नहीं है। पुण्य और पाप तो कृत्रिम नये भाव विकार - ज़हर उत्पन्न करता है। पुण्य और पाप के भाव तो ज़हर है। पहले आ चुका है। (बोल-१९) शुभभाव है वह काला नाग है, ज़हर है। पहले आ चुका था। आहा...हा...! कैसे विश्वास हो इस बात का ? आत्मा भीतर में कौन है ? इसकी तो कुछ खबर तक नहीं।

यहाँ कहते हैं `**वीतरागी आनंद से भरपूर स्वभाव में क्रीड़ा कर,...**' सार है सार - केवल यह तो !! `**उस आनंदरूप सरोवर में...**' अंदर आनंदरूप सरोवर है, प्रभु ! वहाँ नज़र कर और वहाँ `**केलि कर - उसमें रमण कर।**' इसका नाम सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञान है। आहा...! धर्म की पहली सीढ़ी इसका नाम है। बातें करने से कोई काम हो जाये ऐसा नहीं है ! (हमलोग) वैसे भी नहीं कहते कि, `वाते वड़ा थाय नहीं' वड़ा (पकौड़ी) बनाने का सामान चाहिए - आटा, घी-तेल या ऐसी दूसरी-दूसरी चीज़ (चाहिए) - यूँ ही बातों से पकौड़ी नहीं बनती। सिर्फ भाषा से (बातों से) कुछ नहीं होता।

अंतर में भगवानआत्मा में उतरकर उसमें क्रीड़ा कर, वहाँ केलि कर। वहाँ तुझे आनंद होगा और तेरे (सारे) दुःखों का अंत आ जायेगा। आ...हा...हा...! यह २६ (वाँ पूरा हुआ)। २७ वाँ बोल आप लोगों को पढ़ लेना है।

भविष्यका चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथकी बात है। इसलिये कहा है कि - `बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत !'।।२८।।

२८ वाँ बोल। क्या कहते हैं अब ? `**भविष्य का चित्रण कैसा करना है वह तेरे हाथ की बात है।**' आज के बाद भविष्य का चित्रण करना - नरक का, तिर्यंच का, मनुष्य का, देव का या सिद्ध का - इन पाँचमें से किस प्रकार का चित्रण करना यह वर्तमान तेरे हाथ में है (ऐसा कहते हैं)। पूर्व के जो कर्म हैं सो तो खत्म हो गये। अब कहते हैं कि नये कर्म का बंधन करना हो तो शुभाशुभ भाव (कर) और यदि मोक्ष चाहिये तो सिद्ध भाव (प्रगट कर)। यहाँ भविष्य के चित्रण में तो पाँचों गति आ जाती हैं।

वर्तमान में नरक के परिणाम करेगा तो नरक मिलेगी, तिर्यंच के लायक भाव करेगा तो पशु होगा, मनुष्योचित भाव करेगा तो मनुष्य होगा, देव के लायक भाव करेगा तो देव होगा, सिद्ध के योग्य भाव करेगा तो सिद्ध हो जायेगा। इन पाँचों गति का चित्रण करना तेरे हाथ में है। तू जैसा चित्रण करेगा वैसा बनेगा। आ...हा...हा...!

`**वह तेरे हाथ की बात है। इसलिये कहा है कि - `बंध समय**

जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत !' `सलुणा...! बंध समय जीव चेतो रे।' बंध के समय ही चेत जा। पुण्य-पाप के भाव का बंध हो उसवक्त ही चेत जा। `बंध समय जीव चेतो रे' - एक स्तुति है - देवचंदजी का स्तवन है। देवचंदजी (नाम से) एक (साधु) श्वेतांबर में हो गये। यह स्तवन इनकी कृति है। `बंध समय जीव चेतो रे, उदय समय क्या चिंत ! सलुणा।' जब उदय आ ही गया अब तू क्या करेगा ? फिर तो उदय आयेगा ही आयेगा और इसका फल तुझे भुगतना ही पड़ेगा। उस वक्त फिर पछतायेगा तो वह निरर्थक है।

`**उदय समय क्या चिंत** !' (यानी कि) कर्म के उदय में तू चिंतवना कर कि अरे...! यह टल जाये (तो अच्छा) ! मुझे ऐसा न हो !' वह सोचना बेकार है। उसवक्त तेरी चिंता काम नहीं आयेगी। आहा...हा...हा...! यह २८ (पूरा हुआ)।

ज्ञानको धीर-गंभीर करके सूक्ष्मतासे भीतर देख तो आत्मा पकड़में आ सकता है। एक बार विकल्पका जाल तोड़कर भीतरसे अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं।।२९।।

२९ (बोल)। `**ज्ञान को धीर-गंभीर करके...**' आहा...हा...! यह ज्ञान जो है - जानने की दशा है उसे धीर-गंभीर करके (मतलब)

यह ज्ञान की दशा जो पुण्य-पाप की ओर ढल चुकी है, वे सब संसार (में) भटकने के लक्षण हैं। आहा...हा...! ज्ञान को धीर-गंभीर करके (यानी) अंतर जानपने में सूक्ष्मता लाकर, अंतर में ढल सके ऐसी भावना करके... आहा...! `**भीतर देख...**' अरे...! अरे...! ऐसी भाषा है !!

ज्ञान को - जानपने को धीरा (करके), जो पर की ओर झुक रहा है उसे धीरा करके वह जिसकी पर्याय है उसे तू देख। उस पर्याय के पीछे पाताल - चैतन्य पाताल भगवान बिराजमान है। आहा...हा...! यहाँ तो पाँच-पचीस लाख जहाँ मिले कि राज़ी-राज़ी हो जाता है। (कहेगा) `लपसी का अदहन करो आज !' २५ लाख मिले हैं ! एक करोड मिले हैं ! करो लपसी का अदहन ! लपसी चढ़ाईये !! पूरी जहरीली आग है उसमें !! आहा...!

यहाँ कहते हैं कि, भीतर में जा। `**आत्मा पकड़ में आ सकता है।**' आ...हा...हा...हा...! ज्ञान को धीरा व सूक्ष्म करके, बाहर में भटक रहे ज्ञान को ज्ञान की वर्तमान दशा, बाहर में भटक रहे ज्ञान को अंदर में लाने के लिए धीरा कर प्रभु ! सूक्ष्म कर ! धीर गंभीर हो !

`**ज्ञान को धीर-गंभीर करके सूक्ष्मता से भीतर देख...**' `सूक्ष्मता' से अंदर देख ! स्थूल (उपयोग से) अंदर देखना नहीं होगा। स्थूल (उपयोग में) तो राग, द्वेष और ये अनादि से भटक रहा है वह संसार दिखेगा। आहा...हा...! शब्द थोड़े हैं (परंतु) भाव बहुत गहरे भरे हैं।

अनुभवमें से - आनंद के वेदनमें से निकली हुई वाणी है। अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करते हैं। ज्ञानी अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करते हैं। उस वेदनमें से वाणी (का) जो विकल्प आता है

सो राग है। आ...हा...हा...! परंतु उसमें यह आया है।

ज्ञान को धीरा करके, सूक्ष्म करके भीतर में देख। `**तो आत्मा पकड़ में आ सकता है।**' अंदर भगवान आत्मा पकड़ में (आये ऐसा है) मतलब अनुभव हो सकता है। आहा...हा...! `**एक बार विकल्प का जाल तोड़कर...**' राग और पुण्य-पाप के ज़हर की जो जाल (है) उसे एकबार तोड़कर (मतलब) इसकी महिमा और कीमत तोड़कर, अंदर में चैतन्य की महिमा में जा ! तुझे अंदर भगवान मिलेगा !! आहा...हा...! ऐसी बात है। `**वचनामृत (तो) मक्खन है** !'

`**भीतर देख तो आत्मा पकड़ में आ सकता है।**' आहा...! जिस स्थिति में - सूक्ष्म उपयोग (से) आत्मा पकड़ में आये वैसे भीतर में देख तो पकड़ में आ सकता है। पुण्य और पाप के विकल्प से वह पकड़ में नहीं आ सकेगा। आ...हा...हा...हा...! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के परिणाम से यह पकड़ में आये वैसा प्रभु नहीं है। `सँड़सा से सर्प पकड़ा जाता है।' छोटे-छोटे मोती पकड़ने में सँड़सा काम नहीं आता। मोती पकड़ने के लिये सुनार की छोटी सँड़सी होती है या हाथ से पकड़ते हैं। बहिनें-बेटियाँ ये तोरण बनाते हैं न ? तोरण... तोरण...! सर्प पकड़ने का सँड़सा मोती पकड़ने में काम आता है क्या ? सुनार की छोटी सँड़सी होती है या हाथ से धीरे से उठाकर तोरण में लगाते हैं। मोती के बनाते हैं न ? क्या कहते हैं उसे ? तोरण... तोरण...! (लौकिक में) क्या कहा जाता है वह भी भूल जाते हैं। तोरण बनाते हैं तब उसमें धीरे से मोती लगाते हैं। वह हाथ से पकड़कर लगाते हैं, लकड़े से पकड़कर नहीं। वैसे भगवान को पकड़ना हो तो पुण्य-पाप (के भाव से) पकड़ में नहीं आयेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु !

यहाँ तो संसार का अभाव (करने की) बातें हैं, प्रभु ! जिससे जन्म-मरण न मिटे उस बात में कोई दम नहीं है। वह तो मरकर नरक और निगोद (में जायेगा)। करोड़पति - अरबोंपति मरकर पशु होंगे। हाथी, घोड़ा और सूअर होगा, और सूअर वहाँ विष्टा खाते हुए मरकर फिर नरक में जायेगा !! सूअर बहुत विष्टा खाता है। आहा...! ऐसे भव तूने अनंतबार किये, प्रभु ! (अब) एकबार अंदर में जा ! आत्मा पकड़ में आये वैसा है।

`**एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा,...**' आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म अंदर विकल्प - राग का जो भाव है उसे भी छोड़कर, उस विकल्प के पीछे भगवान चिदानंद बिराजमान है। अंदर में पाताल में, इसके तल में प्रभु बिराजमान है। राग ऊपर-ऊपर दिखता है, अंदर में भगवान है, वहाँ जा ! वहाँ जा, इसकी सँभाल कर और विकल्प की जाल तोड़, अंदर से अलग हो जा। `**फिर जाल चिपकेगा नहीं।**' आ...हा...हा...हा...!

मकड़ी होती है न मकड़ी ? उसको आठ पैर होते हैं। और उन आठ पैरों से जो लार निकलती है उस लार में वह खुद ही फँस जाता है। करोळियो...! (हिन्दी में) क्या कहते हैं ? मकड़ी। ये दो पैरवाले मनुष्य को मनुष्य कहें। लेकिन स्त्री से शादी करके चार पैरवाला हुआ मतलब पशु हुआ ! चार हुए न ? चार पैर। इसमें फिर लड़का हुआ तो छः पैर हुए, भँवरे को छः पैर होते हैं। फिर भँवरे की तरह भूँ-भूँ करता रहता है - यह मेरा बेटा है और यह मेरा वह है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा व्यवसाय है और यह मेरी नौकरी चालू है और पचास हज़ार की नौकरी मिल रही है और सालभर की एक लाख की पैदाइश है। (वैसे)

भँवरे की तरह भूँ-भूँ करता रहता है। जब बेटे की शादी करे तब आठ पैर होते हैं। मकड़ी को आठ पैर होते हैं, देखा है कभी ? भँवरे को छः पैर होते हैं, मकड़ी को आठ होते हैं और आठ पैरवाला होते ही लार निकालकर उसमें ही उसमें मर जाता है ! लार निकालकर उसीमें फँस जाता है। `मकड़ी' कहते हैं न आप लोग (हिन्दी में) ? `मकड़ी' !

ऐसा यहाँ कहते हैं कि पर में इस प्रकार जा रहे हो, इसके बदले अंदर आत्मा में जा न ! आहा...हा...! जहाँ सिद्धपद प्राप्त हो ऐसी दशा अंदर में है। `**एक बार विकल्प का जाल तोड़कर भीतर से अलग हो जा, फिर जाल चिपकेगा नहीं।**' जिस चने की भुनाई हो गई वह फिर उगेगा नहीं। जो चना दाळिया हुआ... `दाळिया' कहते हैं न ? भूने हुए चने को `दाळिया' कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? (दाळिया) वह भूना हुआ चना फिर उगेगा नहीं। वैसे एकबार अंतर में आत्मज्ञान हुआ और राग को जला दिया, वह फिर उगेगा नहीं। (अर्थात्) उसको फिर अवतार हो सकता नहीं। एक-दो अवतार हो तो भी उसे ज्ञेयरूप जानते हैं और अपने आनंद में रहकर उसे ज्ञेयरूप जानकर छोड़ देते हैं। आ...हा...हा...! वह जाल फिर चिपकेगा नहीं। आहा...हा...! वे भूने हुए चने फिर से नहीं उगेंगे। वैसे एकबार अज्ञान को जला दिया और यदि आत्मज्ञान कर लिया, तो वह (अज्ञान) फिर से उगेगा नहीं। उसका भवभ्रमण नहीं होगा, उसका चौरासी में भटकना नहीं होगा। (अगर अज्ञान को नहीं जलाया) तो मरकर चौरासी में (भटकने) चला जायेगा। आहा...हा...हा...!

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ! ९६ करोड़ पैदल, ७२ हज़ार नगर, ४८ हज़ार पाटन, ९६ करोड़ गाँव, ९६ करोड़ पैदल के बीच मौज

कर रहे, हीरा का...! क्या कहते हैं आप लोग ? पलंग। पलंग भूल जाते हैं ! ये हीरे के पलंग ! उसमें सोया था। उसमें उसे इतनी ममता थी कि, यह मेरा... यह मेरा... यह मेरा... रानी को याद करके, रानी को...! एक रानी थी, जिसकी (एक) हज़ार देव सेवा करते थे, ऐसी ९६ हज़ार (रानियाँ) होती (हैं) परंतु एक रानी ऐसी होती (है)। उस रानी को याद करते-करते देह छूट गई तो सातवीं नरक में चला गया !! अभी सातवीं नरक में है। ३३ सागर की (आयुष्य की) स्थिति है। अभी तो ८५ हज़ार साल बीते। इससे असंख्य अरब वर्ष अभी तो वहाँ रहना होगा। आहा...हा...! ऐसे अवतार अनंतबार किये हैं। प्रभु ! तूने भी अनंतबार ऐसा किया है।

(अब) एकबार (अंदर आत्मा को) देख और (विकल्प की) जाल को तोड़ दे तो फिर वह चिपकेगा नहीं। फिर जाल चिपकेगा नहीं। भूने हुए चने उगेंगे नहीं। आहा...! यह २९ वाँ (पूरा) हुआ।

जब बीज बोते हैं तब प्रगटरूपसे कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि `इस बीजमेंसे वृक्ष उगेगा, उसमेंसे डालें-पत्ते-फलादि आयेंगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्यमें प्रगटरूपसे कुछ दिखाई नहीं देता इसलिये विश्वास बिना `क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परंतु द्रव्यस्वभावका विश्वास करनेसे निर्मलता प्रगट होने लगती है।।३०।।

३० (वाँ बोल)। `**जब बीज बोते हैं तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता,...**' क्या कहते हैं ? बीज... बीज बोये तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता। `**तथापि विश्वास है कि `इस बीजमें से वृक्ष उगेगा,...**' बीज बोया उसमें से वृक्ष होगा। `**उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आयेंगे',...**' - उसमें से इसके फल आयेंगे। गेहूँ का दाना बोया होगा तो गेहूँ का फल भी आयेगा। एक गेहूँ से अनेक गेहूँ होंगे। एक दाना बोया इसके बहुत होंगे। ऐसा उसको विश्वास है। आहा...! एक बाजरे का दाना बोया (तो उसको) विश्वास है कि इसमें से भुट्टा लगेगा उसमें सैकड़ों बाजरे के दाने पकेंगे। ऐसा उसको विश्वास है तब। आ...हा...हा...! इस बीजमें से वृक्ष होगा, जिसमें फलादि आयेंगे। `**पश्चात् उसका विचार नहीं आता,...**' आहा...हा...! फिर उसको विश्वास आ गया और फल आने के बाद विचार नहीं आते।

`**उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक...**' आहा...हा...हा...! बीज की माफिक, द्रव्यस्वरूप भगवान को एकबार पकड़ने से, उसका विश्वास आने पर कि इसके फल में मुझे सिद्धपद मिलेगा, इसमें से मुझे केवलज्ञान होगा, इसमें से अब मुझे अनंत आनंद (मिलेगा), ऐसा समकितरूपी बीज अगर बोया... आहा...हा...! उस बीज में उतनी ताकत है कि जैसे एक बीजमें से हज़ारों दाने पकते हैं, वैसे इस समकितरूपी बीजमें से केवलज्ञान की फसल होगी। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं ये ! किस प्रकार का उपदेश है यह ? यह करो... और यह करो और यह करो - ऐसा उपदेश तो (अन्यत्र) चलता ही है। (और) अनादि से वैसा करता ही रहा है। परंतु कुछ नहीं करना है बल्कि अंदर में जम जाना है - इस चीज़ को जीव ने सुनी तक नहीं। रुचिपूर्वक सुनी नहीं है।

इसलिए यहाँ कहते हैं कि, `**मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...**' (अर्थात्) भगवानआत्मा को सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान द्वारा पकड़ने से - अनुभव करने से, `**विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...**' ऐसा कहा है न ? सिर्फ द्रव्य को नहीं परंतु द्रव्य का विश्वास करके। सम्यग्दर्शन, ज्ञान का विकास करके। आहा...हा..! है ? `**द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है;...**' बीज बोने से जैसे फल होता है वैसे भगवान पूर्णानंद के नाथ को बीजरूप पकड़ने से, जैसे बाहर में चंद्र में बीज (-दूज उगती) है तो पूर्णिमा हुए बिना रहती नहीं, वैसे चैतन्यमूर्ति भगवान(आत्मा) राग से रहित (है), (ऐसा) एकबार अंदर बीज अगर बोया तो उस बीजमें से केवलज्ञान हुए बिना रहता नहीं। ऐसा (किये) बिना अन्य कोई रास्ता अपनायेगा तो वह तो चारगति में भटकने का रास्ता है। आहा...हा...!

नरक, निगोद और एकेन्द्रिय... आहा...हा...! मूली...! मूली समझें ? एक पौधे की मुलायम जड़। जब-जब उसमें गया (तब) मुफ्त में बिका है। पहले चार पैसे का सेर (मिलता) था। अभी तो महँगाई बढ़ गई है। चार पैसे की सेर लौकी ! दो सेर लौकी ली हो, लड़का साथ में हो (और) लड़का कहे, बापू ! मुझे मूली दिला दो !' तो (सब्जीवाला) एक मूली मुफ्त में दे देता है। मूली...! उस (मूली में) भाई मुफ्त में बैठा था ! (इस प्रकार) मुफ्त में बिका है। आहा...हा...! जिसे कीमत भी नहीं दी लोगों ने। बैगन या लौकी के सेर के चार पैसे दिये हो। अभी तो महँगाई बढ़ी है और आपके यहाँ (नायरोबी) में तो काफ़ी महँगा है। यहाँ की बात सुनी है कि, यहाँ तो बहुत महँगा (है) ! ओ...हो...हो...हो...! वहाँ सेब छ आना का मिलता है यहाँ कहते हैं कि सेब पाँच से छः रुपया

का मिलता (है) ! इतनी तो महँगाई बढ़ गई। आहा...हा...! ये सब बाहर की कीमत बढ़ा ली है। जितनी इस देश में इसकी कीमत बढ़ गई है उतनी वहाँ काठियावाड में नहीं (बढ़ी)। इसतरह आत्मा ने अपनी कीमत छोड़कर पर की कीमत बढ़ा ली है। शरीर, वाणी, पैसा, पुण्य, पाप - इन सब की कीमत बढ़ाकर आत्मा की कीमत छोड़ दी है। आ...हा...हा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं `**मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...**' विश्वासपूर्वक मतलब सम्यग्दर्शनपूर्वक। बिना इसके पकड़ नहीं सकता, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

यह तो बहिन-बेटियों के बीच बोलने में आ गया, सो लिख लिया तो यह प्रसिद्धि में आया। अनुभव की वाणी है।

(हम) जब छोटी उम्र के थे, करीब १०-१२ साल की उम्र (होगी)। हमारे पड़ोसी एक ब्राह्मण थे। वे ब्राह्मण जब नहाते... बाद में पहनते हैं न क्या कहते हैं उसे ? `खभोटियुं' ! तब खभोटियुं पहनते-पहनते बोलते थे - `अनुभवीने एटलुं आनंदमां रहेवुं रे... भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' आठ-दस साल की उम्र में यह सुना था ! मुझे लगा, यह क्या बोलते हैं मामा ? क्योंकि हमारे माता के (गाँव के) थे इसलिये हम ब्राह्मण को `मामा' कहते थे। (मैंने कहा) `मामा ! आप ये क्या बोलते हो ?' `अनुभवीने एटलुं...' तो कहा `मुझे कुछ ज्यादा पता नहीं - अनुभवी मतलब क्या ? मैं तो भाषा बोलता हूँ।' `अनुभवीने एटलुं आनंदमां रहेवुं।' आहा...हा...! `भजवा परिब्रह्म...' परि नाम सर्वथा प्रकार से (ब्रह्म नाम) बड़ा आनंद का नाथ, सागर आत्मा ! `भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं...' यह वाणी ब्राह्मण में है। ब्राह्मण नहाते वक्त ऐसा बोलते हैं। सब सुना है... बहुत सुना है ! छोटी उम्र से - आठ-नौ वर्ष की उम्र

से...! अभी तो नब्बे और इक्यानवे हुए ! आ...हा...हा...! धूल में भी कुछ है नहीं बाहर में। अंदर में बिराजमान है। `अनुभवीने एटलुं आनंदमां रहेवुं रे...' ऐसा कहते हैं। तब भी देखो ! उसको कुछ पता नहीं था ! भाषा ऐसी बोलते थे।

वैसे यहाँ कहते हैं कि, अनुभवी को (मतलब) विश्वासपूर्वक - आत्मा का विश्वास करके - सम्यग्दर्शन प्रगट करके, मिथ्यात्व को टालकर, राग को जलाकर, `**विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है;...**' उसको आनंद की निर्मल दशा प्रगट होती है। आहा...हा...हा...!

यह आतमराम है। यह आतमराम की बात है। आहा...हा...! `निजपद रमे सो राम कहिये,...' जो आनंदमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसमें रमे उसे (राम कहिये)। निजपद (में) रमे उसे आत्मा कहिये। राग में रमे उसे `हरामी' कहिये !! आ...हा...हा...! कठिन बातें, बापू ! कहते हैं कि, पुण्य और पाप भाव में रमे वह हरामी है, क्योंकि वह अनात्मा है - ऐसे पुण्य-पाप के भाव आत्मा नहीं है। आत्मा तो पुण्य-पाप से रहित अंदर चैतन्यमूर्ति आनंद है। उसको ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आ...हा...हा...!

जैसे बीज बोने से फल पाते हैं वैसे आत्मा का स्वभाव अनंत गुण से भरा भण्डार (है) इसका एक बार भी अनुभव करने से अनंत फलों की प्राप्ति होती है और सिद्ध की पर्याय प्रगट होती है।

`**द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता...**' बीज बोते समय फल, फूल कुछ नहीं दिखता। क्या कहा ? बीज बोते समय फल, फूल कुछ नहीं दिखता। वैसे अंदर आत्मा की ओर देखने से पहले कुछ नहीं दिखता। परंतु बाद में उस बीज का विश्वास

करे कि `यह बीज है इसलिये अवश्य फलेगा ही।' आहा...! वैसे `**द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता इसलिये विश्वास बिना `क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,...**' उसको विश्वास तो आता नहीं। अनादि से बाहर में विश्वास करके भटक रहा है। आहा...हा...!

`**इसलिये विश्वास बिना `क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,...**' उसको पहले ऐसा लगता है। यह बीज बोता हूँ, वह अभी तो दिखता नहीं, लेकिन फल आये बिना रहेगा नहीं। वैसे एकबार आत्मा को प्रगट करने से, भले ही अस्तित्वरूप पहले भासित हो बाद में इसका विश्वास आये, इसके पहले विश्वास नहीं आता। लेकिन (बाद में) विश्वास आता है कि निश्चितरूप से इसमें से प्रगट होगा।

`**परंतु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है।**' वस्तु का विश्वास करने से (निर्मलता प्रगट होती है)। भाई ! सूक्ष्म बात है, बापू ! आहा...हा...! यह बाहर में (आकुलता) की होली जल रही हो, इसमें यह बात पर विश्वास कहाँ से आये...! आहा...हा...! यह बड़ी मूल्यवान चीज़ तो अंदर पड़ी है !! इसका तो विश्वास नहीं है कि, यदि मैं आत्मा की प्रतीति कर लूँ तो केवलज्ञान हुए बिना रहेगा ही नहीं, अगर (मैं) आत्मा का अनुभव कर लूँ और आत्मा को विश्वासपूर्वक पकड़ लूँ तो सिद्धपद (प्रगट) हुए बिना रहेगा नहीं, ऐसा विश्वास नहीं करता। (बाहर की चीज़ का) विश्वास करता है। आहा...!

(इसलिये कहते हैं कि) `**द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है।**' बीज बोने से, बीज की श्रद्धा करने से फल अवश्य आयेगा - ऐसा विश्वास है। वैसे यह चैतन्य भगवान पुण्य और पाप के राग से भिन्न (है) - इसकी श्रद्धा करने से, विश्वास करने से, इसमें से केवलज्ञान और परमात्म(पद) मिलेगा ही, ऐसा

विश्वास आये बिना नहीं रहता। लेकिन पकड़े तो विश्वास आये न? पकड़े बिना विश्वास किसका करना ? जो वस्तु दिखी नहीं, जो वस्तु ज्ञान में आयी नहीं, इसका विश्वास कैसे आये ?

विश्वास तो उसको आता है जिसको अंदर ज्ञान में पता चले, ज्ञान की पर्याय सूक्ष्म करने पर, उस ज्ञान में, - `यह चीज़ आनंदमयी और शुद्ध है,' ऐसा मालूम हो। और ऐसे विश्वास को समकितदर्शन कहा जाता है। और इस समकितदर्शनमें से केवलज्ञान प्रगट हुए बिना रहता नहीं। आ...हा...हा...! दुकान में व्यापार के फल में जीव को विश्वास (है) कि, हम दस लाख का कपड़ा रखते हैं तो इसमें प्रतिसाल दो लाख की आमदनी तो होती ही है। उसका जीव को विश्वास (है) !!

मुमुक्षु :- आपकी वाणी सुनने पर ऐसा भाव आ जाता है कि यह सब छोड़ दे। लेकिन फिर छोड़ नहीं सकते इसका क्या करें? हमको ऐसा लगता है कि हमारा अगले भव में कर्मबंध भी बहुत होगा कि जिसके कारण ये पकड़ नहीं सकते।

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसा कुछ है नहीं। ऐसा (भाव) छोड़ देना। इसका फल छोड़ देना। पूर्वकर्म का लक्ष छोड़ देना ! अभी `मैं महान आत्मा हूँ।' इसका लक्ष करना, बस ! पूर्व के कर्म थे यह (बात) मेरे पास है नहीं। `मैं तो एक आत्मा हूँ। आत्मा को कर्म का स्पर्श है नहीं। आत्मा कर्मों का स्पर्श नहीं करता।' आ...हा...हा...!

`समयसार' की तीसरी गाथा में प्रभु ने ऐसा कहा है, `समयसार !' सुबह अपना स्वाध्याय चलता है न ? उसमें ऐसी बात है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता। आत्मा परमाणु का स्पर्श नहीं करता। कर्म को आत्मा छूता तक नहीं। कर्म जीव का स्पर्श नहीं करते। प्रत्येक द्रव्य अपने जो गुण और पर्याय है उसका

ही स्पर्श करते हैं, चुंबते हैं। `समयसार' है न ? (उसमें) तीसरी गाथा में है, तीसरी गाथा...! प्रत्येक तत्त्व अपने गुण और पर्याय को स्पर्शता है। पर को कभी छूया ही नहीं और छूता भी नहीं। (सिर्फ) मान्यता कर रखी है कि मैं इसका स्पर्श करता हूँ और इसको ऐसा करता हूँ। आहा...हा...!

मुमुक्षु :- यह तो निश्चय की बात है, व्यवहार से छूता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- व्यवहार से छूता है - बिलकुल नहीं, झूठी बात है। व्यवहार से स्पर्श है - ऐसा कहते हैं, वह कथन ही झूठा है। कठिन बात है भगवान ! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता तक नहीं। वह छूता है, ऐसी अज्ञानी की कल्पना बेकार है। क्योंकि एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के अभाव स्वरूप है। एक अँगूली दूसरी अँगूली के अभाव स्वरूप है। एक का दूसरे में अभाव है। दूसरे का पहले में अभाव है। जब अभाव है तो एक का दूसरे को स्पर्श हो ऐसा बन ही नहीं सकता। अगर दूसरे का स्पर्श करे जब तो उसमें वह भावरूप हो गया। जबकि एक का दूसरे में अभाव है। वैसे एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव है। इसी वज़ह से एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को तीन काल में छूता नहीं। आहा...हा...! `समयसार' की तीसरी गाथा है। परमात्मा की वाणी है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ने दिव्यध्वनि में ऐसा फरमाया है कि, प्रभु ! हमने ज्ञान में देखा है, आहा...हा...! `प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल,...' `प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल, निज सत्ताए शुद्ध अमने पेखता हो लाल' प्रभु ! आप तीन काल तीन लोक को देखते हो उसमें हमारी इस सत्ता को आप शुद्ध देखते हो ! यह आत्मा शुद्ध - पवित्र है, ऐसा आप देखते हो !! अंदर पुण्य-पाप है सो आत्मा है, ऐसा आप देखते

ही नहीं। आ...हा...हा...! `प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल,...' सीमंधरस्वामी परमात्मा भगवान बिराजते हैं। महाविदेह में वर्तमान विराजते हैं। ५०० धनुष्य की काया है। करोड़ पूर्व की आयु है। आहा...हा...! समझ में आया ? वे प्रभु ऐसा कहते थे। आहा...हा...! यह वाणी `भर्तु' की है। प्रभु तुम जाणग रीति - प्रभु ! तेरे ज्ञान की रीत में हमारे आत्मा को, आप हमारी सत्ता को शुद्ध है, पवित्र है, सिद्ध समान है, ऐसे देखते हो, आहा...हा...! रागादि को पुण्य-पाप में डाल देते हो। वह आत्मा है - ऐसा आप नहीं कहते और नहीं देखते। हमारे आत्मा को आप ऐसा देखते हो। आ...हा...हा...! अतः भगवान जैसे देखते हैं वैसे अगर (अपने) आत्मा को देखे तो सम्यग्दर्शन हो जाये। आ...हा...हा...! यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू ! आहा...!

`आनंदघनजी' कहते हैं - कृष्ण किसको कहे ? `कर्म कृशे वह कृष्ण' (अर्थात्) कर्म को, राग-द्वेष को कृश कर दे यानी कि खेल करके नष्ट कर दे उसे कृष्ण कहे। राम किसको कहना ? `निजपद रमे सो राम कहिये' (अर्थात्) अपने आनंद में रमे उसे राम कहे, बाकी राग और पुण्य में रमे उसे हराम कहे। आहा...हा...!

यहाँ तो बाहर में फूला-फूला फिरता हुए दिखे ! बड़े मकान पाँच-पाँच करोड़ के और दस-दस करोड़ के ! देखा है न हमने तो सब ! क्या कहते हैं ? मैसूर। मैसूर में साढ़े तीन करोड़ का एक मकान है। साढ़े तीन करोड़ का...! एक राजा का था जो सरकार ने ले लिया। खाली पड़ा था, इसलिये देखने गये थे। साढ़े तीन करोड़ का एक मकान ! राजा था लेकिन सरकार ने खाली करवा (दिया)। तेरा अधिकार अब नहीं, अब छोड़ दे ! रैयत को दे दें ! (फिर) छोड़ दिया। साढ़े तीन करोड़ का...!

(राजा को ऐसा लगा) कि हाय...! हाय...! मेरी बनायी हुई चीज़ ऐसे चली गई ! वह बेचारा रोता था...! वैसे अनादिकाल से परवस्तु मेरी है ऐसा माना है, तो थोड़ी बहुत इसमें कमी आये या फेरफार होते ही रोने लगे...! आ...हा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता इसलिये विश्वास बिना `क्या प्रगट होगा'...**' विश्वास आना चाहिये। अनंत परमात्मा हो चुके हैं। अनंत आत्माओंमें से अनंतवें भाग में अनंत परमात्मा हो चुके, तू भी परमात्मा होने के लायक है न प्रभु ! इतना विश्वास तो कर ! और इस विश्वास के साथ राग का और पुण्य-पाप का विश्वास छोड़ दे कि, वह कोई चीज़ मेरी नहीं और मेरे में नहीं। (विशेष कहेंगे...)

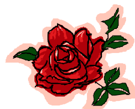

वचनामृत - ३१ से ३३ ६

सम्यग्दृष्टिको ज्ञान-वैराग्यकी ऐसी शक्ति प्रगट हुई है कि गृहस्थाश्रममें होने पर भी, सभी कार्योंमें स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है वह अपने पुरुषार्थकी कमज़ोरीसे होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।।३१।।

वचनामृत का ३१ वाँ बोल। ३० बोल चले हैं। '**सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई है...**' (ये) बहिन के अंदर के (अंतर के) वचन हैं। सम्यग्दृष्टि उसको कहते हैं कि जिसको आत्मा आनंदस्वरूप, अखण्ड अभेद स्वरूप, सुबह कहा था न अनुभूति... आत्मा चिदानंद स्वरूप है उसका अनुभव हो, ऐसे अनुभवपूर्वक प्रतीति हो, वे शुरूआत के सम्यग्दृष्टि जीव कहलाते हैं। प्रथम-प्रारंभ का सम्यग्दृष्टि जीव कहा जाता है। (धर्म की) शुरूआत

वहीं से होती है।

पहले वह अखण्ड अभेद चीज़ है उस पर दृष्टि देते ही पर्याय और राग गौण होने से शुद्ध चैतन्य का अनुभव होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है, उसको सम्यक्‌दृष्टि कहते हैं। आहा...! ऐसे सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट होती है। (अर्थात्) आत्मा का ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त - वैराग्य (प्रगट हुआ है)। वैराग्य की यह व्याख्या है।

'समयसार' के पुण्य-पाप अधिकार में यह अधिकार लिया है कि, वैराग्य किसे कहना ? कि, अंतर में शुभ और अशुभ राग से विरक्त हो (यानी कि) रक्त है इसकी जगह विरक्त हो और ज्ञान स्वसन्मुख हो इसे यहाँ वैराग्य कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसी व्याख्या है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की (ऐसी शक्ति प्रगट हुई है)।

यहाँ तो जिसको जन्म-मरण का अंत लाना हो इसकी बात है। वरना वैसे तो अनंतकाल से जन्म-मरण करता आया है। अशुभभाव करे तो नरक, निगोद में जाता है। शुभभाव करे तो स्वर्गादि या यहाँ इस धूल का सेठ आदि बनता है। लेकिन वहाँ से पुनः चार गति में भटकता है। चौरासी के अवतार में नरक, निगोद और एकेन्द्रिय में जाता है। आहा...हा...! इससे (बचने के) लिये जिसको धर्म की गरज़ है उसे प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए और ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान और वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट हुई हो। आहा...हा...हा...!

आत्मा प्रत्ययी धुन लगी और राग प्रत्ययी वैराग्य हुआ, उसको यहाँ ज्ञान और वैराग्य कहते हैं। समझ में आया ? आहा...! भगवानआत्मा ! पूर्णानंद का नाथ प्रभु ! इसका जिसे ज्ञान और

दृष्टि हुई उसको ज्ञान कहेंगे। और पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ भाव से विरक्त होना उसे वैराग्य कहते हैं। (सम्यग्दृष्टि को) ऐसी ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है।

`**गृहस्थाश्रम में होने पर भी,...**' सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में होने पर भी आहा...हा...! श्रेणिक राजा ! भगवान के समय में हो गये। जिसको हज़ारों राजा चँवर डुलाते थे इतना बड़ा राजा था, श्रेणिक राजा...! हज़ारों रानियाँ थी। ३२ हज़ार राजाएँ चँवर डुलाते हो, इतना बड़ा राज्य ! एक मुनि थे, ध्यान में थे तब सर्प को - मरे हुए सर्प को (श्रेणिक राजा ने) उनकी गरदन में डाला। राजा बौद्धधर्मी था। गले में डाल दिया, इसमें लाखों चींटियाँ हुई। घर आकर पत्नी को कहा - `चेलणाराणी समकिती हैं। स्त्री है लेकिन आत्मज्ञानी हैं। उनको कहा कि, `मैं तेरे गुरु के (गले में) साँप डालकर आया हूँ ! जो कि उसने निकाल दिया होगा।' चेलणा कहती है, `अन्नदाता !' पति को कहती है `मेरे गुरु ऐसे नहीं हैं, उपसर्ग आये उसे हटाने की कोशिश करे ऐसे नहीं होते। चलो ! आपको देखना हो तो।' (राजा को) लेकर जहाँ (मुनि के पास) आते हैं, तो मुनि तो ध्यान में, अतीन्द्रिय आनंद के सागर में डूबे हुए हैं। अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद में, यह सर्प है कि नहीं, उपसर्ग आया है कि नहीं ? करोड़ों चींटियाँ हो गई हैं कि नहीं ? इसकी जिन्हें खबर तक नहीं थी, ऐसे ध्यान में थे। चेलणा आयी, श्रेणिक आये - दोनों आयें - पति-पत्नी। चेलणा ने कहा कि `देखो ! स्वामी ! यह मुनि ध्यानस्थ हैं। इस उपसर्ग का तो उन्हें पता तक नहीं!' (बाद में) मरे हुए सर्प को निकाला फिर मुनि ध्यानमें से बाहर आये। देखा कि ये राजा और रानी आये हैं। तब राजा ने कहा कि, `साहब ! ओहो...हो...! ऐसा आपका ध्यान !! कि

सर्प डाला और करोड़ों चींटियाँ हो गई फिर भी आपका बाहर में लक्ष तक नहीं। आनंद के धाम में (आप) मस्त हैं तो प्रभु ! आपका मार्ग क्या है ?'

ऐसा बौद्धधर्मी श्रेणिकराजा मिथ्यादृष्टि था। इसकी चेलणारानी समकिती थी। वे समकित प्राप्त कराने के लिये मुनि के पास ले गये। वे मुनि थे, ऐसा काम जिसने किया उसको उपदेश देते हैं। उपदेश देते ही वे समकित पाते हैं। आहा...हा...! ऐसा नहीं कि इसने इतना पाप किया इसलिये नहीं हो सकता। आत्मा अंदर में तैयार है।

सुबह कहा था। महावीर भगवान का (पूर्व में) दसवाँ भव सिंह का (था)। वह सिंह यूँ हिरन को खा रहा था। उसवक्त दो मुनि आकाश से उतरे और कहा, `अरे...! सिंह ! तू कौन है ? तेरा आत्मा तो महावीर का आत्मा (है)। दसवें भव में तू तीर्थंकर होनेवाला है।' अब देखो ! मुनि ने उसकी भाषा में कैसे कहा होगा, और सिंह ने कैसे समझ लिया होगा !! आ...हा...हा...! तब सिंह की कितनी पात्रता होगी कि (वे) मुनि ऊपर से उतरे और (उनकी) भाषा कौन सी होगी? जिसे सिंह ने समझ लिया !! `यह क्या किया तूने ? तू तो तीर्थंकर का जीव है। दसवें भव में तू महावीर बननेवाला है !' ऐसा सुनते ही... पेट में हिरन के मांस के टुकड़े थे, फिर भी जैसे ही यह सुना कि भीतर से पलटा खा लिया। भीतरमें से एकदम पलटा खा लिया !! चैतन्यमूर्ति आत्मा ! अरे...! मुनिराज ने भी बहुत उपदेश किया। इतना पापी प्राणी भी क्षण में समकित पाया !! इसके लिये कोई काल की मुद्दत की जरूरत नहीं। एक अंतर्मुहूर्त - क्षण में भी पर की दिशा तरफ जो दशा है,... पर की दिशा तरफ दशा मतलब? राग और द्वेष की दशा

पर की दिशा तरफ है जबकि सम्यग्दर्शन की दशा स्व तरफ है। आ...हा...हा...! समझ में आया ? दोनों दशा की दिशा में फ़र्क है। राग और द्वेष करनेवाले के लक्ष की दिशा बाहर की ओर है जबकि सम्यक्‌दर्शन पाने के काल में उसकी दिशा द्रव्य पर जाती है। त्रिकाली चैतन्यमूर्ति पर उस क्षण में (लक्ष) गया और सिंह की आँखों से आँसू की धारा छूट रही थी। आ...हा...हा...! ऐसा पाप...! ऐसे अंदर उतरकर उसी क्षण समकित पाया। अतः समकित पाने के लिये अमुक प्रकार की शैली चाहिये या अमुक प्रकार की निवृत्ति चाहिये, ऐसा कुछ है नहीं। उसी क्षण जैसे ही आत्मा में झुका, तो यहाँ कहते हैं कि (तब वह) सम्यग्दृष्टि हुआ।

श्रेणिक राजा...! वहाँ समकित को प्राप्त हुए। फिर भगवान महावीर परमात्मा के समवसरण में गया (और) वहाँ तीर्थंकर गोत्र का निबंधन किया - शुभभाव से तीर्थंकर गोत्र बाँधा। हालाँकि उन्हें पहले नरक की आयु का निबंधन हो चुका था - मुनि पर सर्प डालकर सातवीं नरक की आयु का निबंधन हो चुका था। परंतु जैसे ही आत्मज्ञान और धर्म अंदर में एक क्षण में प्रगट किये, आहा...हा...! (कि) सातवीं नरक की स्थिति तोड़ डाली ! सम्यग्दर्शन हुआ और चौरासी हज़ार साल की स्थिति रह गई।

लड्डू (बनाया) हो। उसमें जो घी, शक्कर, गुड़ और आटा डाला हो, उसमें से घी अलग नहीं कर सकते। उसमें तो घी गया सो गया। फिर तो लड्डू खाना ही पड़े। वैसे नरक की आयु का निबंधन हो गया फिर तो उसे भुगतना ही पड़े। स्थिति कम होकर - ३३ सागर की थी उसमें से चौरासी हज़ार वर्ष की हो गई। लेकिन जैसे लड्डूमें से घी अलग करके वह पूड़ी तलने में या आटा अलग करके इसमें से रोटी नहीं बन सकती, वैसे

नरक-आयु का निबंधन हो गया सो हो गया उसमें फेरफार संभव नहीं, स्थिति में कमी हो गई। चौरासी हज़ार वर्ष की स्थिति रह गई। अभी पहली नरक में है। समकिती हैं, नरक में गये हैं। अगली चौबीसी में तीर्थंकर होनेवाले हैं। वहाँ (नरक) से निकलकर प्रथम तीर्थंकर होंगे। यह सारा प्रताप सम्यग्दर्शन का है। आ...हा...हा...हा...!

मुमुक्षु :- स्थिति का क्रम टूट गया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- क्रमबद्ध ही हुआ है, टूटा कुछ नहीं। क्रमबद्ध में ऐसा आया था। उनकी दृष्टि जब द्रव्य पर गई तब क्रमबद्ध में उन्हें सम्यग्दर्शन हुआ। जैसे ही अपने स्वरूप की दृष्टि में गये (कि सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया)। भाई ! वह (स्वरूप का) माहात्म्य कोई अलग ही चीज़ है। क्या करे ? दुनिया ने (बात) सुनी नहीं, दुनिया को भीतर का लक्ष और उस तरफ का प्रेम नहीं है। जगत के रस के रसिकजनों को आत्मा का रस क्या है ? इसकी उसे खबर नहीं।

वह जो आत्मा के रस में भीतर गया ऐसा श्रेणिक राजा (उसने) तीर्थंकर गोत्र बाँधा। (अभी) नरक में गये हैं। लेकिन वहाँ से निकलकर प्रथम तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहा...! यह सारा सम्यग्दर्शन का प्रताप है !! यह सम्यग्दर्शन अभी तो चतुर्थ गुणस्थान (है) ! श्रावक को पाँचवाँ और मुनि को छठा, इसकी तो बात ही न्यारी है !! यह संप्रदाय के श्रावक कोई सच्चे श्रावक नहीं। वे सब तो हैं - शेर ! राग को अपना माने वे सब शेर हैं। शेर नाम सिंह। वह शिकार करता है विकारों का ! विकार का शिकार करके विकार को खाते हैं। समझ में आया ? आहा...हा...!

यहाँ तो ऐसी बातें हैं, बापू ! आहा...हा...! यह तो मूल की

बातें हैं। जिसका जन्म-मरण रह गया, एक अवतार भी होगा इसमें से फिर अनेक अवतार होंगे। यहाँ से मरकर कहाँ जायेगा ? आत्मा तो अनंतकाल रहनेवाला है। इस देह का नाश होगा परंतु आत्मा तो अनादि-अनंत काल रहेगा। (तो) रहेगा कहाँ ? अगर दृष्टि राग और पुण्य पर पड़ी होगी, पाप पर पड़ी होगी तो दृष्टि मिथ्यात्व में रहेगी और अगर मिथ्यात्व में रहेगी तो अनंत नरक और निगोद के भव होंगे। मिथ्यात्व है वही संसार है। मिथ्यात्व ही अनंत जन्म-मरण का गर्भ है। उस गर्भमें से अनंत भवों की उत्पत्ति होती है। आ...हा...हा...! इस मिथ्यात्व के गर्भ का नाश करके जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया उसको ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है, फिर (भले ही) वह गृहस्थाश्रम में हो।

श्रेणिकराजा गृहस्थाश्रम में थे। अरे...! भरत चक्रवर्ती...! समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। उनके छोटे भाई बाहुबली भी समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। फिर भी दोनों युद्ध में आ गये ! राग है, आसक्ति है (परंतु) अंदर में भान है कि ये राग-द्वेष हैं, पाप है, मेरी कमज़ोरी है। यह मेरा स्वरूप नहीं। फिर भी दोनों लड़ाई में आ गये। बाहुबली को मारने भरत ने चक्र चलाया। परंतु बाहुबलीजी चरम शरीरी थे, उसी भव में मोक्ष जानेवाले थे। तो चक्र ने काम नहीं किया। चक्र वापिस मुड़ गया ! बाहुबली पर छोड़ा था वह चक्र पुनः भरत के पास आ गया। क्योंकि चरम शरीरी जीव पर चक्र काम नहीं करता। दोनों सगे भाई ! सम्यग्दृष्टि...!! फिर भी युद्ध किया ! लेकिन उसवक्त भी सम्यग्दर्शन को नहीं खोया !! आ...हा...हा...! वह चीज़ क्या है बापू ! लोग बाहरी त्याग और बाह्य क्रियाकाण्ड में सर्वस्व मानते हैं जबकि अंदर की चीज़ कोई अलग है।

वही कहते हैं यहाँ कि, '**गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी**

कार्यों में स्थित होने पर भी,...' (अर्थात्) सब कार्य होते हैं। व्यापार-धंधा होता है। अरे...! भरत को चक्रवर्ती का राज था ! ९६ हज़ार तो जिसको स्त्रियाँ थी (परंतु) भीतर से निर्लेप हैं। आहा...! नारियल का गोला जैसे...! ऐसा नारियल जिसमें भीतर गोला छूटा पड़ा हो, वैसे सम्यग्दृष्टि का आत्मा राग व शरीर से गोले की तरह छूटा पड़ जाता है। आ...हा...हा...! समझ में आया ?

वैसा (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थाश्रम में हो, '**सभी कार्यों में स्थित होने पर भी,...**' संसार के सर्व कार्यों में उपस्थित होने पर भी, '**लेप नहीं लगता,...**' आ...हा...हा...!

मुमुक्षु :- गुरुदेव ! लेकिन पाप के कार्य करे तो भी उन्हें नहीं लगता ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं, पाप का कार्य हो तो भी उन्हें कुछ नहीं लगता। उस राग को जानते हैं कि यह मेरा स्वरूप नहीं। ऐसा है, भाई ! पाप के - लड़ाई के परिणाम हुए तो भी जानते हैं कि, यह मेरी जाति नहीं, यह तो पाप है। इससे अंदर में निर्लेप हैं !!

मुमुक्षु :- फिर तो हम करें तो भी कोई हरज़ा नहीं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। यह तो सम्यग्दृष्टि की बात (है), बापू ! सम्यग्दृष्टि की बात (है)। मिथ्यादृष्टि राग को अपना माने, वे तो पाप में पड़े हैं। वे तो नरक और निगोद में जायेंगे ! आ...हा...हा...! यह तो सम्यग्दृष्टि (की बात चलती है)। पहला शब्द यही लिया है न !

मुमुक्षु :- मिथ्यादृष्टि को पाप छोड़ना और सम्यक्‌दृष्टि को पाप नहीं छोड़ना ?!

पूज्य गुरुदेवश्री :- कमज़ोरी होने से आता है। छोड़ना नहीं

छोड़ना क्या (वह तो) छूटा हुआ ही है। मेरा वह है ही नहीं, मैं इसका कर्ता नहीं। वास्तव में (सम्यग्दृष्टि) उसका कर्ता नहीं !! आ...हा...हा...! `करे करम सो हि करतारा, जो जाने सो जाननहारा, जाने सो करता नहीं होई, करता सो जाने नहीं कोई' ऐसा राग आता है लेकिन सम्यग्दृष्टि उसका कर्ता नहीं होता। सूक्ष्म बात है, भगवान ! आ...हा...हा...हा...! वह राग का कर्ता नहीं होता, उसका ज्ञाता रहता है। ज्ञानस्वरूप में वे जानते हैं कि मैं ज्ञान और यह राग भिन्न चीज़ है। ऐसा अंदर में भेदज्ञान (वर्तता है)। दो (के बीच) दरार पड़ गई है। राग और आत्मा के बीच दरार हो चुकी है। राग और आत्मा के बीच संधि है, दरार है। उस दरार से सम्यग्दर्शन होने पर दोनों अलग हो जाते हैं, फट से...! आहा...हा...हा...! उन्हें राग होने पर भी इसका अल्प बंधन है। वह कहेंगे, देखो !

`गृहस्थाश्रम में होने पर भी, सभी कार्यों में स्थित होने पर भी, लेप नहीं लगता, निर्लेप रहते हैं; ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं;...' ज्ञानधारा और राग - दोनों धारा एकसाथ आती हैं। धर्मी है, अभी वीतराग नहीं हुआ, आत्मज्ञान हुआ है तो ज्ञानधारा भी साथ में है और रागधारा भी साथ-साथ ही है। आ...हा...हा...! यह बात (कैसे) बैठे ?

**`ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं;...'** (अर्थात्) दोनों भिन्न रहते हैं, दोनों एक नहीं होते, आहा...हा...! जैसे ही भीतर में चैतन्य गोला - (चैतन्य) प्रभु को भिन्न पिछाना उसको फिर राग के परिणाम आने पर भी कहते हैं कि, वह भिन्न ही रहता है। सूक्ष्म बात है ! आहा...हा...! `सम्यग्दृष्टि जीव करे कुटुंब प्रतिपाल, अंतरंग से न्यारो रहे, जेम धाव खिलावे बाळ।' (यानी

कि) बालक को जैसे माता स्तनपान कराती है..., खुद (बालक की) माता न हो, वह मर गई हो तब धायमाता (स्तनपान कराये तो) भी ऐसा नहीं मानती कि, यह मेरा बच्चा है। दूध पिलाये, सब काम करे लेकिन यह बच्चा किसी और का है ऐसा मानती (है)। वैसे धर्मी (को) आत्मज्ञान होने पर राग की धारा होती हैं। उदयधारा कहा न ? ज्ञानधारा और उदयधारा - दोनों होती हैं। आहा...हा...! वीतराग होने पर केवल ज्ञानधारा होती है। मिथ्यादृष्टि हो तब केवल कर्मधारा होती है। जबकि सम्यग्दृष्टि होता है तब ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों होती हैं। समझ में आया ? आ...हा...हा...!

सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा हो जाये तब केवल आनंद और ज्ञानधारा रहती है। मिथ्यादृष्टि राग को अपना मानकर जबतक उसमें रस है तबतक उसको केवल कर्मधारा - विकारधारा रहती है। सम्यग्दृष्टि हुआ, जो अभी (पूर्ण) वीतराग नहीं हुआ उसको दो धारा वर्तती हैं। अंतर की ओर (ज्ञान)धारा और बाहर में राग का विकल्प भी होता है। फिर भी वह विकल्प को अपना नहीं मानता नहीं अपना जानकर उसका अनुभव करता है। आहा...हा...! `करे करम सो ही करतारा' वह यदि राग का कर्ता बने तो ही कर्ता (है), (परंतु) सम्यक्‌दृष्टि कर्ता नहीं बनता, ज्ञाता रहता है। गज़ब बात है, बापू ! आहा...हा...!

धायमाता किसी बच्चे को स्तनपान कराती हो तब भी उसे पता है कि यह बच्चा बड़ा होकर मेरा जतन नहीं करेगा। यह तो पराया बच्चा है। सिर्फ स्तनपान कराने यहाँ लाया गया है। वैसे समकिती को सांसारिक कार्य के समय राग आता है फिर भी यह राग मेरी चीज़ नहीं है, मैं उसमें नहीं आता, मेरे स्वरूप को छोड़कर - आत्मानुभव से निकलकर राग में एकाकार नहीं

होता। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! मार्ग कोई न्यारा है, भाई !

यह तो निश्चित है कि, अगर भव का अंत नहीं हुआ तो भव कर-करके मर जायेगा। मनुष्य मरकर पशु होगा, पशु-तिर्यंच बनकर नरक में जायेगा और वहाँ पुनः अनंत भव (करेगा)। नरक से निकलकर पुनः पशु होगा। सातवीं नरक में जो गया वह वहाँ से मरकर फिर से एकबार तो सातवीं नरक में जाता ही है। ऐसा पाठ है। बहुत पाप करके जो सातवीं नरक में गया हो, वह वहाँ से निकलकर तिर्यंच होता है, मनुष्य नहीं होता और वह तिर्यंच मरकर फिर से सातवीं नरक में ही जाता है। आहा...हा...! ऐसा सिद्धांत वीतराग की वाणी में आया है। ऐसे पाप जिसने किये उसको दो बार तो सातवीं नरक में जाना ही पड़ता है।

(श्रेणिक राजा) सम्यग्दृष्टि ८४ हज़ार वर्ष की स्थिति लेकर (नरक में) गये हैं। लेकिन वहाँ से निकलकर अगली चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होनेवाले हैं। वहाँ से निकलकर जब माता के पेट में आयेंगे तब इन्द्र और इन्द्राणी (माता के) पेट को साफ करेंगे। (क्योंकि) प्रभु जो पधारनेवाले हैं ! आहा...हा...हा...! अभी तो सम्यग्दर्शन है ! वहाँ से निकलकर जब माता के पेट में पधारेंगे तब इन्द्र-इन्द्राणी माता के पेट को साफ करेंगे, जैसे कोई महापुरुष आनेवाले हो तब मकान साफ करते हैं, वैसे भगवान का आत्मा तेरे पेट में आनेवाला है, उसे पहले साफ करते हैं। सवा नौ महीने पेट में रहते हैं, उन सवा नौ महीने तक रत्नों की धारा - वर्षा करते हैं। इन्द्र सवा नौ महीने तक रत्नों की धारा बरसाते हैं। आहा...हा...! इसके छः महीने पहले भी रत्नों की धारा बरसती है। माता के पेट में आने से पहले भी सम्यग्दृष्टि जीव है और तीर्थंकर होनेवाला है इसलिये छः महीने पहले से रत्न बरसाते हैं। पंद्रह महीने तक

रत्नों की वृष्टि बरसती है ! आहा...हा...!

उनका जब जन्म होता है तब इन्द्र कहते हैं, `माता, यह जगत का पिता है ! यह केवल तेरा पुत्र नहीं है (परंतु) जगत का तारणहार है ! माता ! इसका खयाल रखियेगा !' (वहाँ) एक देव को रखते हैं। यह सारा सम्यग्दर्शन का प्रताप है !! आ...हा...हा...! यह सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, बापू ! यह इधर कहते हैं। उसको (सम्यग्दृष्टि को) **`ज्ञानधारा एवं उदयधारा दोनों भिन्न परिणमती हैं; अल्प अस्थिरता है...'** देखा ? अस्थिरता है, राग आता है परंतु वह अल्प है। उन्हें अनंतानुबंधी का कषाय नहीं होता। अनंत संसार बढ़ा दे ऐसा कषाय उनको नहीं होता, आहा...! **`अल्प अस्थिरता है...'** वे लड़ाई करे तो भी अल्प अस्थिरता है। अंदर में समकित हुआ तब अनंतानुबंधी गया और आत्मा के आनंद का अनुभव - वेदन वर्तता है।

`वह अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है,...' ऐसा वे जानते हैं। मेरे पुरुषार्थ की कमज़ोरी की वज़ह से यह राग थोड़ा उत्पन्न होता है, परंतु यह मेरी चीज़ नहीं। मैं तो आनंदस्वरूप हूँ। ऐसा सम्यक्‌दृष्टि को प्रथम भूमिका में होता है। आ...हा...हा...! इसके बिना सब थोथा है। सम्यग्दर्शन के बिना जो भी बाह्यप्रवृत्ति और क्रियाकाण्ड में पुण्यादि होता है वह सब संसार है, धर्म नहीं। धर्म तो यह सम्यग्दर्शन होता है तभी शुरू होता है। वही यहाँ कहते हैं।

`अपने पुरुषार्थ की कमज़ोरी से होती है, उसके भी ज्ञाता रहते हैं।' है ? यह कैसे बैठे ? सर्प को सँडसा से पकड़ते हैं परंतु जानते हैं कि इसे छोड़ने लायक है, घर में रखने लायक नहीं - ऐसा मानते (हैं)। घर में रखने जैसा है ? पकड़ेगा जरूर...!

अरे...! होशियार आदमी तो हाथ से पकड़ता है। वह चलता हो तब ऊपर से मुँह के पास से यूँ पकड़ता है कि जिससे वह उसे काट न सके, फिर यूँ ही पकड़कर छोड़ आते हैं। ऐसे आदमी होते हैं। सर्प चलता हो उसे मुँह के पास से पकड़ लेते हैं कि जिससे वह मुड़कर काट नहीं सके, फिर उसे खुले में छोड़ आते हैं। उसको ज़हर चढ़ता नहीं, ज़हर उसको कुछ कर सकता नहीं। वैसे समकिती को राग होते समय भी राग का ज़हर नहीं चढ़ता। वे राग को छोड़ने योग्य मानकर छोड़ (देते) हैं। सूक्ष्म बात है। प्रभु ! दुनिया की रीत और (इस) मार्ग की रीत बिलकुल अलग है।

इसके लिये तो काफ़ी सत्समागम चाहिये, शास्त्रवांचन चाहिये, मनन - (चिंतन) चाहिये, ये सब प्रकार हों जब तो चीज़ क्या है? वह जीव को खयाल में आता है। बाद में अनुभव तो राग से रहित होने पर होता है। यहाँ वही कहते हैं कि (समकिती को राग आता है) वह कमज़ोरी है, इसके भी वे ज्ञाता रहते हैं। यह

> **सम्यग्दृष्टिको आत्माके सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता, जगतकी कोई वस्तु सुंदर नहीं लगती। जिसे चैतन्यकी महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयोंका रस टूट गया है, कोई पदार्थ सुंदर या अच्छा नहीं लगता। अनादि अभ्यासके कारण, अस्थिरताके कारण अंदर स्वरूपमें नहीं रहा जा सकता इसलिये उपयोग बाहर आता है परंतु रसके बिना - सब निःसार, छिलकोंके समान, रस-कस शून्य हो ऐसे भावसे - बाहर खड़े हैं।।३२।।**

३१ वाँ (हुआ)।

३२ वाँ (बोल)। **`सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...'** आहा...हा...! अंतर आत्मा के आनंद का जिसको स्वाद आया उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं, उसे धर्म की शुरूआतवाला कहते हैं, उसको (आत्मा के) आनंद के सिवा बाहर कहीं नहीं सुहाता आहा...हा...! ९६ हज़ार स्त्रियाँ होती हैं तो भी उसमें रस नहीं है। रस उड़ गया है, आ...हा...हा...! सर्प को पकड़ते तो है परंतु छोड़ने के लिये पकड़ते हैं। वैसे (समकिती को) राग आता है वह छोड़ने के लिये आता है; रखने के लिये नहीं आता। वह यहाँ ३२ वें (बोल में) कहते हैं।

**`सम्यग्दृष्टि को आत्मा के सिवा बाहर कहीं अच्छा नहीं लगता,...'** `कहीं' मतलब उन्हें पुण्य के परिणाम में भी अच्छा नहीं लगता। पाप के परिणाम में भी कमज़ोरी के कारण, हीनता देखकर इसके (भी) ज्ञाता रहते हैं। बाहर की किसी भी चीज़ में उन्हें उत्साह और वीर्य में प्रीति लगती नहीं। आहा...हा...! ऐसा सम्यग्दर्शन, बापू ! जब इसकी बात भी सुनने नहीं मिली (तो) प्रयत्न तो करे कब ? आहा...हा...!

मुमुक्षु :- सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- ऐसी चीज़ है ! वह भी यहाँ आफ्रिका और परदेश में। कहाँ देश और कहाँ परदेश !! सारे दिन केवल व्यवसाय में मशगूल ! और इसमें अगर पाँच-पचीस लाख महिने में या सालभर में मिलते हो, फिर तो कहना ही क्या...? उलझ जाता है...! बात ही क्या करे...! आहा...हा...! हमने तो मुंबई कई लोगों को - बड़े करोड़पतियों को देखा है न ! उसीमें उलझ जाते हैं। सुनने तो आये किन्तु रस पड़े नहीं। आहा...हा...हा...!

अभी-अभी एक (भाई) मुंबई में आया था। वैसे वैष्णव है परंतु इनके घर बहुएँ सब श्वेतांबर जैन हैं। मुंबई में है। वैष्णव। वहाँ जाते हैं तब दर्शन करने आते हैं, व्याख्यान सुनने आते हैं। वैष्णव हो तो (क्या हुआ) ? यहाँ तो तत्त्व की बात है, यहाँ कोई पक्ष की बात कहाँ है ? सुनने आते हैं। एक बार पूछा, `महाराज ! हम तो वैष्णव हैं। (ईश्वर) कर्ता में मानते हैं न !' (हमने कहा) `बापू ! कर्ता मानते हो, लेकिन आप लोगों में `नरसिंह महेता' जो जुनागढ़ में हो गये, उन्होंने तो ऐसा कहा कि, `ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी,' `ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी, शुं कर्युं तीर्थ ने तप करवा थकी ?' तीर्थ और तप आदि सब पुण्य परिणाम हैं। वे कोई भव के अभाव का कारण हैं नहीं। सुनते थे, सुनेंगे तो सही न ! हमको कहाँ उनसे पैसे लेने थे ? पचास करोड़वाला हो चाहे अरबवाला हो...! आया था बेचारा...!

मुमुक्षु :- वास्तव में तो आप जैसे महात्मा यहाँ बहुत कम आते हैं। यहाँ अभी तक आये ही नहीं जबकि यहाँ जमीन तो अच्छी है लेकिन इसकी जोताई नहीं हुई !

पूज्य गुरुदेवश्री :- तो अच्छा है न, बापू ! बात तो ऐसी है, बापू ! आहा...हा...!

मुमुक्षु :- कोरी जमीन है। क्योंकि आप जैसे कोई यहाँ नहीं पधारतें।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो सब की माँग थी इसलिये आ गये...! कुदरती बनना होता है - क्षेत्र स्पर्शना...! वरना हम तो वहाँ काठियावाड में रहनेवाले...! और हमारी दुकान भी गुजरात में - पालेज। हमारा पूरा व्यापार गुजरात में है ! इसतरफ आने

का तो कभी विचार भी नहीं था। लेकिन कुदरती (आ पहुँचे)।

मुमुक्षु :- हमारे भाग्य थे जो (आपका) आना हुआ !

पूज्य गुरुदेवश्री :- बात सही है ! यह सुनने मिले वह भाग्यशाली है...! यह तो तीनलोक के नाथ - वीतराग की वाणी है !! परमात्मा बिराजमान हैं उनकी यह वाणी है। बहिन वहाँ से आये हैं।

(पहले) कहा था, बहिन वहाँ नगरसेठ के लड़के थे। लेकिन थोड़ा कपट हो गया था इसलिये स्त्री हो गये। परंतु पूर्व का सब याद आया है। कल की बात जैसे याद आये वैसे सब बातें प्रत्यक्ष याद आयी हैं। लेकिन बिलकुल जैसे मर (उदास... उदास) गये हैं ! उन्हें बाहर में कहीं नहीं रुचता, कहीं नहीं सुहाता। उनके कोई पैर छूए तो (उसके) सामने देखने तक की दरकार नहीं। अंदर आनंद में मस्त... मस्त हैं !! बेटियों ने वाणी लिख ली थी तो यह पुस्तक प्रसिद्ध हो गई। वरना बाहर आतीं भी नहीं ! यूँ चलें तो मुरदे जैसे दिखें !! वे अंदर की मस्ती में - आनंद की मस्ती में, बाहर की सब रुचि ही छूट गई है। है देह स्त्री का ! ६६ वर्ष की उम्र... ६६ वर्ष ! परंतु अंदर में कोई उम्र लागू नहीं पड़ती ! वे बहिन यह कहते हैं।

`**जगत की कोई वस्तु सुंदर नहीं लगती।**' आ...हा...हा...! जिसको आत्मा का रस चढ़ा... आहा...हा...! उसे जगत की कोई चीज़ में रस नहीं आता। देवलोक में इन्द्र और इन्द्राणी का स्थान मिले तो भी उसमें रस नहीं आता। समकिती मरकर स्वर्ग में ही जाते हैं, वैमानिक (देवलोक में) जाते हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक - ऐसे चार प्रकार के देव हैं। उसमें सम्यग्दृष्टि मरकर वैमानिक देव में ही जाते हैं। भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष में नहीं जाते। मिथ्यादृष्टि हो और यदि विराधना हुई हो तो नीचे जाते

हैं। सम्यग्दृष्टि तो वैमानिक में ही जाते हैं।

अभी वैमानिक का देव जो है - सुधर्मदेवलोक, ३२ लाख विमान ! पहला देवलोक है। ३२ लाख विमान (हैं)। एक विमान में असंख्य देव ! उनका वह स्वामी आत्मज्ञानी है। देवलोक में ३२ लाख विमान का स्वामी वह समकिती है !! परंतु वह पर को छूने तक नहीं देता। (अर्थात्) उस देव को रानी और देवांगनाएँ सब पर (हैं), वह मेरा स्वरूप है नहीं। (ऐसे भिन्न रहते हैं)। देवलोकमें से भगवान के पास सुनने आते हैं। ये चंद्र, सूर्य हैं इनके ऊपर सुधर्म देवलोक है। सुधर्म देवलोक, इशान, सनतकुमार, महेन्द्र देवलोक है, है न? वहाँ से अभी भगवान के पास सुनने आते हैं। प्रभु के पास हैं। वह इन्द्र एकावतारी है ! एक भव करके मोक्ष जायेगा। आ...हा...हा...! वैसे (बाहर से) देखें तो ३२ लाख विमान हैं किन्तु अंदर में लेप नहीं है (अर्थात्) मेरा कुछ नहीं है। मेरा मेरे में है, मेरा परिवार मेरे में है। राग आदि मेरा परिवार नहीं। बहिन का (वचनामृतमें से) लिया न ? राग हमारा देश नहीं। यह पुण्य और पाप के परिणाम हमारा देश नहीं। अरे...! हम कहाँ परदेश में आ पहुँचे ? वैसे ज्ञानी को राग में आने पर ऐसा लगता है। रस नहीं आता। आ...हा...हा...! पढ़ा था न हमलोग ने ? पढ़ाया था। हम कहाँ आ पहुँचे ? अरेरेरे...!

हमारा आनंद का नाथ इसमें रुचि व दृष्टि होने पर भी, अस्थिरतावश हम कहाँ परदेश में (आ पहुँचे) ? पुण्य के परिणाम में आये तो कहते हैं, हम परदेश में आ पहुँचे हैं। यह हमारा परिवार नहीं। हमारा परिवार तो भीतर में आनंद, ज्ञान और शांति का सागर (है)। वह परिवार अंदर रहता है। वह हमारा वतन है, हमारा स्थान है, वह हमारा घर है, वहाँ हमारा परिवार बसता

है, वहाँ हमें जाना है। आ...हा...हा...हा...! अज्ञानी को बाहर में स्त्री, बच्चें और ये (पैसे आदि) कुछ मिले इसमें बहुत रस आ जाता है। ऐसा रस ज्ञानी को नहीं होता। वह (यहाँ) कहते हैं।

`जगत की कोई वस्तु सुंदर नहीं लगती। जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है...' आ...हा...हा...! पहले ज्ञान तो करे कि यह अंदर में चैतन्य भगवान पूर्णानंद सत्चिदानंद प्रभु है। इसकी दशा में - पर्याय में पुण्य-पाप के, मिथ्यात्व के भाव हैं, वस्तु में नहीं। वस्तु तो त्रिकाल निरावरण, अखण्ड एक स्वरूप अविनश्वर परम स्वभावभाव निज परमात्मद्रव्य सो मैं हूँ। ऐसी समकिती की मान्यता होती है। आहा...हा...!

वही यहाँ कहते हैं, **`जिसे चैतन्य की महिमा एवं रस लगा है उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,...'** आहा...हा...! जिसने खीर खायी हो...! खीर ही कहते हैं न ? उसे लाल जुआर के छिलके से बनायी गई रोटी अच्छी नहीं लगती। जुआर दो प्रकार की होती हैं। हमें तो सबका अनुभव है न ! एक सफेद जुआर - एक पीली (जुआर)। इसके ऊपर के छिलके पीले होते हैं। हमने तो स्थानकवासी में दीक्षा ली थी इसलिये कहीं भी आहार लेने के लिये जाते थे। तो एक बार विरमगाम जाते हुए (बीच में) गाँव आया (तो वहाँ) पीली (जुआर के) छिलके की रोटी मिली ! बनिये का कोई घर नहीं था। तो उसके घर ऐसा मिला। लेकिन जिसने खीर का रस चखा हो, उसे पीली जुआर के छिलके की रोटी में रस नहीं आता। वैसे (जिसको) आत्मा का रस लगा उसे राग में रस नहीं आता। आ..हा...हा...!

एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती, जिसको पर का रस है उसे आत्मा का रस नहीं आता और जिसे आत्मा का रस

है उसे पर का रस नहीं आता। राग आता है परंतु रस आता नहीं। उसमें एकाकार नहीं हो जाता, ऐसा दो (के बीच) अंदर अंतर रहता है। आहा..हा...! है ? `**उसको बाह्य विषयों का रस टूट गया है,...**'

`**कोई पदार्थ सुंदर या अच्छा नहीं लगता।**' आहा...हा...! इन्द्र और इन्द्राणी का पद भी अच्छा नहीं लगता। `**अनादि अभ्यास के कारण, अस्थिरता के कारण अंदर स्वरूप में नहीं रहा जा सकता...**' भान होने के बावजूद भी स्वरूप में उपयोग जमता नहीं है तब राग आता है - शुभराग आता है, अशुभराग आता है। ऐसा कहते हैं।

`**उपयोग बाहर आता है परंतु रस के बिना - सब निःसार, छिलकों के समान, रस-कस शून्य हो...**' है ? मिथ्यादृष्टि को संसार का रस चढ़ा हुआ रहता है। आहा...हा...! वह भले शुभराग करे परंतु उसका रस उसे चढ़ गया है। आत्मा का रस उड़ गया है, उसके पास आत्मा का रस है ही नहीं। और आत्मा का जिसे रस है उसे इन छिलकों से रस उड़ गया है। है ?

`**परंतु रस के बिना - सब निःसार, छिलकों के समान,...**' आहा...हा...! `**रस-कस शून्य हो ऐसे भाव से - बाहर खड़े हैं।**' धर्मी बाहर में ऐसे रस-कस रहित भाव में उपस्थित रहते हैं। भाव आते हैं (जरूर), शुभ आये; अशुभ भी आये, आर्त्तध्यान हो, फिर भी वे भीतर में निर्लेप रहते हैं। इसके कर्ता-भोक्ता नहीं होते। ऐसी बात है, प्रभु ! आहा...हा...! यह ३२ वाँ हुआ।

`जिसे लगी है उसीको लगी है' ...परंतु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है; शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा। इसलिये एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लासके कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अंदर से गहराईमें खटका लगा ही रहता है, संतोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है - ऐसा गहरा खटका निरंतर लगा ही रहता है, इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता; और अंदर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिये उलझन तो होती है; परंतु इधर-उधर न जाकर वह उलझनमेंसे मार्ग ढूँढ़ निकालता है।।३३।।

(३३ वाँ बोल) `**जिसे लगी है उसीको लगी है...**' आहा...! है ? `**जिसे लगी है उसीको लगी है' ...परंतु अधिक खेद नहीं करना।**' बहुत खेद न करना कि अररर...! क्यों जल्दी से नहीं होता ? धीरज रखना... धीरज रखना...! धैर्य रखना। `**वस्तु परिणमनशील है,...**' पर्याय परिणमती है। `**कूटस्थ नहीं है;...**' कूटस्थ नाम बदले नहीं, ऐसी दशा नहीं है। अतः `**शुभाशुभ परिणाम तो**

होंगे।' शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। '**उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा।**' सूक्ष्म बात है थोड़ी !

(क्यों ऐसा कहा) ? क्योंकि तुझे दृष्टि की खबर नहीं है और शुभाशुभभाव पर लक्ष करके छोड़ने जायेगा (तो वैसे) नहीं छूटेंगे। (तो) शुष्क हो जायेगा। (क्योंकि) अंतर (स्वरूप) की दृष्टि हुई नहीं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई !

यह तो बेटियों के बीच अनुभव की थोड़ी वाणी निकल गई तो बाहर आयी है। वरना तो ऐसी बात बाहर आती नहीं। बहिन तो अंदर में समा गये हैं ! इस देह से छूटकर वैमानिक में जायेंगे। वैमानिक देव होनेवाले हैं। स्त्रीपना नष्ट हो जायेगा। वैमानिक में पुरुषदेव के रूप में होंगे। सब निश्चित हो चुका है। आहा...!

(यहाँ कहते हैं) '**जिसे लगी है उसीको लगी है**' **...परंतु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमनशील है, कूटस्थ नहीं है;...**' अतः शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। शुभाशुभ परिणाम होते हैं। '**उन्हें छोड़ने जायगा...**' उस पर लक्ष करने जायेगा (तो) नास्तिक हो जायेगा। वह तो जब भीतर में (स्वरूप की) दृष्टि होगी तब शुभाशुभ (परिणाम) छूटेंगे। लेकिन अगर तू शुभाशुभ पर लक्ष रखकर छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात कर दी है। क्या कहा ?

शुभ और अशुभ परिणाम होंगे। उन्हें छोड़ने जायेगा (यानी कि) अगर उनका लक्ष करके छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। क्योंकि सम्यग्दर्शन है नहीं, आत्मा का रस अभी आया नहीं और शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। आयेंगे (लेकिन) घबराना नहीं। शुभाशुभ परिणाम आयेंगे (परंतु) घबराना नहीं। इससे हटकर अंदर में जाने का प्रयास करना। आ...हा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात कर दी है।

'**उन्हें छोड़ने जायगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा।**' आत्मा की दृष्टि हुई नहीं हो और केवल शुभाशुभ परिणाम छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात है ! अंदर की अनुभव की बात है। आ...हा...हा...! शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव हो तब तो शुभाशुभ (परिणाम) भिन्न हैं ही। परंतु (स्वभाव की) दृष्टि अभी हुई नहीं तब अगर एकदम शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा, (वैसे) शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा (लेकिन अभी तेरी) दृष्टि तो आत्मा पर है नहीं, (तो) शुष्क हो जायेगा। समझ में आया ? आहा...! शून्य हो जायेगा...! शुभाशुभ छोड़ने जायेगा (और) अभी शुभाशुभ से रहित आत्मा की दृष्टि तो तुझे हुई नहीं (अतः तू) शून्य हो जायेगा। थोड़ी सूक्ष्म बात की है।

कल आयी थी ? परसों (आयी थी) ? वह २१ वाँ बोल। २१ वाँ बोल...! चैतन्य के परिणाम - शुद्ध परिणाम हो और सिद्धगति न हो (तो) जगत शून्य हो जाये। शुभाशुभ परिणाम हो और इसके फल में नरक या स्वर्ग न मिले (तो) शून्य हो जाये। - (वह) गति शून्य हो जायेगी। गति रहित यह जगत भी शून्य हो जायेगा। परिणाम हुए और इनका फल यदि नहीं आया तो परिणाम झूठे साबित होंगे, (उस) द्रव्य का ही नाश हो जायेगा। तेरा द्रव्य ही नहीं रहेगा ! आहा...हा...हा...! थोड़ी अनुभव की बात चली है...!

तू मात्र पर को देखने जायेगा और स्व की खबर न रही तो शुष्क हो जायेगा। यह वाणी थोड़ी सूक्ष्म है। शुभ-अशुभ से रहित शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हो, जब तो शुभाशुभ भिन्न ही पड़े हैं इसलिये छोड़ने जायेगा कि तुरंत छूट जायेंगे। परंतु जब दृष्टि वहाँ है नहीं, पूरा अस्तित्व जो परमात्म स्वरूप है वह अस्तित्व तो श्रद्धा में - सत्ता में आया नहीं और शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा

तो रहेगा क्या ? (वैसे) छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। सूक्ष्म बात है। समझ में आता है इसमें ?

मुमुक्षु :- पकड़ में नहीं आया इतना।

पूज्य गुरुदेवश्री :- फिर से कहते हैं। हमें कहाँ कोई (जल्दी है)...! भगवानआत्मा ! पूर्ण शुद्ध है इसकी दृष्टि की नहीं और शुभाशुभ परिणाम को छोड़ने जायेगा तो, शुद्ध में तो आया नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। शुभाशुभ रहित अर्थात् तू आत्मा ही नहीं है ऐसा हो जायेगा। शुभाशुभ रहित तू शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। शुभाशुभ रहित (होने गया) और भीतर में द्रव्य पर दृष्टि तो है नहीं (और ऐसे ही) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा। शून्य हो जायेगा शून्य...!

मुमुक्षु :- शुभाशुभ का अभाव तो होगा ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभाव तो (स्वरूप की) दृष्टि करे तो अभाव हो। यहाँ तो (कहते हैं) दृष्टि की नहीं और छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा।

मुमुक्षु :- शून्य कैसे हो जायेगा ? क्योंकि शुभाशुभ तो कायम रहेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वही यहाँ पर कहते हैं ! शुभाशुभ परिणाम को शुद्ध स्वभाव के लक्ष बिना छोड़ने जायेगा, तो रहेगा क्या ? शुद्ध तो दृष्टि में है नहीं (और) शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो शून्य हो जायेगा, शुष्क हो जायेगा। सूक्ष्म बात है ! आ...हा...हा...! धीरे से बात को (समझना), बापू ! यह वार्ता नहीं है, प्रभु ! यह तो आत्मा के अंतर की बातें हैं। आ...हा...हा...हा...! क्या कहा ?

शुद्ध स्वरूप की दृष्टि तो हुई नहीं और उलझन में शुभाशुभभाव को छोड़ने जायेगा तो यहाँ शुद्ध (स्वरूप की दृष्टि) है नहीं (और)

शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो शुष्क हो जायेगा या शून्य हो जायेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात रख दी है थोड़ी, सूक्ष्म बात है थोड़ी !

दो अस्तित्व हैं। एक त्रिकाल (स्वरूप का) अस्तित्व और एक पुण्य-पाप का अस्तित्व। अब कहते हैं कि तुझे त्रिकाल अस्तित्व को जानने की इच्छा हो तो उसे जानने का प्रयत्न कर। परंतु उसको जानने से पहले, जाने बिना केवल शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो शुद्धता हाथ नहीं लगेगी, शुभाशुभ नहीं छूटेंगे (और) शून्य हो जायेगा, शुष्क हो जायेगा। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है थोड़ी।

बहिन को अंतर से बात आयी है। ६४ बेटियों के बीच यह बात की थी। आ...हा...हा...! क्या कहा इसमें ?

`**वस्तु परिणमनशील है,...**' (अतः) शुभाशुभ (परिणाम) होंगे। `**कूटस्थ नहीं है;...**' (अतः) परिणमन बंद हो जायेगा वैसा नहीं होता। परिणमन तो होगा। `**शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायगा तो...**' (आत्मा की) लगन लगे बिना (छोड़ने जायेगा) आहा...हा...! `**तो शून्य अथवा शुष्क हो जायगा। इसलिये एकदम जल्दबाजी नहीं करना।**' धीरे से आत्मा के प्रति झुकने का प्रयास करना। इसके बज़ाय अर्थात् आत्मा के प्रति झुकने का प्रयत्न न करके, शुभाशुभ को छोड़ने जायेगा तो न तो आत्मा रहेगा और नाही शुभाशुभ भाव ! शुष्क हो जायेगा ! समझ में आयी यह बात ? बहिन की वाणी तो अनुभव की वाणी है ! आहा...!

अंतर की चीज़ को तो देखी नहीं और जल्दबाजी में आ जाये कि, `अररर...! कैसे ये शुभाशुभ छूट जाये ?' परंतु अंतर की दृष्टि तो हुई नहीं, इसके प्रति का झुकाव भी न हो और शुभाशुभ छोड़ने जायेगा; यहाँ शुद्ध (स्वरूप का लक्ष) तो है नहीं और शुभाशुभ छोड़ने जायेगा तो इसमें तो तू शुभाशुभ रहित शुष्क

हो जायेगा, शून्य हो जायेगा। तेरा आत्मा ही नहीं रहेगा। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात आयी है थोड़ी ! उन परिणाम जैसी आयी है (-२१ वाँ बोल)। चैतन्य के परिणाम का फल न आया तो जगत शून्य हो जायेगा। आया था न ? वैसी यह बात है। आ...हा...हा...!

(अब कहते हैं) `**मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अंदर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...**' है ? मुमुक्षु जीव (मतलब) आत्मा की जिसको पिपासा लगी हो वैसा मुमुक्षु जीव, `**उल्लास के कार्यों में भी लगता है; साथ ही साथ अंदर से गहराई में खटका लगा ही रहता है,...**' (कि) यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... मेरी वस्तु भिन्न है। ऐसा खटका लगा रहे तो सम्यग्दर्शन पाने का लायक हो। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है थोड़ी। स्थूल दृष्टिवाले को समझना मुश्किल पड़े ऐसा है। परंतु यह बात अंदर से आयी है। आयी वैसी रखनी तो पड़े ही न ! आहा...हा...!

(उल्लास के) कार्यों में जुड़े तो भी भीतर में खटका रहा ही करता है। शुभाशुभ परिणाम है सो (मेरा स्वरूप) नहीं, मेरी चीज़ तो भिन्न है। (ऐसा) खटका तो अंदर रहा ही करता है। आ...हा...हा...! `**संतोष नहीं होता।**' थोड़ा शुभ कम किया इसलिये संतोष नहीं होता, खटका रहा ही करता है कि, इस शुभ से भी छूटकर भीतर में जाऊँ वह (सच में) मेरी चीज़ है। शुभ (से) छूटकर भी अंतर में जाना - वह मेरा स्वरूप है। वह मेरा निजदेश और मेरा निजघर है। वह जल्दबाजी में नहीं आ जाता। एकदम से न छूटे तो धीरे से राग का आदर छोड़कर भीतर (स्वरूप) के आदर में जाये। आ...हा...हा...!

`**अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है -**' मुमुक्षु

को ऐसा है - रागादि कम करने जाये और कम नहीं हो और दृष्टि प्रगट न हो तब तक उसको ऐसा लगता है कि मुझे तो अभी बहुत कुछ करना बाकी है। राग कम करके स्वरूप में जाने का बहुत बाकी है। शुभभाव किया इसलिये मैंने बहुत कर लिया; इसमें कुछ नहीं है। भाषा थोड़ी (सूक्ष्म है)।

`**ऐसा गहरा खटका निरंतर लगा ही रहता है,...**' मुमुक्षु जीव को (मतबल) जिसको आत्मा की दरकार है उसको ऐसा खटका तो सदा - निरंतर रहा ही करता है। आहा...हा...! `**इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता;...**' बाहर में दिखता है लेकिन कहीं भी उसे संतोष नहीं होता। मेरे घर के अलावा यह पर में मेरा स्वरूप नहीं है। आ...हा...हा...!

`**और अंदर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती,...**' क्या कहा ? `**गहरा खटका निरंतर लगा ही रहता है, इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता; और अंदर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती; इसलिये उलझन तो होती है; परंतु इधर-उधर न जाकर...**' (अर्थात्) जल्दबाजी में उलझन में न आकर धीरे-धीरे, धैर्य से राग से रहित होने का अंदर प्रयत्न करना। एकदम उलझन में नहीं आ जाना। (ऐसा) कहते हैं। राग रहित एकदम नहीं हुआ जाये तो घबराना नहीं। धीरे से, आत्मा का लक्ष करने के लिये धीरज से काम लेना। वरना उलझन में फँसा तो मूढ़ हो जायेगा, आहा...हा...! यह तो जिसे अंदर का खटका लगा हो उसकी बातें हैं, बापू ! यह कोई वार्ता - कथा नहीं है, आहा...!

(इसलिये कहते हैं) `**इसलिये उलझन तो होती है; परंतु इधर-उधर न जाकर वह उलझनमें से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।**' राग टूटे नहीं, अंदर में जाना होवे नहीं (इसलिये) उलझन होती है परंतु

उलझनमें से मार्ग ढूँढ़ लेता है। उलझन में आकर वहाँ मूढ़ नहीं हो जाता। धीरे से... अंदर वस्तु है, शुद्ध चैतन्य है, राग की मंदता एकदम मेरे से छूटती नहीं है परंतु धीरे से अंदर में जाने पर वह राग हट जायेगा और आत्मा का अनुभव होगा, ऐसा (सोचकर) तुम्हें जल्दबाजी नहीं करनी है। आ...हा...हा...! समझ में आया यह ? यह सूक्ष्म बात आ गई है।

(कहते हैं) `**इधर-उधर न जाकर वह उलझनमें से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।**' मुश्किल लगता हो तो भी घबराता नहीं है। धीरे से राग को मंद करके आत्मा की शुद्धता प्रत्ययी झुकने (का) प्रयत्न भी छोड़ना नहीं है और उलझन में भी नहीं आना है। (स्वरूप) के प्रति जाने का प्रयत्न छोड़ना भी नहीं और राग आये व नहीं छूटता हो तो उलझन में भी आना नहीं है। ऐसी दशा की बात यहाँ की है। ऐसी मध्यमदशा, सम्यग्दर्शन पाने के पहले ऐसी दशा होती है। परंतु ऐसी दशावंत अंदर में जाता है तब राग की उलझन उसे मिट जाती है और आत्मा का ज्ञान हो जाता है। (विशेष कहेंगे...)

वचनामृत - ३४ से ३५ ७

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परंतु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उसे सुखका वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है, परंतु उलझनमेंसे वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजीसे प्राप्त नहीं होता।।३४।।

मोक्ष की जिसको इच्छा (है, ऐसा जो) मुमुक्षु है, उसको `(**मुमुक्षु को**) **प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है,...**' एकदम मार्ग मिले नहीं, शुभ-अशुभ भाव से भिन्न होकर अंदर में जा सके नहीं तब थोड़ी उलझन होती है। (यह) बात तो अंदर शुरूआत की

है। शुरूआत में क्या होता है और बाद में इसका परिणाम क्या आता है इसकी बात है।

प्रथम उलझन भी होती है। अंदर आनंद में जा नहीं पाता और पुण्य-पाप के परिणाम में अटक गया है, जबकि इच्छा तो `मोक्ष' की है। मोक्ष माने ? मुक्त दशा। (अर्थात्) भावना तो अनंत आनंद के लाभ की है। परंतु अंदर जा नहीं पाता, पुण्य-पाप से हट नहीं पाता तब थोड़ी उलझन होती है।

`**परंतु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय।**' आ...हा...हा...! यह समझ में ही नहीं आयेगा और मैं पागल रह जाऊँगा, ऐसे चिंतित नहीं हो जाता, धीरे-धीरे इसमें से रास्ता निकालता है। धीरे-धीरे राग की मंदता करते हुए स्वभाव का लक्ष करने का प्रयत्न करता है, उलझन में नहीं आता। आहा...हा...! यह शुरूआत की बात है।

`**ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उसे सुख का वेदन चाहिये है...**' मुमुक्षु को अतीन्द्रिय आनंद का वेदन चाहिये। उसका नाम `मुमुक्षु'। उसे पुण्य और स्वर्ग नहीं चाहिये, उसे सेठपना या दुनिया की इज्जत नहीं चाहिये। मुमुक्षु तो उसे कहें कि, जिसको केवल आत्मा के आनंद का स्वाद चाहिये। आ...हा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है, भगवान ! उसे अन्य कोई उलझन नहीं है। एक अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद चाहिये। वह पुण्य-पाप के भाव से निकलता नहीं इसलिये उलझन में आ जाता है। भीतर में जाने का प्रयास नहीं होने के कारण असमंजस खड़ी होती है। परंतु `**उसे सुख का वेदन चाहिये है...**' अतीन्द्रिय आनंद का वेदन चाहिये। आ...हा...हा...!

तिर्यंच हैं तिर्यंच...! ढाई द्वीप के बाहर हज़ार-हज़ार योजन लंबी मछलियाँ (हैं)। भगवान कहते हैं कि वे भी वहाँ समकिती

हैं। आत्मज्ञान की (प्राप्ति) है और पंचमगुणस्थान के धारक हैं ! उन्होंने भी वहाँ मार्ग को खोज़ लिया ! हज़ार योजन का मच्छ ! स्वयंभूरमण आखरी समुद्र है वहाँ ऐसे मच्छ और मगरमच्छ बहुत हैं। उन जीवों ने, असंख्य जीवोंमें से कई जीवों ने अंदरमें से मार्ग ग्रहण कर लिया ! आ...हा...हा...! मायूस नहीं हुए कि, हम तो तिर्यंच हो गये अब धर्म को कैसे प्राप्त करेंगे ? तिर्यंच-पशु हो गये - ऐसी मायूसी में नहीं आ गये। आ...हा...हा...! तो मनुष्य उलझन में क्यों आये ? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो सुनने की सहूलियत, शास्त्रों की इतनी उपलब्धि भी है। वहाँ तो ऐसी उपलब्धि भी नहीं है। फिर भी वे अंतर में मार्ग खोज़ लेते हैं। हज़ार योजन के मच्छ और मगरमच्छ ! चार-चार हज़ार कौस लंबे...! स्वयंभूरमण समुद्र आखिर का...! स्वयंभू ! बड़ा असंख्य योजन का लंबा समुद्र (है) ! वह जीव भी अंदर में मार्ग खोज़ लेता है।

पूर्व में सुना था परंतु हम कर न सके। गुरु ने हमको कहा था कि, तेरा आत्मा अतीन्द्रिय आनंद और सुख का सागर है ! सुख का समुद्र है, ऐसा सुना था लेकिन हमने प्रयत्न किया नहीं। ऐसा स्मरण तिर्यंच को आने पर, कइयों को जातिस्मरण (ज्ञान) होता है। किसको ? तिर्यंच को...! अरे...! सिंह और बाघ...! ढाई द्वीप के बाहर सिंह और बाघ आदि हैं - असंख्य (हैं)। उसमें भी असंख्य वाँ भाग ! परंतु असंख्य सिंह और बाघ भी समकिती हैं। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि तू तो मनुष्य है। तुझे सुनने का योग मिलता है। कान से सत् सुनने मिलता है। उन बेचारों को तो कोई साधन नहीं है। बाघ और सिंह का अवतार हो गया। कषाय के कोई इतने तीव्र परिणाम किये होंगे (तो) मरकर सिंह और बाघ

बन गये। फिर भी पूर्व में सुना हुआ एकदम स्मरण में आ जाता है। स्मरण में आते ही एकदम अंतर में उतर जाते हैं। आ...हा...हा...! ऐसे तिर्यंच भी जो कि साधन-सामग्री रहित... आहा...हा...! वे भी अंदर में उतर जाते हैं !! ऐसी उसके आत्मा में ताकत है। तो जिसे मोक्ष की अभिलाषा हो वह उलझन में नहीं आता, (ऐसा) कहते हैं। वह तो अंदर से मार्ग खोज ही लेगा। आहिस्ता... अहिस्ता... धीरे... धीरे... (मार्ग खोज ही लेगा) ! आहा...हा...! है ?

`**उसे सुख का वेदन चाहिये है...**' मुमुक्षु की व्याख्या की है कि, मुमुक्षु उसको कहे कि जिसको अतीन्द्रिय आनंद का वेदन चाहिये। उसको न तो स्वर्ग चाहिये नाहीं सेठाई चाहिये, न तो अरबोंपति होने की बुद्धिरूप सेठाई चाहिये, नाहीं दुनिया की महत्ता और महिमा चाहिये (परंतु) एकमात्र आत्मा का अतीन्द्रिय आनंद चाहिये - उसे मुमुक्षु कहते हैं। आहा...हा...! फिर चाहे आठ साल की बालिका हो तो भी ऐसे समकित को प्राप्त कर सकती है। आठ वर्ष की बालिका भी अगर मुमुक्षु हो (यानी कि) आत्मिक आनंदरूप लाभ की भावना (हो तो) वह भी उलझन को छोड़कर अंतर में धीरे... धीरे... जाते हुए (मार्ग ग्रहण कर लेती है)।

(यहाँ कहते हैं) `**उसे सुख का वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है,...**' आ...हा...हा...! बाहर में सुहाता नहीं है, आहा...हा...! अंदर में जा नहीं पाता, बाहर में सुहाता नहीं। आहा...हा...! मार्ग बहुत सूक्ष्म, प्रभु ! बाहरी दुनिया का ठाठ-बाट तो सब स्मशान के ठाठ हैं ! आ...हा...हा...! स्मशान के ठाठ हैं सारे...!!

अंदर में अतीन्द्रिय आनंद का सागर भगवान ! सुख का सागर ! आ...हा...हा...! अतीन्द्रिय आनंद से भरा हुआ भरितावस्थ भगवान !

मुमुक्षु को एक ही बात - उसे वही चाहिये। दूसरा कुछ नहीं चाहिये।

उसे कहीं भी `**बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है,...**' उलझन होती है... `**परंतु उलझनमें से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है।**' आहा...हा...! अरे...! मैं तो गरीब आदमी, मनुष्य हूँ, अरे...! स्त्री हूँ - वैसे फिर नाहिम्मत नहीं होता। समझ में आया ? मैं वैसा हुआ ही नहीं। मेरा स्वरूप तो अंदर भिन्न है। इसप्रकार उलझन को छोड़कर, उलझन हो (तो) भी इसमें से मार्ग ढूँढ़ लेता है। आ...हा...हा...! अंतर की बातें हैं ये तो !

भगवान ! अंदर में जाने का प्रयत्न करता है, पर्याय में राग का घर जो बना लिया है (अर्थात्) वर्तमान अवस्था में जो राग और विकार से एकत्व कर रखा है, इसकी जगह उसे आनंद का एकत्व चाहिये। उलझन भी होती है, एकदम शीघ्रता से न हो तो भी वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। धीरे से अंतर में जाकर, समय लगता है थोड़ा (लेकिन मार्ग को ढूँढ़ लेता है)।

`समयसार' में कहा है... `समयसार' में ! कि तेरी अंतर में जाने की रुचिपूर्वक यदि तू इसका प्रयत्न करेगा तो जघन्य अंतर्मुहूर्त में - उत्कृष्ट छः महीने में तुझे प्राप्ति होगी, होगी और अवश्य होगी ही !! `समयसार' में श्लोक है। श्लोक है न ? छः मास - छः महीने तक तो प्रयत्न कर, प्रभु ! बाहर के प्रयत्न कर-करके तूने अनंतकाल गँवाया - बेटा और बेटी, स्त्री और बच्चें, पैसा, दुकान, गाड़ियाँ और सब प्रकार की (आकुलता की) होली जल रही है (ऐसा) कहते हैं। आहा...! लेकिन एक बार अंदर तो जा ! अगर बालक हो तो भी अंदर में जाना चाहता है ! और आठ साल की बालिका (भी) सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है। आहा...हा...! वह इन्द्र

द्वारा चलित करने पर भी चलित नहीं (होते) ऐसी - इतनी शक्ति अंदर प्रगट होती है !! परंतु वह अंदर में उलझन में आये बिना धीरे... धीरे... धीरे... उलझन होवे (तो) भी उलझनमें से (मार्ग) ढूँढ़ लेता है।

`**जितना पुरुषार्थ उठाये...**' आहा...हा...! अंतर में प्रयत्न का (जितना पुरुषार्थ उठाये)। `रुचि अनुयायी वीर्य' अगर इसकी - चैतन्य की रुचि हो तो इसका वीर्य रुचि के अनुपात में कार्य किये बिना रहे नहीं। अगर राग की और पुण्य की रुचि हो तो उस तरफ का कार्य और उलझन का विकार हुए बिना रहे नहीं। यहाँ जो चैतन्य स्वभाव है इसकी अगर रुचि हो तो इसका पुरुषार्थ हुए बिना रहे नहीं। `रुचि अनुयायी वीर्य !' जैसी रुचि (होगी) उस तरफ जीव के पुरुषार्थ की गति होगी। आहा...हा...! वहाँ कोई ज्यादा पठन-पाठन की जरूरत नहीं, वहाँ कोई पुण्य की - क्रियाकाण्ड की जरूरत नहीं। यहाँ अंदर तो तीनलोक का नाथ विराजता है, प्रभु ! आ...हा...हा...! और धीरे... धीरे... से राग से हटकर, उलझन को छोड़कर अंतर में मार्ग को ढूँढ़ लेता है। आ...हा...हा...! भाषा तो सादी है, भाव तो (जो है सो है)। आहा...हा...!

एकदम सादी भाषा में बेटियों के बीच बोले थे। ६४ बाल ब्रह्मचारी बेटियाँ हैं। इनके आश्रय में ६४ बाल ब्रह्मचारी बेटियाँ (रहती हैं)। लाखोंपतियों की बेटियाँ जिसमें कुछएक ग्रेजुएट हुई हैं। उनके पास यह बोले थे। तब चुपके (से) किसी ने लिख लिया जो इनके भाई के हाथ में आया और (उनको लगा कि) यह चीज़ कोई अलग है। जगत के सामने रखी जाय तो (लाभ का कारण हो)। सादी भाषा है। पुस्तकें छपी। आपके यहाँ (नायरोबी) में भी तीन हज़ार पुस्तकें आयी हैं। आ...हा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है।**' क्या कहते हैं ? तू साधारण पुरुषार्थ करके भीतर में अनुभव करना चाहेगा (तो) नहीं होगा। तेरे प्रयत्न में अंदर जाने के लिये जितना पुरुषार्थ चाहिये उतना पर्याप्त पुरुषार्थ होगा तो अंदर में जा सकेगा। शर्त है यह शर्त ! साधारण पुरुषार्थ करके अंदर जाना चाहेगा तो नहीं जा सकेगा। आ...हा...हा...!

चैतन्य भगवान सत्‌चिदानंद प्रभु के दर्शन जिसको करने हैं, इसकी भेंट के लिये जो लालायित है, इसका साक्षात्कार जिसको करना है, अपने अतीन्द्रिय आनंद के वेदन की जिसको उत्कंठा है, अतीन्द्रिय आनंद की उत्कंठा जिसको है, वह अंदर में कार्य पुरुषार्थ से करता है। `**पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है।**' कर्म अपने आप हट जाये तो कार्य हो, वैसा नहीं है - ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थ करे और अंदर में जाये तो कार्य हुए बिना रहे नहीं। आहा...हा...!

`**आत्मार्थी हठ नहीं करता...**' क्या कहते हैं ? धीरे से कार्य (करना) चाहिये। एकदम हठ नहीं करता कि अंदर जा नहीं पाता हूँ इसलिये छोड़ो अब ! समझ में आती है यह (बात) ? अंदर भगवान सत्‌चिदानंद प्रभु (विराजमान हैं) वहाँ अंतर में जा सकता नहीं, सम्यग्दर्शन (होता नहीं) इसलिये अब छोड़ो इसे ! ऐसे नाहिंमत नहीं होता। आ...हा...हा...! धीरे... धीरे अपना काम करे, हठ नहीं करता कि जैसे एकदम मिल जाये तो ठीक, वरना छोड़ो इसे, मुझे कुछ काम नहीं है। ऐसी हठ नहीं करता। यह अंदर के न्याय का विषय है।

`(**हठ नहीं करता कि**) **मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती।**' अंदर स्वभाव - भगवान पड़ा है, बापू ! समुद्र

भरा है। कभी सामने नहीं देखा। कभी इसका उल्लास आया नहीं। बाहर के उल्लास में रुककर इसका अनादर किया है। आहा...हा...! चैतन्य भगवान का अनादर किया है ! आहा...! जिसको राग और पुण्य की रुचि है उसको आत्मा के प्रति द्वेष है। आ...हा...हा...हा...! धैर्यवान का काम है, बापू !

राग का प्रेम और रुचि रखे और आत्मा में जाना चाहे (तो) नहीं जा सकेगा। उसको आत्मा प्रति द्वेष हो चुका है। राग पर जिसको रुचि और प्रेम है उसको आत्मा के प्रति द्वेष है। आत्मा के प्रति जिसको प्रेम है उसकी राग से रुचि हट गई है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई ! यह मूल मार्ग (की) शुरूआत की बात है। आहा...हा...!

`**स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है,...**' सहज स्वभाव सन्मुख (होने के लिये) धीरे... धीरे.. बाहर के किसी भी पदार्थ से प्रेम व उत्साह, उल्लास कम करके, भीतर जाने के उल्लास को बढ़ाते हुए अंदर का कार्य करे। यह काम सहज है, हठ बिना का काम है। आ...हा...हा...! `**व्यर्थ की जल्दबाज़ी से प्राप्त नहीं होता।**' क्या कहते हैं ? अंदर जाने में जितना पर्याप्त पुरुषार्थ चाहिये उतना न हो और हठ कर ले (तो) ऐसे प्राप्ति नहीं होती। आ...हा...हा...! ये अंदर की बातें हैं !

जितना प्रयत्न स्वभाव सन्मुख होने में चाहिये उतना प्रयत्न करे नहीं और व्यर्थ जल्दबाजी करे तो ऐसे (काम) नहीं बनता। ऐसे वस्तु प्राप्त नहीं होती। आ...हा...हा...! शब्द सरल हैं, भाषा में सादापन है, प्रभु ! आहा...! यहाँ तो सूक्ष्म तत्त्व की बातें हैं, नाथ !

सुबह कहा नहीं था ? आचार्यों ने ऐसा कहा है, आचार्यों ने हं...! क्या कहा था ? आचार्य ने ऐसा कहा कि, अगर तुझे मेरी बात सूक्ष्म लगे, (मैं) ब्रह्मचर्य की सूक्ष्म बातें करूँगा। अंदर आनंद का नाथ है इसमें रमणता करना इसका नाम ब्रह्मचर्य है। स्त्री का सेवन नहीं किया इसलिये ब्रह्मचर्य है, ऐसा है नहीं। पूरी जिंदगी स्त्री का सेवन नहीं किया इसलिये ब्रह्मचारी है, ऐसा है नहीं। उसमें तो शरीर की क्रिया नहीं हुई, लेकिन भीतर में राग की एकता नहीं टूटी। आ...हा...हा...! अतः राग से भिन्न होकर भीतर में जाने के लिये जितना प्रयत्न चाहिये उतना कर तो अंदर काम होगा। ऐसी बात जब की तब कहा...! आचार्य हं...! महामुनि संत भावलिंगी...! आचार्य ने कहा कि हमारी बात तुझे सूक्ष्म लगे तो माफी चाहते हैं...! माफ कीजियेगा...! परंतु दूसरा मार्ग कहाँ से लाये ? आ...हा....हा...!

`पद्मनंदी पंचविंशती' है। २६ अधिकार हैं। २६ वाँ अधिकार यह ब्रह्मचर्य का है, परंतु नाम दिया है - `पंचविंशती'। `पद्मनंदी आचार्य' मुनि हुए। आनंददायक... दिगंबर संत जंगल में बसनेवाले ! सिद्धों से बातें करनेवाले !! आ...हा...हा...हा...! उन्होंने कहा कि, मैं आपको सूक्ष्म बात करता हूँ तो प्रभु ! आपको अरुचि नहीं होनी चाहिये, हं...! और तुझे अगर न भी रुचे शायद तो भी हमारी तरफ से दूसरी कौन-सी आशा रखोगे ? हम तो मुनि हैं। हम तो आनंद में मस्त रहनेवाले हैं। तुझे भी आनंद की मस्ती में ले जाना चाहते हैं। वह तुझे न रुचे तो माफ करना !! आहा...हा...! ऐसा कहा है।

`पद्मनंदी पंचविशंती' शास्त्र है। यहाँ नहीं होगा, है इसमें ? `पद्मनंदी....!' (उसमें ब्रह्मचर्य का आखरी अधिकार है। इसमें यह अधिकार रखा है। आचार्य खुद दिगंबर संत...! मुनि... संत...

केवलज्ञान लेने की तैयारीवाले !! जब बहुत सूक्ष्म बात कही तब ऐसा कहा, प्रभु ! तू जवान है। स्त्री-कुटुंब का तुझे प्रेम - रस लगा है, उस रस को छोड़कर हम (तुझे) अंदर में जाने का कहते हैं, प्रभु ! तुझे उलझन होगी, तुझे सूक्ष्मता लगेगी परंतु प्रभु...! हम तो मुनि हैं। हमारी ओर से तू क्या आशा रखेगा ? हम तुझे पुण्य में धर्म मनवाये या पाप में धर्म मनवाये; ऐसी बात हमारे पास तो है नहीं। आहा...हा...! कि, भाई ! इतना दान करे और इतना पुण्य करे उसको समकित होगा, ऐसी बात तो प्रभु ! हमारे पास है नहीं। हमारे पास तो अंदर प्रभु सत्‌चिदानंद है, पुण्य और पाप से रहित है। वहाँ जाने का हमारा उपदेश है। आहा...हा...! (इतने महान) आचार्य भी ऐसा कहते हैं !! समाज को देखकर कहते हैं, आपको सूक्ष्म लगे तो माफ करना, प्रभु ! और तो क्या कहेंगे हम ? हमारे पास तो यह सत्‌स्वरूप है। हलवाई की दुकान पर अफीम का मावा लेने जाये तो मिले ? वहाँ तो दूध का मावा मिले। वैसे सत् के रास्ते पर जाने में सत् के पथ की बात मिलेगी। वहाँ पुण्य और पाप के रास्ते की बात नहीं मिलेगी। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, '**स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है,...**' आहा...हा...! '**व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता।**' व्यर्थ जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता, (परंतु) सही जल्दबाजी से प्राप्त होता है ! अंदर जितना - जो पुरुषार्थ चाहिये उतना कर तो प्राप्त होगा। व्यर्थ की जल्दबाजी से करने जायेगा तो प्राप्त नहीं होगा। आहा...हा...! है ? यह ३४ वाँ (हुआ)।

आहा...! वचनामृत हैं ! साधारण जनता भी समझ सके ऐसा है। बहुत-सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आहा...! छोटे-छोटे चौपतियें भी प्रकाशित हुए हैं। दूसरा वह भी, क्या कहते हैं ?

वह पत्ते...! कलेन्डर और दूसरा भी (कैसिट रखनें के कवर),... बहुत से प्रकार से प्रकाशित हुआ है। वह तालपत्र...! हाँ... तालपत्र ! तालपत्र पर लिखे गये हैं ! तालपत्रों पर ये शब्द लिखे गये हैं। ऐसे करीब साठ हज़ार प्रकाशित हो चुके हैं !! बहुत प्रचार है हिन्दुस्तान में इसका बहुत प्रचार हो चुका है।

अनंत कालसे जीवको अशुभ भावकी आदत पड़ गई है, इसलिये उसे अशुभ भाव सहज है। और शुभको बारंबार करनेसे शुभ भाव भी सहज हो जाता है। परंतु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका खयाल जीवको नहीं आता, खबर नहीं पड़ती। उपयोगको सूक्ष्म करके सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये।।३५।।

३५ वाँ बोल। '**अनंत काल से जीव को अशुभ भाव की आदत पड़ गई है,...**' आहा...हा...! अनंतकाल से जीव को हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, परिग्रह, ममता, काम, क्रोध, माया, लोभ, राग, रति, शोक, दुःख, दिलगीरी - ऐसे अशुभ भावों की आदत अनंतकाल से हो चुकी है। आहा...हा...! '**इसलिये उसे अशुभ भाव सहज है।**' पाप का भाव तो जीव को सहज हो चुका है। आहा...हा...! पाप तो जीव को सहज हुआ ही करता है। पाप के परिणाम - पैसे के लिये, आबरू, कीर्ति के लिये, दुनिया में मेरी निंदा न

हो और प्रशंसा हो - ऐसी अशुभ भावना तो चलती ही रहती है, (ऐसा) कहते हैं। क्योंकि इसकी तो जीव को सहज आदत हो चुकी है। आहा...हा...!

`**अनंतकाल से जीव को अशुभ भाव की आदत पड़ गई है, इसलिये उसे अशुभ भाव सहज है।**' सहज माने ? उसको स्वाभाविक हो चुका। अशुभ भाव बार-बार, बार-बार... सारा दिन एक ही आदत हो चुकी। आहा...! अरे...! `**शुभ को बारंबार करने से शुभ भाव भी सहज हो जाता है।**' क्या कहते हैं ? आहा...!

शुभभाव भी बारंबार करने से... पुण्य - शुभभाव - दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि के भाव भी सहज हो जाते हैं। क्योंकि बारंबार जो किये इसलिये। पुण्य के भाव अनंत गति में अनंत बार किये हैं। नववीं ग्रैवेयक अनंतबार गया, ओ...हो...हो...! वह कोई पुण्य बिना जाते हैं ? कितना पुण्य किया होगा (तब) स्वर्ग में जाता है ! साधु - दिगंबर साधु पंच महाव्रतधारी ! (हुआ)। परंतु आत्मज्ञान नहीं, आत्मा के आनंद का स्वाद नहीं। आ...हा...हा...! सम्यग्दर्शन बिना ऐसे पंच महाव्रत आदि धारण किये, समिति, गुप्ति धारण किये, शरीर से ब्रह्मचर्य का (पालन) भी किया, बाल ब्रह्मचारी भी अनंत बार रहा - वह सब शुभभाव है। शरीर की क्रिया से रहा है। भीतर में तो अभी राग से एकता पड़ी है। राग की एकता पड़ी है वही बड़ा मिथ्यात्व और अब्रह्मचर्य है। राग की एकता है वह मिथ्यात्व, अब्रह्मचर्य और वही विषय सेवन है ! राग का सेवन ही विषय सेवन है। आहा...हा...! ऐसी बातें...!

(यहाँ) वही कहते हैं, शुभभाव भी `**बारंबार करने से शुभ भाव भी सहज हो जाता है।**' सहज ही शुभभाव आया करता है। उस क्रिया में जुड़ जाता है, साधु हो, व्रतधारी हो, तब ऐसे शुभभाव

हुआ करते हैं।

`**परंतु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका खयाल जीव को नहीं आता,...**' आहा...हा...! शुभ और अशुभ का खयाल बारंबार आया करता है। इससे रहित अंदर में चैतन्य स्वभाव, सूक्ष्म, अमूर्त, अतीन्द्रिय आनंदकंद जिसकी सत्ता में, जिसके अस्तित्व में अनंत ज्ञान और अनंत आनंद (पड़े हैं)। पर को जानना वह भी जिसको व्यवहार है। अपनेआप को जानने में स्व-पर का ज्ञान हो जाता है। ऐसी सत्ता का सामर्थ्यवान प्रभु, भगवान ! इसके प्रति जाने की जीव ने दरकार नहीं की।

`**उसका खयाल जीव को नहीं आता,...**' आ...हा...हा...! बाहर में हो...हा...! `धर्म के नाम से धमाधम चली, ज्ञान मार्ग रह गया दूर।' धर्म के नाम से बाहर की धमाधम चली किन्तु भीतर ज्ञानमार्ग दूर रह गया। (यानी कि) अंतर में जाना तो दूर रहा गया। आ...हा...हा...!

वह कहते हैं `**अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका खयाल जीव को नहीं आता,...**' आहा...हा...! सादी भाषा है, प्रभु ! आहा...! यहाँ तो `प्रभु' कहकर बुलाते हैं ! बालक हो, वृद्ध हो, हरिजन हो चाहे बनिया हो सब अंदर में तो `प्रभु' हैं !! अंदर में आत्मा अगर `प्रभु' नहीं होता तो प्रभु हो कैसे सकता ? बाहर से प्रभुता आती क्या ? आहा...हा...! छोटी पीपर में चौसठ पहर ताकत भरी है जो रगड़ने से बाहर आयेगी। वैसे भीतर में परमात्मपद भरा है वह अंतर में पुरुषार्थ करने पर प्रगट होगा। वह कोई बाहर से आनेवाली चीज़ नहीं। परंतु विश्वास कहाँ से आये ? बाहर में विश्वास करता है कि, (दवाई) लूंगा तो बुखार मिट जायेगा, रोटी खाऊँगा तो भूख मिट जायेगी, दवाई खाऊँगा तो ठीक हो

जाऊँगा, चमड़ी पर ऐसा लेप लगाऊँगा तो चमड़ी मुलायम हो जायेगी - ऐसी श्रद्धा (तो) कर लेता है !

मुमुक्षु :- ऐसा होता भी है न ?!

पूज्य गुरुदेवश्री :- वैसे हो तो भी अपनेआप क्रमबद्ध होगा तो होगा। जीव के पुरुषार्थ से नहीं होता। जड़ की क्रिया क्रमबद्ध इसके (स्व)काल में, होने के काल में होती रहती है। इसके क्रम को तोड़ने में कोई जीव (या) केवली भी समर्थ नहीं है। आहा...हा...! जड़ की पर्याय जिस क्षण, जिस प्रकार होनेवाली है उसी प्रकार, उसी क्षेत्र, उसी काल, उसी संयोग, उसी निमित्त से वहाँ होगी। इसमें फेरफार करने में इन्द्र और जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं ! आहा...! ऐसी (बात) `स्वामी कार्तिकेय' में आती है। `स्वामी कार्तिकेय' मैं आता है कि, भगवान ने जैसा देखा होगा वैसा होगा। इसे बदलने में जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं। आहा...हा...! पर्याय को आगे-पीछे करने में भी आत्मा समर्थ नहीं है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

क्रमबद्ध की बात बहुत सूक्ष्म है। इसमें किसीको ऐसा लगता है कि, पुरुषार्थ उड़ जाता है। परंतु क्रमबद्ध (के स्वीकार में ही) अनंत पुरुषार्थ है। जिस समय जहाँ (जो) होगा सो होगा। इसमें मेरा कर्तृत्व काम नहीं आ सकता। मैं एक आत्मा-ज्ञाता हूँ। ऐसे अकर्तृत्व के (पुरुषार्थ) की सिद्धि में अपने आत्मा का पुरुषार्थ स्वभाव के प्रति ढल जाता है। जब तो उसका क्रमबद्ध संबंधित निर्णय सच्चा वरना क्रमबद्ध संबंधित निर्णय सच्चा नहीं।

प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु (की) जिस समय, जिस क्षण, जिस प्रकार की पर्याय होनेवाली है सो होगी, होगी और होगी ही। ऐसा निर्णय अगर करने जाये तो यह ज्ञायक स्वभाव आत्मा पर का अकर्ता है ऐसी अकर्ताबुद्धि होगी, उसको स्वभावबुद्धि

होगी, उसको समकित होगा और उसके लिये मोक्ष का मार्ग खूल जायेगा। आ...हा...हा...हा...! ऐसी बातें हैं ये सब ! आ...हा...हा...! बाहर में थोड़ा बहुत ठाठ-बाट दिखे, गाडियाँ दिखे कि बस हो...हा...! आ...हा...हा...! मानो जैसे हम सुखी हो गये !

यहाँ कहते हैं `**अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका खयाल जीव को नहीं आता,...**' आ...हा...हा...! बाहर में समझने के लिए जितना प्रयत्न करता है वह (प्रयत्न) जीव का सहज हो चुका है। अंदर में प्रयत्न करने की बात में उसको सूझ नहीं आती। आहा...! बोलना, चलना और ऐसी-ऐसी जड़ की क्रिया होनेवाली होती रहती है, आत्मा इसका कर्ता नहीं। यह बोलने की (क्रिया का) आत्मा कर्ता नहीं। पग चले इसका कर्ता आत्मा नहीं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु :- जैसा निमित्त मिले वैसी क्रिया हो।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बिलकुल झूठी बात है। जैसी पर्याय होती है इसके अनुकूल निमित्त होता है। (निमित्त) हो भले ही, परंतु इससे पर्याय बदल जाये - ऐसा तीन काल में नहीं बनता।

मुमुक्षु :- आप यहाँ आये तब तो हम यहाँ आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ना... ना...! इसमें तो ऐसा है कि अंदर में समझे तब इसे निमित्त कहा जाता है। अपने उपादान की पर्याय प्रगट करे तब निमित्त कहलाये। निमित्त से दूसरे में कुछ नहीं होता।

मुमुक्षु :- आप यहाँ नहीं (आते) तो हम बिलकुल नहीं आते !

पूज्य गुरुदेवश्री :- निमित्त से बिलकुल नहीं होता। निमित्त वस्तु जरूर है लेकिन निमित्त की पर्याय निमित्त करे और उपादान की पर्याय उपादान करे। कार्य में निमित्त हाज़िर हो तो भी निमित्त

उपादान के कार्य को नहीं करता। आहा...हा...!

यह हाथ हिलता है, देखो ! यह ! इसमें आत्मा की प्रेरणा बिलकुल नहीं। आत्मा की इच्छा बिलकुल उसका काम नहीं करती। उस परमाणु की पर्याय उसवक्त जैसी होनेवाली थी वैसी होती है। भाषा की पर्याय भी जब जैसे होनेवाली है वैसी होती है। आत्मा उसका कर्ता-हर्ता है नहीं। सूक्ष्म बात है, भैया ! आहा...हा...! जहाँ-तहाँ बस `हुं करूँ हुं करुँ ए ज अज्ञान छे, शकट नो भार जेम श्वान ताणे' (मतबल) बैलगाड़ी हो, दो बैल इसमें जोड़े हो, गाड़ी चलती हो तब नीचे साथ में कुत्ता चलता हो और कुत्ते को गाड़ी का स्पर्श भी होता हो तब कुत्ता ऐसा मानने लगा कि यह गाड़ी मैं चला रहा हूँ !! समझ में आया इसमें ?

बैलगाड़ी होती है न बैलगाड़ी ? (उसे) बैल चलाते हो तब गाड़ी के पीछले हिस्से के नीचे कुत्ता भी चल रहा हो। उस कुत्ते को गाड़ी का स्पर्श होने पर (कुत्ता) यह जाने कि गाड़ी मेरी वज़ह से चलती है ! वैसे जगत के काम होते समय उपस्थित आदमी (ऐसा मान लेता है कि) यह काम मैं कर रहा हूँ ! (मतलब) वह उस कुत्ते के समान है !! हमारे पास तो यह बात है, भगवान !

मुमुक्षु :- अभी हमलोगों की हालत वैसी ही है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो समझने जैसी बात है, बापू ! जगत के विभिन्न कार्य अपने स्वकाल में, अपने ही कारण से होते हो तब यह जीव मानता है कि `मेरी होशियारी से यह दुकानदारी ठीक चलती है। दुकान को ठीक से चलाता हूँ। नौकर बैठे तो मेरी तरह काम नहीं कर सकता। छोटा भाई भी मेरे जैसा काम नहीं कर पाता। परंतु मैं जब दुकान पर बैठता हूँ तब बराबर व्यवस्थित काम कर सकता हूँ।' यह अभिमान मिथ्यात्व और अज्ञान है। वास्तव

में पर की व्यवस्था में बिलकुल जीव का हस्तक्षेप - अधिकार काम नहीं करता। पर की व्यवस्था - उसकी उस समय की अवस्था, वह उसकी व्यवस्था (है)। जड़ और चैतन्य की जिस समय (जो) अवस्था (है) वह उसकी व्यवस्था (है)। उस व्यवस्था को दूसरा कोई करे, ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि और मूढ़ है। कठिन बातें हैं ऐसी ! आहा...!

`हुं करुं करुं ए ज अज्ञान छे, शकट नो भार जेम श्वान ताणे' (अर्थात्) वह कुत्ता समझता है कि मेरे कारण गाड़ी चलती है। वैसे दुकान में मुख्य आदमी जानता है कि यह दुकान मेरे कारण से चलती है ! आ...हा...हा...! जड़ की पर्याय जड़ के कारण वहाँ होती है। (दुकान में) कपड़ा आता है वह अपने कारण से आता है और अपने ही कारण से जाता है। बीच में उपस्थित (आदमी ऐसा मान लेता है कि) मैं लाया और मैंने बेचा और उसमें से मैंने पाँच सौ, हज़ार, दो हज़ार कमाया - यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की (है), अज्ञानदशा है। आहा...हा...! कठिन पड़े ऐसा है।

वही बात यहाँ कहते हैं कि, जीव को अपना खयाल नहीं आता कि मैं ज्ञान हूँ। जगत की क्रिया का जाननेवाला हूँ - यह भी व्यवहार है। जगत की क्रिया का मेरे में पता चले इसमें तो मेरे ज्ञान के स्वभाव को मैं जानता हूँ, पर को नहीं।

`नियमसार' में कहा है न ? कि, केवली व्यवहारनय से पर को जानते हैं। अतः इसका अर्थ कुछ लोग ऐसा करते हैं कि, निश्चय से भगवान पर को जानते नहीं। परंतु वैसा (इसका अर्थ) नहीं। व्यवहार का अर्थ है कि उसमें तन्मय होकर नहीं जानते। परंतु जैसा लोकालोक का स्वभाव (है) वैसा केवलज्ञान अपने सामर्थ्य से अपने आप को जानते समय उसमें स्वतः सब कुछ झलकने

लगता है। पर को तो छूता भी नहीं, लोकालोक को उसका ज्ञान छूता तक नहीं। इसलिये लोकालोक को जानना (सो) व्यवहार (है ऐसा) कहकर और उसकी अपनी पर्याय को जाने उसे निश्चय कहा है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म (है)। पर को जानना उसे भी व्यवहार कहते हैं, करने की तो बात ही कहाँ रही ? आहा...हा...!

आत्मा पर पदार्थ को कुछ भी करे ! - (वह मान्यता मिथ्या है)। कदम जो भरता है वह आत्मा की प्रेरणा से यूँ कदम उठाता है - यह बात सौ के सौ प्रतिशत झूठी है। आहा...हा...! यह बात कैसे बैठे ? यह पैर जमीन को स्पर्शता है, यह बात सौ के सौ प्रतिशत झूठी है। जमीन को पैर छूता ही नहीं, पैर जीव को छूता नहीं, पैर अपनी क्रिया करता हुआ पर्याय का कार्य करता है, ऐसा न मानकर - मैं इस पैर का काम करता हूँ, चलना, फिरना, बोलना (सबकुछ हम करते हैं तो यहाँ) कहते हैं कि, ऐसी क्रिया करने का तेरा सहज अज्ञान स्वभाव हो चुका है। परंतु इस सहज (ज्ञान) स्वभाव की तुझे दृष्टि है नही। आ...हा...हा...! भारी कठिन काम ! ओ...हो...हो...!

मुमुक्षु :- आपने समझाया जब तो ऐसी बात समझ में आयी ?!

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो समझने की योग्यता थी इसलिये (समझ में) आयी है। त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि सुनने पर जो ज्ञान हुआ वह भी वाणी से नहीं। उस समय खुद की ज्ञान की पर्याय का वैसे होने का स्वकाल है। वह पर्याय अपने कारण से होती है वाणी के कारण नहीं, दिव्यध्वनि सुनने के कारण नहीं। आहा...हा...!

वही यहाँ पर कहते हैं कि, तुझे वैसी आदत हो चुकी है। पर की आदत हो चुकी है कि, पर के कारण मुझे ऐसा होता है... पर के कारण ऐसा हुआ। तेरी दृष्टि पर ऊपर है। (इसलिये)

तुझे ज्ञान का खयाल तक नहीं आता। `**खबर नहीं पड़ती।**' आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भगवान !

हमने तो बहुत देखा है, बापू ! यहाँ तो ४०-४० हज़ार (लोगों की) सभा में व्याख्यान दिये हैं ! ४०-४० हज़ार !! भोपाल में गये थे न ! भोपाल में पंच कल्याणक थे। सभा में चालीस हज़ार लोग ! लेकिन हमारी तो यही बात है। रुचे - न रुचे, संसारी स्वतंत्र है। दूसरा तो कुछ हमारे पास है नहीं। सत्य तो यही है। इसे समझने पर ही जगत का छुटकारा है, बापू ! इसके बिना जन्म-मरण की चक्की में ही पीसना है, बापू ! चक्की में जैसे तिल पीसते हैं...! प्रभु ! तुझे पता नहीं है। तू चारगति के दुःखों में पिस गया है और (दुःखों में) पिसे जाने के परिणाम तुझे सहज हो चुके हैं। अशुभभाव सहज हो चुका है। वैसे शुभभाव भी अगर किया तो उसका फल स्वर्ग है। परंतु `प्रवचनसार' (में) कहते हैं कि, स्वर्ग के सुख को जो सुख माने और नरक के दुःख को जो दुःख माने वह मूढ़ है। क्योंकि स्वर्ग में जो सुख की कल्पना है वह अशुभभाव है। अशुभ भाव है ! वह पाप है। आहा...हा...! ये पैसे में भी सुख मानने की कल्पना है सो पाप है। वहाँ जीव मानता है कि, मुझे ठीक लगता है। देवलोक के सुख भी दुःख हैं। आहा...हा...! सेठाई के सुख तो दुःख ही हैं परंतु देवलोक के सुख को (भी दुःख कहा है)। भगवान `कुंदकुंदाचार्य' ने `प्रवचनसार' में कहा है कि जिसका फल दुःख है, (यानी कि) शुभ का फल स्वर्ग भी दुःख है तो पुण्य के फल और पाप के फल में तुझे अंतर क्यों लगता है ? समझ में आया ? क्या कहा इसमें ?

पुण्य के फल में सेठाई और स्वर्ग मिले यह तुझे ठीक लगता है और पाप के फल में तुझे नरक और तिर्यंच मिले वह अठीक

लगता है - तुझे ऐसा क्यों लगा ? जबकि दोनों दुःखरूप हैं। स्वर्ग के सुख भी दुःखरूप दशा है। नरक की दशा वह दुःखरूप दशा है। पुण्य का फल स्वर्ग और पाप का फल नरक - ऐसे दोनों के दुःखों के बीच तुझे अंतर क्यों लगता है ? आहा..हा...! उसको वहाँ `प्रवचनसार' में मिथ्यादृष्टि कहा है। पुण्य और पाप में, दो में - पुण्य ठीक और पाप अठीक ऐसा फ़र्क मानेगा वह मिथ्यादृष्टि घोर संसार में भटकेगा। नरक, निगोद और एकेन्द्रिय में जायेगा। आ...हा...हा...! बहुत दुष्कर ! दुष्कर तो नहीं है परंतु जीव का झुकाव ही इसतरफ नहीं है। जिस तरफ झुकाव है वह उसको सहज हो चुका है। और भीतर की ओर का झुकाव नहीं होने से दुष्कर हो पड़ा है।

यहाँ कहते हैं कि, `**उपयोग को सूक्ष्म करके...**' आहा...हा...! जानने-देखने का जो उपयोग है प्रभु ! उस शुभ-अशुभ भाव से हटकर, शुभ-अशुभ है वह स्थूल उपयोग है, दुःख का उपयोग है, शुभ और अशुभ परिणाम है सो दुःख का व्यापार है। आ...हा...हा...हा...! अंदर में हं...! उपयोग को सूक्ष्म करके माने शुभ-अशुभ भाव से हटकर (उपयोग को) सूक्ष्म और थोड़ा अधिक सूक्ष्म, सूक्ष्म और सावधान करके आत्मा की ओर जा ! स्थूल उपयोग है सो बाहर की ओर जाता है। परंतु सूक्ष्म उपयोग कर तो अंतर में जायेगा। सूक्ष्म बात है। है (अंदर) ? `**उपयोग को सूक्ष्म करके...**' यह इसकी कला !! आ...हा...हा...!

जानने-देखने का जो व्यापार है वह शुभ-अशुभ में है, वह तो तुझे सहज हो चुका है, जबकि वह उपयोग तो दुःखरूप है। और इसका फल भी दुःख (है)। संसार दुःख है। चारगति दुःखरूप हैं। स्वर्ग भी दुःखरूप है। इसलिये उपयोग को शुभ-अशुभ भाव

से ज़रा हटाकर सूक्ष्म कर ! आ...हा...हा...! अब ऐसा करना...!

(उपयोग को सूक्ष्म करके) `**सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये।**' है ? आहा...हा...! भाषा सादी है परंतु भाव ऊँचा है ! जिस ज्ञानोपयोग से आत्मा पकड़ में आये उस उपयोग को सूक्ष्म कहा जाता है। जिस उपयोग में शुभ और अशुभ भाव पकड़ में आये उसे स्थूल उपयोग या मोटा उपयोग या जड़ कहा जाता है। शुभ-अशुभ भाव जड़ है। चैतन्यशक्ति का उसमें अभाव है। इसलिये शुभ-अशुभ भाव है सो अजीव और जड़ है। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है।

`**समयसार**' ७२ गाथा में कहा है कि, शुभ और अशुभ भाव दोनों अशुचि-मैल हैं। शुभ और अशुभ भाव दोनों अशुचि और मैल हैं। अंदर प्रभु - आत्मा निर्मल है। वह मैल से भिन्न है। दूसरा बोल। शुभ और अशुभ भाव जड़ है। पहला बोल मल है - मैल है (ऐसा) कहा। दूसरा बोल : शुभ और अशुभ भाव वे अजीव - जड़ हैं। क्योंकि उसमें चैतन्य के प्रकाश का अंश नहीं। राग है सो अंधेरा है। शुभ और अशुभ राग, आहा..हा...हा...! वह अंधेरा है, इसलिए भगवान ने उसे जड़ कहा है। आ...हा...हा...! भगवान आत्मा ! ज्ञान स्वरूप होने से चैतन्य है। वह जड़ से भिन्न है। उस मैल से भिन्न है वैसे जड़ से भिन्न है। आहा...हा...! और पुण्य-पाप के भाव दुःख है। उस दुःख का कारण आत्मा नहीं। वह दुःख आत्मा का कार्य नहीं है। वह अज्ञान का कार्य है। आहा...हा...! ऐसे तीन बोल हैं। ७२ गाथा में तो `भगवान' कहकर बुलाया है।

आचार्य महाराज ने सभा में हे भगवान ! तेरे पुण्य-पाप का मैल तो अजीव है, दुःख है, मैल है। प्रभु ! तू अंदर में निर्मल हो ! जीव हो ! आनंद हो ! ऐसे `भगवान' कहकर तीन बार बुलाया है। आचार्य ने ! महा निर्ग्रंथ मुनि ने ! दिगंबर संत !

आत्मा के अनुभवी अल्प काल में केवल(ज्ञान) लेकर मोक्ष जानेवाले ! उन्होंने `भगवान आत्मा' (कहकर बुलाया है)। `समयसार' की ७२ वीं गाथा है। आहा...! निर्मलानंद प्रभु है। यह शुभ और अशुभ भाव तो मलिन, अशुचि, मैल है और शुभाशुभ भाव जड़ है। क्योंकि शुभ-अशुभ भाव राग है वह कुछ नहीं जानता। राग स्वयं को भी नहीं जानता और समीप में जो चैतन्य प्रभु है उसे भी नहीं जानता। इसलिये राग जड़ है। भगवान(आत्मा) स्वयं को जानता है और राग भिन्न चीज़ है ऐसा जानता है। यह चैतन्य प्रभु भगवान है। आहा...हा...!

७२वीं गाथा है इसमें ? है इसमें ? हाँ, होगा। आपने इसमें (छपवाया) होगा। देखो ! उसमें है, ७२ (गाथा में) है। `भगवानआत्मा' है ? पहले (राग को) अशुचि कहकर फिर `भगवान' (कहा) है। देखो ! उसमें है, वह ७२ वीं गाथा है। यहाँ आप लोगों की तरफ से छपी है। छपी लेकिन जहाँ छपी वहीं पर ही रह गई। `भगवानआत्मा' ऐसा कहकर बुलाया है। उसमें देखो ! है ? शुभ-अशुभ भाव मैल है - भगवान निर्मल है। शुभ-अशुभ भाव जड़ है - प्रभु चैतन्य है। शुभ-अशुभ भाव दुःख है - प्रभु आनंद है। (ऐसे) तीन बोल लिये हैं। `भगवान' कहकर आत्मा को बुलाया है !! बनिया है, तू गरीब है, तू पैसेवाला है, तू सेठ है - ऐसे नहीं बुलाया। आहा...हा...हा...! (परंतु) `भगवान' कहकर बुलाया है।

भगवान ! तेरे में तो निर्मलता भरी है न प्रभु ! ये पुण्य-पाप के मैल को छूकर - उसमें रहकर दुःखी क्यों होता है तू? तेरे में तो आनंद भरा है न ! प्रभु ! तू तो चैतन्य-जाति का है न ! आहा...! ये पुण्य-पाप तो जड़ हैं इसमें क्यों तू अटक गया? जो अचेतन है, जिसमें चैतन्य की गंध भी नहीं है, शुभ और अशुभ

भाव, दया, दान, व्रत, भाव - ये शुभ हैं, जड़ हैं। उनमें चैतन्य प्रकाश के नूर का अभाव है। इसलिये वे जड़ हैं। उनसे भिन्न भगवानआत्मा है वह चैतन्य है। ऐसा तीन बार आया है। देखो ! है ? लाईये...! यहाँ आपकी (पुस्तक में) छपा है।

देखो ! सेवार की माफिक - पानी में जैसे सेवार होती है (वैसे) सेवार की माफिक आस्रव का मैलरूप अनुभव होने से, पानी में सेवार होती है न सेवार ? (वह) मैल है। वैसे आत्मा में पुण्य-पाप (के) भाव होते हैं - वे सेवार हैं, मैल हैं, अशुचि हैं। अनुभव होने पर अशुचि हैं। और भगवानआत्मा ! देखो ! ये आपका चौपतिया छपा है उसमें सोलहवें पन्ने पर (है)। आहा...! भगवानआत्मा ! तो अति निर्मल चैतन्य स्वभावरूप ज्ञायक होने से वह तो शुद्ध, अत्यंत शुद्ध है। आ...हा...हा...! ऐसी सहज दृष्टि प्रभु ! तुझे अनंतकाल में हुई नहीं। जबकि अगर कुछ कर्तव्य है तो यही है। बाकी सब थोथा (है)। आहा...हा...!

कोई अरबोंपति हो, अरबों क्या बड़ा... इसमें आगे खरब, निखरब... हमारी पढ़ाई में आता था। अरब के बाद खरब, निखरब (आता है)। सौ अरब का एक खरब (होता है)। सौ खरब का एक निखरब (होता है)। (ऐसा बहुत कुछ) हमारी पढ़ाई में आता था। ऐसे लाख और करोड़ या तेरे अरब हो (तो भी) धूल है। वह तो धूल है ही परंतु तेरे पुण्य और पाप भी मैल और धूल है। आहा...हा...हा...!

भगवानआत्मा तो सदा अति निर्मलानंद है। इस ७२ वीं (गाथा में) छपा है। उसमें तीन बार (आता) है।

दूसरे प्रकार से (कहते हैं) अपना भगवानआत्मा तो सदा विज्ञानघन स्वभाव होने से ज्ञाता है। भगवानआत्मा तो सदा निराकुलता स्वभाव

के कारण न तो किसी का कार्य है न तो कारण है। आत्मा किसी का कार्य नहीं, आत्मा किसी का कारण नहीं। जगत के कार्य में आत्मा का कारण नहीं है। वैसे आत्मा जगत के किसी कारण से उत्पन्न हो, ऐसा नहीं है। आत्मा पर के कारण और पर के कार्य से रहित है। उसे यहाँ भगवानआत्मा कहा जाता है। ऐसे विस्तारवाली लेखनी है। यहाँ तो आपने छपाया है।

यहाँ ऐसा कहते हैं '**उपयोग को सूक्ष्म करके सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये।**' आहा...हा...! ३५ वाँ हुआ।

जो प्रथम उपयोगको पलटना चाहता है परंतु अंतरंग रुचिको नहीं पलटता, उसे मार्गका खयाल नहीं है। प्रथम रुचिको पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। मार्गकी यथार्थ विधिका यह क्रम है।।३६।।

(३६ वाँ बोल) '**जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परंतु अंतरंग रुचि को नहीं पलटता,...**' (अर्थात्) जानने-देखने के उपयोग को अंदर ले जाना चाहता है परंतु रुचि नहीं पलटता है तो अंदर नहीं जा सकता। आ...हा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई ! प्रभु ! ये

बाहर के ठाठ-बाट तो सब धूल-स्मशान (हैं)। आहा...हा...!

छोटी उम्र में जब बालक थे, दस-बारह साल की उम्र (थी) उसवक्त तो शरीर बहुत गोरा था। अभी तो नब्बे (साल) हुए। उसवक्त स्मशान की ओर जाते तब मना करते थे, वहाँ मत जाना। (हम पूछते थे) क्या है ? (तो कहते) वहाँ भूत है। ये जो हड्डियाँ पड़ी हो इसमें से इसकी 'फास-फूस' निकलती है न ? क्या कहते हैं उसे ? (फोस्फरस) हड्डियाँ पड़ी हो उसमें से चकमक-चकमक निकलती है। इसलिये बच्चों को ऐसा कहे कि - वह भूत है ! तुझे खा जायेगा, वहाँ मत जाना ! यह तो बचपन की बात है। वैसे ये सब स्मशान के भूत हैं ! अगर इसमें आकर्षित हुआ तो मर जायेगा !! अंदर में चैतन्यस्वरूप को पकड़ तो तुझे आनंद और शांति मिलेगी !! विशेष कहेंगे...!

वचनामृत - ३६ से ३९ ८

वचनामृत ३६ वाँ बोल (चल रहा है)। सादी भाषा है परंतु भीतर गहराई में रहस्य है। `**जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है...**' क्या कहते हैं ? जानने-देखने का यह जो व्यापार है (यानी कि) उपयोग जो कि पर तरफ है उसे प्रथम अंतर में मोड़ना चाहते हैं। आहा...हा...! `**परंतु अंतरंग रुचि को नहीं पलटता,...**' क्या कहते हैं ? (कि) उपयोग को पलटाना चाहता है कि, पर तरफ से हटकर अंदर में आना है परंतु रुचि को पलटता नहीं है। रुचि नाम आत्मा आनंद स्वरूप है, ज्ञायकस्वरूप है। इसकी रुचि करता नहीं और उपयोग को पलटना चाहता है (तो) वह उपयोग नहीं पलटेगा। सूक्ष्म बात है, भगवान ! आहा...हा...!

रुचि पलटता नहीं है (मतबल) अंतर आनंद स्वरूप भगवान इसकी भावना और रुचि करता नहीं और उपयोग को पलटना (चाहता है), यानी कि जाननेरूप भाव को पर से (पलटकर) स्व में लाना - पलटना चाहता है परंतु रुचि किये बिना वह पलटेगा नहीं। `रुचि अनुयायी वीर्य' अंतर आनंदस्वरूप, ज्ञायक स्वरूप इसकी जीव को रुचि और तीव्र भावना हो तो उपयोग अंदर में जाये। पर से (हटकर) स्व में जाये लेकिन रुचि को ही नहीं पलटेगा तो उसका उपयोग पलट सकेगा नहीं। सूक्ष्म बात है। आहा...हा...!

अब इसमें बाहर का क्या करना ? और कहाँ जाना, सारे दिन ये धंधा-व्यापार... आहा...हा...!

(कोई) कहता था कि, सारा दिन ये पाप में पड़े हैं। यह तो बात ही कोई विशिष्ट है, भगवान ! यहाँ तो जिसको जन्म-मरण का (अंत लाना हो उसके लिये बात है)। क्योंकि यह देह छूटने पर कहीं न कहीं जाना तो है। देह छूट जायेगी परंतु आत्मा छूटेगा ? आत्मा तो नित्य है, तो जायेगा कहाँ ? देह छूटने के पश्चात् आत्मा तो नित्य है, जायेगा कहाँ ? इसका विचार आया है ? कि, यह देह छूटने के पश्चात् मैं कहाँ जाऊँगा ? कहाँ अवतार लूँगा ? कहाँ मेरी दशा होगी ? ऐसा विचार आये तब तो उपयोग जो पर तरफ है उसे स्व तरफ लाने का उद्यम करेगा परंतु अगर रुचि नहीं पलटेगा तो स्व में उपयोग जा सकेगा नहीं। आ...हा...हा...हा...! है ?

`**उसे मार्ग का खयाल नहीं है।**' आ...हा...हा...! अंतर आनंद स्वरूप भगवान उस तरफ की रुचि न हो तो जानने-देखने के उपयोग को पलट नहीं सकता। वह बाहर में ही पलटा खाता रहेगा। राग, द्वेष और विकल्प और संकल्प, विकल्प, रति और अरति, शोक और दुःख (में ही पलटा खाता रहेगा)। सूक्ष्म बात है प्रभु ! `**प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा।**'

अंदर में रुचि होनी चाहिए। बाहर में जो रस लग गया है। सारा दिन उस रस के ही विकल्प आते रहते हैं, आ...हा...हा...! आत्मा अंदर ज्ञायक सत्तास्वरूप वस्तु है इसकी रुचि होगी तो उपयोग को पलट सकेगा, तो जानने का उपयोग स्व के प्रति झुकेगा। आहा...हा...!

`**प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा।**' आत्मा की रुचि होगी (मतलब) अगर आनंद और ज्ञान की (रुचि होगी) तो उसका वर्तमान व्यापार पर तरफ झुका है वह स्व तरफ झुके बिना रहेगा नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है ! क्या करना ? यह बाहर का कुछ करना कि इसमें से कुछ हो सके ऐसा है ? बाहर में तो धमाल चलती है, बापू ! अंदर में उपयोग को पलटने का कार्य करना है। परंतु इस उपयोग का पलटा कब हो ? जब उसे अंतर स्वभाव का माहात्म्य आये कि मैं एक आनंद और सहजानंद अनंत गुण का पिण्ड हूँ। वह मेरी सत्ता और वह मेरा सत् और वही मेरा सत्त्व है। आत्मा सत् है और अनंत गुण उसका सत्त्व है। सत् का सत्त्व वही है।

वैसे तो पर्याय को भी सत्त्व कहा था। आया था ? छठी गाथा के भावार्थ में (आया था)। परंतु वह एक समय की पर्याय का सत् है जबकि वस्तु है वह त्रिकाल सत् है। सत् का त्रिकाली सत्त्व नाम गुण है। यह ज्ञान और आनंद जिस सत् का सत्त्व है, इसकी अगर रुचि होवे तो वह (उपयोग) पलट सकेगा। उपयोग का पलटा सहज हो जायेगा।

`**मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।**' आहा...हा...! मार्ग की विधि का यथार्थ क्रम ऐसा है। इसे छोड़कर अन्य प्रकार से करने जायेगा तो होगा नहीं। आहा...हा...! दुष्कर काम बहुत !

(जन्म-मरण करते-करते) अनंतकाल बीता। आहा...हा...! त्रस की स्थिति में दो हज़ार सागर रहेगा। क्या कहा ? दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय - ये त्रस हैं। मनुष्य, नारकी, देव, तिर्यंच-पशु, ऐसे त्रस में दो हज़ार सागर ही रहेगा। इन दो हज़ार सागर में (मिले हुए) मनुष्यत्व में अगर कुछ नहीं किया (तो) निगोद

में जायेगा। समझ में आया ?

परमात्मा जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ ने केवलज्ञान में देखकर कहा - प्रभु ! तू एकेन्द्रिय से निकलकर मुश्किल से तो त्रस में आया और इस त्रस में दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के भव अधिक से अधिक करेगा तो दो हज़ार सागर तक करेगा, लेकिन फिर तो निगोद में जायेगा। यदि इस मनुष्यत्व का कर्तव्य (अर्थात्) आत्मा का अनुभव नहीं किया, आत्मा की प्रतीति, विश्वास और अनुभव नहीं किया तो परिभ्रमण करते हुए निगोद में जायेगा। आहा...हा...! क्योंकि देह नष्ट होगी परंतु आत्मा का तो कोई नाश होनेवाला नहीं है। तो (यह) देह (छूटने के) पश्चात् जायेगा कहाँ ? जिसकी जिसको रुचि वहाँ उसका जन्म होगा। आहा...हा...हा...! दुष्कर बात है। जगत में (जीव) बाहर की महिमा में और बाहर के मोह में उलझे हुए हैं। अंतर वस्तु रह गई। साधु हुआ तो भी अंतर (वस्तु) रह गई ! अंतर का माहात्म्य जितना आना चाहिये उतना माहात्म्य आया नहीं। आहा...हा...!

वही (यहाँ कहते हैं) `**मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है।**' उपयोग मतलब जानने-देखने का जो भाव है वह तो अनादि से पर की ओर झुका हुआ है, उसे स्व तरफ मोड़ना हो तो चैतन्यस्वरूप क्या है ? इसकी जीव को रुचि होनी चाहिये। और रुचि होगी तो उपयोग का पलटा होगा। भाषा समझ में आती है कि नहीं ? भाषा तो पूरी सादी, सरल है। भले गुजराती (है) परंतु भाषा तो सादी है। आहा...हा...!

उपयोग को अंदर पलटना हो तो (पहले) रुचि को पलट। सब जगह से रुचि उठा ले ! और अंतर में आनंद स्वरूप भगवान (है) इसकी रुचि कर तो पर तरफ लगा उपयोग अंदर में झुकेगा।

यह मार्ग का क्रम है। इससे हटकर दूसरे क्रम से चलने जायेगा तो वस्तु मिलेगी नहीं। आहा...! ये ३६ वाँ बोल हुआ।

`मैं अबद्ध हूँ',' `ज्ञायक हूँ', यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं; शांति नहीं मिलती, विकल्पमात्रमें दुःख ही दुःख भासता है, तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर वस्तुस्वभावमें लीन होने पर, आत्मार्थी जीवको सब विकल्प छूट जाते हैं और आनंदका वेदन होता है।।३७।।

३७ वाँ (बोल)। **`मैं अबद्ध हूँ,' `ज्ञायक हूँ,' यह विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,...**' आहा...हा...! `समयसार' १४२ (गाथा में) कहा न ? कि जिसको व्यवहार का (यानी कि) पर्याय का, राग का पक्ष है उसका तो हम निषेध करते ही आये हैं। परंतु निश्चय स्वरूप जो आत्मा ज्ञायक और अबद्ध स्वरूप है इसकी हम बात करते हैं, परंतु इसके पक्ष में, विकल्प में यदि खड़ा रहेगा तो उसको भी वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी। व्यवहार का तो हम निषेध करते ही आये हैं। वहाँ १४२ (गाथा) में (ऐसा कहा है) पर्याय और राग का तो निषेध करते ही आये हैं। (क्योंकि) वह दृष्टि करने लायक नहीं है। परंतु त्रिकाली ज्ञायक में दृष्टि करने पर `मैं अबद्ध और ज्ञायक हूँ' ऐसा जो विकल्प नाम राग उठता है, इससे क्या

हो गया ? क्या संस्कृत है ? `तत् किम' - संस्कृत में ऐसा है। `तत् किम्' - इससे क्या हुआ ? बापू ! आहा...हा...! सुबह (`समयसार' की) १४ वीं गाथा में `अबद्ध' आया न ? वहाँ अबद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ ऐसा जो विकल्प - राग है, इसमें क्या हुआ प्रभु ? वह अंदर में आया नहीं। वह तो बाहर ही बाहर में घूमता रहता है। आहा...हा...!

काम काफ़ी दुष्कर लगे...! और इसमें परदेश में कमाने में उलझ गये हो, आहा...! ५-२५ लाख की पैदाइश हो,... फिर तो हो चुका...! जैसे... ओहो...हो...! मैं बढ़ गया ! भटकने में... (बढ़ा है)। एक शब्द ऐसा कहा था कि, पैसा है वह पुण्य से मिलता है। पुण्य बिना प्रयत्न से नहीं मिलता। कितने ही ऐसे लोग देखे हैं... यहाँ हमें तो लाखों का परिचय है। मुंबई, कलकत्ता, दिल्ली सब जगह व्याख्यान दिये हैं। बड़े-बड़े शहरों में सब जगह गये हैं। भोपाल में ४०-४० हज़ार लोगों के बीच व्याख्यान दिया है। ये बाहर की बातों में अटकने में अंदर आत्मा वस्तु क्या है ? इसका विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता। हमें सूक्ष्म लगता है... हमें सूक्ष्म लगता है... हमें सूक्ष्म लगता है। आहा...! ऐसा कहकर बाहर ही बाहर में उपयोग रहा करता है, परतुं अंदर जाने के लिये (उपयोग को अवकाश नहीं मिलता)। ये बाहर के माहात्म्य को देखकर मोहित हो गया है, उलझ गया है, पलटा खाता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं **`मैं अबद्ध हूँ,' `ज्ञायक हूँ' यह `विकल्प भी दुःखरूप लगते हैं,...**' आहा...हा...! व्यवहार भले ही तूने लक्षमें से छोड़ा और व्यवहार तो छुड़ाते आये हैं, परंतु निश्चय में अबद्ध और ज्ञायक स्वरूप है, उसका भी अगर विकल्प और राग रहेगा (तो) इससे क्या हुआ ? इससे तुझे आत्मा की प्राप्ति क्या होगी ? इससे आत्मा भविष्य में नरक और निगोदमें से नहीं निकल सकेगा।

आहा...हा...! इस विकल्प को तोड़कर (अंदर में जा)। अबद्ध और ज्ञायक हूँ (ऐसे) विकल्प में रहे तो `**शांति नहीं मिलती,...**' आहा...हा...! कहिये ! ज्ञायक और अबद्ध का विकल्प भी नुकसानकारक है।

यह कहा था न ? १४ प्रकार के अंतर परिग्रह हैं, १० प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। शास्त्र में २४ प्रकार के परिग्रह का वर्णन है। समझ में आया ? ये विकल्प से लेकर पैसा, मकान, स्त्री, कुटुंब आदि (मिलना) यह पुण्य का फल है, परंतु है वह पाप ! आहा...! सिद्धांत में लेख है कि २४ परिग्रह में लक्ष्मी, सोना-रूपा, मणिरत्न (आदि आता है)। ऐसे दस-दस करोड़वाले मनुष्य (देखे) हैं, परंतु (यहाँ) कहते हैं कि हम उसे परिग्रह कहते हैं और उसको हम पाप कहते हैं। आहा...हा...हा...!

ज्ञायक और अबद्ध ऐसे विकल्प भी दुःखरूप हैं। लेकिन ये पैसे आदि मिले - करोड़, दो करोड़ और अरब की धूल मिली, इस पैसे को भगवान ने `गोम्मटसार' में १० प्रकार के बाह्य परिग्रह में गिना है। तो पैसा आदि है उसे पाप कहा है और पाप के स्वामी को पापी कहा है ! अररर...! यह कठिन लगे...!

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ २४ प्रकार के परिग्रह कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग और परिग्रह। इसमें परिग्रह के २४ प्रकार कहे हैं। इसमें १४ (प्रकार के परिग्रह) तो अंतर में हैं। मिथ्यात्व, राग, द्वेष, हास्य, रति आदि अंतर परिग्रह (हैं)। और बाह्य (परिग्रह) लक्ष्मी, मकान, आबरू, कीर्ति आदि बाह्य हैं। ये सब पुण्य के फल जरूर हैं परंतु हैं स्वयं पाप। अररर...! यह कठिन लगे...!

इस पाप का जो स्वामी हो (अर्थात्) यह पाप मेरा है, पैसा मेरा है - ऐसे स्वामी बने उसके लिये तीनलोक के नाथ का फरमान

है कि वह पापी प्राणी है। ठीक लगे - न लगे, जगत को ठीक लगे - न लगे इसके साथ कोई परमात्मा बाध्य नहीं हैं !! परमात्मा की वाणी में तो सत्य का प्रचार (आया है)। सत् क्या है - यही आता है। आहा...हा...हा...! दुनिया के लोग उसे पुण्यशाली कहेंगे। वीतराग कहते हैं कि वह परिग्रह है, परिग्रह है सो पाप है और जो पाप का स्वामी बने वह पापी है।

मुमुक्षु :- गुरुदेव ! तो फिर संसार में इसके बिना करना क्या हमें ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मेरा नहीं है, ऐसा भगवान ! ऐसा मानना। ऐसे अंतर में रुचि पलट देना। वह बाह्य चीज़ (है) - पर है। मेरी चीज़ पर है वह चीज़ पर है। वह पर (चीज़) मेरी नहीं। पर को परमात्मा ने पाप कहा है। वह पाप मेरा नहीं। मैं तो आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसे तुम्हें रुचि पलट देनी चाहिये प्रभु ! आहा...हा...!

आहा...हा...! इसमें है क्या लेकिन बापू ? करोड़पति ! `निर्जरा अधिकार' में लिया है। `समयसार' के `निर्जरा अधिकार' में यह अधिकार चला है कि, जो भी प्राणी `यह अजीव है सो मेरा है' ऐसा मानता है तो वह जीव, अजीव है - जीव नहीं। कठिन बातें हैं, बापू ! यह तो जगत से अलग बात है। `निर्जरा अधिकार' में (आता) है। `मैं अजीव हो जाऊँ' (आता) है ? श्लोक है। कि, यदि राग और लक्ष्मी मेरे हो या मेरे मानूँ तो मैं अजीव बन जाऊँ ! आहा...हा...हा...! मुश्किल बात है ! पैसेवाले को पापी मानना !

मुमुक्षु :- ऐसा सुनकर अंतर में हलचल मच जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हलचल होती है ! बात सही है, भगवान ! अंदर में खलभली हो जाती है (ऐसा कहते हैं) !

तीनलोक के नाथ की पुकार है। जिनेन्द्रदेव की इन्द्र और नरेन्द्र के बीच, चक्रवर्ती और बलदेव के बीच परमात्मा की यह पुकार है कि, तेरे आत्मा के सिवा पर पदार्थ जो अजीव हैं, `यह अजीव है सो मेरा है' ऐसा मानेगा तो तू अजीव है - जीव नहीं ! भैंस का...! `भैंस का स्वामी पाड़ा होता है।' भैंस का पति पाड़ा होता है। वैसे अजीव का स्वामी अजीव होता है। अजीव मेरा है ऐसा मानेगा तो तू अजीव - जड़ है। (ऐसा) कहते हैं)। तू मान के न मान परंतु वह वस्तु (तेरी नहीं है)। तेरी दृष्टि पर (ऊपर) है। आहा...हा...! वीतराग को कहाँ दरकार है जगत की, कि यह जगत को ठीक लगे, न लगे ! मुनियों को कहाँ दरकार है जगत की ! दिगंबर संतों को कहाँ दरकार है ! `नागा ते बादशाहथी आघा (दूर)।' बादशाह की भी जिसको परवाह नहीं है !! आहा...हा...हा...!

मैंने एकबार कहा नहीं था ? वहाँ व्याख्यान सुनने दरबार आये थे, भावनगर दरबार ! १९ मील हैं न ? सोनगढ़ से भावनगर ! साल की एक करोड़ की उपज है। करोड़ रुपये का राजा ! सब व्याख्यान में तो आयेंगे। जहाँ भी जाते हैं वहाँ के राजा बड़े-बड़े लोग सब व्याख्यान में तो आते हैं। वढ़वाण, लखतर, राजकोट जहाँ भी जायें वहाँ दरबार हों, वे व्याख्यान में तो आयेंगे, एक बार तो जरूर आयेंगे। एक बार तो सुनने आयेंगे ही !

वे दरबार व्याख्यान में आये थे, भावनगर दरबार...! एक करोड़ की पैदाइश, उपज हं...! राज्य बड़ा है, एक करोड़ की पैदाइश (है)। (मैंने) कहा - दरबार ! एक साल में एक लाख माँगे या दो लाख माँगे वह छोटा भिखारी है ! और करोड़ माँगे वह बड़ा भिखारी है !! हमको कहाँ उसके पास से पैसे की अपेक्षा थी

कि राजा खुशी हो जायेगा तो... बैठा था... सामने सुनता था ! दो भाई आये थे। एक उसका छोटा भाई था। राजा और राजकुमार दोनों सभा में आये थे। जो अधिक इच्छा रखता है वह बड़ा भिखारी ! थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी ! थोड़ा चाहे वह छोटा भिखारी ! अधिक चाहे वह बड़ा भिखारी ! भिखारी मतलब भिखमंगा !! आहा...हा...!

(ऐसा कहा) परंतु हमको क्या कहे ? यहाँ हमारे पास कुछ लेना-देना है ? कि भाई वह खुशी हो जाये तो कह दे, इतने पैसे लिख लो...! सही बात महाराज ! बेचारा ऐसे कहता था हं ! दरबार खुद (ऐसा कहता था) ! (उसको) कहा कि बड़ी... बड़ी... माँग रखे, अधिक माँग रखे वह बड़ा भिखारी !! वीतराग उसे, पाप के स्वामी को पापी कहते हैं। जबकि पुण्य करे और पुण्य का स्वामी हो, तो वह पुण्य का स्वामी भी जड़ है !! क्योंकि पुण्य भी शुभभाव (है)। (यह शुभ)राग चैतन्य के अभाव स्वभावरूप है। राग को (यानी कि) चैतन्य के अभाव स्वभाव को अपना माने वह अजीव हो जाता है। मान्यता में अजीव हो जाता है हं ! जीव पलटकर कोई अजीव नहीं हो जाता। आहा...हा...! दुष्कर बात है ! आफ्रिका के नायरोबी में ऐसी बात सुनना...! दुष्कर बात, भगवान !

हम तो पूरे काठियावाड (घूमे हैं)। बड़े-बड़े शहर कलकत्ता, दिल्ली सब जगह गये हैं। सब जगह हज़ारों लोग (आते हैं)। दो-दो हज़ार, पाँच-पाँच हज़ार, दस-दस हज़ार लोग सभा में होते हैं - आहा...हा...! यह बात तो रुचना, सुहाना यह बहुत अलौकिक बात है !!

यहाँ तो अबद्ध और ज्ञायक हूँ - ऐसा विकल्प भी दुःखरूप लगता है। आहा...हा...! पैसा, लक्ष्मी या आबरू या मणिरत्न के

ढेर या पिटारे भरे हो... मणिरत्नों के...! आहा...हा...! वह सब सोना, रत्न और मणिरत्न के पिटारे भरे हो परंतु (वे बेचारें) भिखारी हैं। पर की इच्छा (है), पर को माँगता (है), यहाँ तो (कहते हैं) ज्ञायक और अबद्ध हूँ ऐसा विकल्प भी करे तो वह दुःखरूप और विकारी है। आहा...हा...!

श्वेतांबर में एक नहीं कहते, क्या नाम है ? वस्तुपाल और तेजपाल ! करोड़ों रुपया (था)। (वे लोग) यात्रा में निकले। कितने (रुपये) ? कि अरबों रुपये ! अपने मकान की कोई जगह खाली होगी। वहाँ खड्ढ़ा करके गाढ़ने गये - वह ऐसे कि हमें बाहर जाना है और ये रुपये ऐसे बाहर खूले पड़े रहे (इसके बजाय) जमीन में गाढ़ देते हैं। वे गाढ़ने गये तो (वहाँ से) करोड़ों निकले ! अभी तो गाढ़ने गये तो करोड़ों निकले ! पत्नियों ने कहा...! पत्नियों ने...! कि आप गाढ़ने गये तो भी इतने निकले (तो) आप गाढ़ते क्यों हो ? यहाँ धर्म के नाम से खर्च करो न, पुण्य तो होगा। यह पाप तो तेरा एक तरफ रहा ! आ...हा...हा...! पत्नी ने उसको कहा ! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि अबद्ध और ज्ञायक (हूँ) ऐसे विकल्प भी दुःखरूप लगे, आहा...हा...! तब अंतर स्वभाव सन्मुख जीव की दृष्टि जाती है। आहा...हा...! ऐसे तो कई जीव हैं। बहुत देखे... बहुत देखे हैं, पूरा काठियावाड (देखा है)। कई बड़े-बड़े राजाएँ भी व्याख्यान में आते हैं। लखतर, वढ़वाण, सब जगह हम जायें तब व्याख्यान में अवश्य आयेंगे ही। सुना न हो कभी, परंतु सुनकर बेचारों (को ऐसा लगे) यह क्या बात करते हैं यह महाराज ! उनको न तो कुछ लेना-देना है और यह क्या कहते हैं ?

मार्ग यह है ! देह छूटने पर जाना है कहीं न कहीं (तो)

कहाँ मुकाम करना है तुझे ? देह तो छूट जायेगी। यह तो जड़ है - मिट्टी (है)। इसकी समय मर्यादा है। इस समय मर्यादा में एक समय भी बढ़े ऐसा नहीं है। जितने दिन और महीने जा रहे हैं वे सब मृत्यु के समीप जा रहे हैं। जो उसका - मृत्यु का नियम है - जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस प्रकार (देह छूटेगी) उसके समीप आयु जा रही है। वह उसके समीप जा रही है। `माँ' कहती है कि (बेटा) बड़ा हुआ। प्रभु कहते हैं कि मृत्यु के समीप गया ! अरे... अरे... यह बात ! दुनिया से उलटी है।

यहाँ तो बहिन ऐसा कहते हैं कि तू **`अबद्ध हूँ,' `ज्ञायक हूँ'** - यहाँ तक आया हो तो भी वह विकल्प दुःखरूप है। आहा...हा...! **`शांति नहीं मिलती,...'** उस विकल्प में भी शांति नहीं है, प्रभु ! आहा...! भगवान अंदर शांति का सागर, आनंद का सागर विराजमान है उसे तू विकल्प से पकड़ने जायेगा, (तो वैसे) पकड़ में नहीं आयेगा, प्रभु ! आहा...हा...! शुभराग की चाहना है वह दुःखरूप है (और) भगवान आनंद रूप है तो दुःख से आनंद नहीं मिल सकेगा, आहा...हा...! दुःख से आनंद मिले ? दुःख का साधन राग और उससे निर्मल आनंद मिलेगा क्या ? कहते हैं कि विकल्प है वह दुःखरूप है, शांति नहीं मिलती। आहा...हा...! यहाँ तक आया तो भी कहते हैं कि, शांति नहीं मिलती। अभी जो बाहर में भटकते हैं उनकी तो बात ही क्या करना ? वे तो दुःख के ढेर में पड़े हैं अभी तो !

`विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है,...' आहा...हा...! अंतर्मुख जाने में शांति का सागर भगवानआत्मा ! अरे...! कैसे बैठे ? बड़ा सागर - समुद्र हो, उसके किनारे गया हो और एक चार

हाथ का...! क्या कहते हैं उसको ? परदा पड़ा हो। चार हाथ का परदा हो (तो) उसकी नज़र में वह परदा आयेगा। वस्तु - सागर नज़र नहीं आयेगा। चार हाथ का कपड़ा हो तो बीच में रहा परदा दिखेगा, वस्तु नहीं दिखेगी। वैसे अंदर आनंद सागर भगवान है, वह राग के परदे में अगर अटका तो उसे आत्मा नहीं दिखेगा और दुःख दिखेगा। आहा...हा...! ऐसी बात है। दुनिया को कठिन लगे ! लेकिन क्या है, बापू ! यह वस्तु है।

देह छूटने पर प्रभु ! तुझे कहाँ जाना है ? यह देह तो छूट जायेगी। २५-५०-६० वर्ष हुए इतने तो अब निकलनेवाले हैं नहीं। ५०-६० साल हुए हो तो अब इतने निकलेंगे नहीं। थोड़ा समय है। कहाँ जाना है, बापू !? आहा...हा...! अगर आत्मा में जाना होगा तो विकल्प (में) दुःख लगना होगा। (फिर) विकल्प छोड़कर अंदर में (जायेगा) तो (वहाँ) शांति मिलेगी। इसके बिना कहीं शांति मिले ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

'**विकल्पमात्र में दुःख ही दुःख भासता है,...**' आहा...हा...! ज्ञानी को...! '**तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...**' अपूर्व नाम पूर्व में नहीं किया हो (ऐसा) पुरुषार्थ। अंदर चेतन राजा दरबार बादशाह विराजमान है। आहा...हा...! उससे भेंट करनी है। विकल्प के दुःख को छोड़कर अंदर में जायेगा तो उसकी भेंट होगी। बाह्य विकल्प से उसकी भेंट नहीं होगी। आहा...हा...! यहाँ (तो) दगा, प्रपंच... आहा...हा...! पैसे के लिये दगा, प्रपंच, क्लेश, कपट, माया, कुटिलता... आहा..हा...! प्रभु ! उसके दुःख की तो सीमा नहीं, परंतु ज्ञायक के लिये भी अगर विकल्प उठाया (तो) वह (भी) दुःख है।

वही (यहाँ कहते हैं) '**अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर...**' (अर्थात्) इस विकल्प का पुरुषार्थ भी छोड़कर, आहा...हा...! ज्ञान तो करे, जानकारी

तो करे कि मार्ग यह है। सुने बिना तो मार्ग का पता भी न चले, यूँ ही जगत के लोग जी रहे हैं। आहा...हा...! '**तब अपूर्व पुरुषार्थ उठाकर, वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...**' आहा...हा...! अबद्ध और ज्ञायक की वृत्ति उठती है। वह भी विकल्प - राग है, दुःख है। प्रभु तो अमृत का सागर आनंद है। यह अमृत किसीको मारता नहीं, अमृत किसी से मरता नहीं। आहा...! यह अमृत का सागर भगवान अंदर पड़ा है, डोल रहा (है)। परंतु वहाँ नज़र किये बिना निधान दिखता नहीं है। इसकी ओर नज़र किये बिना निधान पड़ा हुआ दिखता नहीं है। वस्तु यूँ सामने हो लेकिन उस पर नज़र न करे तो दिखती नहीं। वैसे अंदर भगवानआत्मा आबालगोपाल को (अनुभव में आ ही रहा है)। वह १७-१८ गाथा में आयेगा। इस में (अभी) १५ वीं लेने की है न ? १४ वीं के बाद १५ वीं इसके बाद १७-१८ गाथा है उसमें आता है। आबालगोपाल ! १७-१८ वांचन में (लेनी है ऐसा आपने) लिखा है।

वहाँ ऐसा लिया है। आबालगोपाल - बालक से लेकर वृद्ध सब की ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है। अज्ञानी को भी ज्ञान की पर्याय में आत्मा मालूम पड़ता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। १७-१८ गाथा में आयेगी। यह ज्ञान की पर्याय - दशा जो है उसका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से, उस ज्ञान की पर्याय में प्रभु जानने में आता है परंतु तेरी नज़र वहाँ नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया ? ज्ञान की जो पर्याय है न ! यह विचार - जो व्यक्त ज्ञान (है)। जानने की जो प्रगट-प्रगट पर्याय है न ! उस पर्याय का स्वभाव स्व-पर जानने का है। भगवान त्रिलोकनाथ की पुकार है कि, अज्ञानी की ज्ञान पर्याय भी आत्मा को जानती है। अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय भी त्रिकाली - त्रिलोकी नाथ आत्मा

को जानती है। फिर भी उसकी नज़र वहाँ नहीं है, इसलिए पर्याय में अटककर, राग में रुककर जो चीज़ नज़र के सामने है उसे देखता नहीं है। आहा...हा...! कठिन बात है ! यह तो एकदम तीव्र पुरुषार्थ उठाये तो यह काम हो, ऐसा है। साधारण पुरुषार्थ से यह काम चले ऐसा नहीं है। आहा...हा...हा...!

यहाँ तो धर्म की बात है, प्रभु ! जिससे भव कम हो व भव का नाश हो यह बात है। भव करेगा तो निगोद में जायेगा। आहा...हा...! पहले कहा न ? त्रस में रहेगा तो २००० सागर रहेगा। यह निगोदमें से - एकेन्द्रियमें से बाहर आया है न ! वह बाहर में २००० सागर रहेगा। ये २००० सागर यदि इसी ममता और ममता में ही बीता दिये (तो) फिर से निगोद में जायेगा। ये लहसुन और प्याज में जायेगा ! आ...हा...हा...! आया है न? दो हज़ार सागर (की) त्रस (स्थिति में) मनुष्य के भव करे तो ४८ (भव) करेगा। मनुष्य का भव एक के बाद एक करे तो ऐसे आठ करे। मनुष्य मरकर मनुष्य, मनुष्य मरकर मनुष्य ऐसे एक के बाद एक भव करे तो आठ करे। ऐसा शास्त्रपाठ है। ऐसे आठ भव अनंतबार हो चुके। अनंतबार...! परंतु २००० सागर की जो त्रस की स्थिति है, त्रस में २००० (सागर) रहता है, इसमें भी ८-८ मनुष्य के भव, ६ दफा ८-८ अर्थात् ४८ भव करे। समझ में आया ? क्या कहा इसमें ?

एकेन्द्रिय से निकलकर जहाँ पंचेन्द्रिय (में) आया है, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, ऐसे २००० सागर तक रहेगा। फिर (त्रसमें से) निकलकर एकेन्द्रिय में जायेगा। इसमें कहते हैं कि २००० सागर में मनुष्य के भव लगातاررूप से किये तो ८ किये और ऐसे ८ भी ६ बार किये (यानी कि) ४८ किये। परंतु आत्मा

का (हित) किया नहीं। ४८ भव २००० सागर के अंदर किये !! आहा...हा...! २००० सागर में भी असंख्य अरब साल हैं। उसमें ४८ बार मनुष्य हुआ है। (ऐसा) कहते हैं। लगातार हुए तो ८ बार (हुए)। लेकिन ८ बार होकर फिर से दूसरे में - नरक-तिर्यंच में जाता है, फिर से मनुष्य होवे - ऐसे भव करे तो पूरे २००० सागर में (मनुष्य के) ४८ भव करता है। फिर मरकर निगोद या नरक में जायेगा। आहा...हा...! अगर उसने आत्मा का काम नहीं किया, अरेरे...! अपनी गति अगर नहीं सुधारी (तो फिर से निगोद में जायेगा)।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि अपूर्व पुरुषार्थ जागृत कर ! `**वस्तुस्वभाव में लीन होने पर,...**' आहा...हा...! भगवानआत्मा ! उसका - वस्तु का स्वभाव जो है - ज्ञान, दर्शन और आनंद, उसमें लीनता होनेपर `**आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं...**' आहा...हा...! इस पंचम आरा में सब अवसर आ चुका है - सब अवसर आन मिला है। उसमें यह जो नहीं किया, विकल्प तोड़ा नहीं और निर्विकल्पदृष्टि करेगा नहीं तो उसका छुटकारा कभी नहीं होगा।

वही यहाँ कहते हैं `**आत्मार्थी जीव को सब विकल्प छूट जाते हैं...**' आहा...हा...! ज्ञायक हूँ, अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ, पवित्रता का पिण्ड हूँ ऐसा भी एक विकल्प नाम राग एकांत दुःखरूप है। आहा...हा...! तो बाह्य चीजों के लिये उत्पन्न हुए राग-द्वेष की बात तो क्या करे ? वह तो दुःख का सागर है, बापू ! आहा...हा...! अंदर में ज्ञायक और अबद्ध आदि का विकल्प भी दुःखरूप है। इसलिये सब विकल्प छूट जाते हैं। `**और आनंद का वेदन होता है।**' तब उसको सम्यग्दर्शन होता है। आहा...!

सम्यग्दर्शन माने क्या ? ऐसा कोई भाई पूछते थे। सम्यग्दर्शन

मतलब अंतर (आत्मा का) अनुभव करना। राग छोड़कर, विकल्प छोड़कर चैतन्य का अनुभव करना और उसकी प्रतीति करना उसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। मैं परमात्मस्वरूप हूँ, मैं ज्ञातादृष्टा हूँ, मेरे स्वभाव में विकल्प और अल्पता है नहीं। विकल्प और अल्पता है नहीं (ऐसा कहा)। आहा...हा...! ऐसे पूर्ण स्वभाव की अंतर में विकल्प रहित प्रतीति होना उसको यहाँ सच्ची श्रद्धा और सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी - शुरूआत कहते हैं। आहा...हा...! बाहर भटकते हुए बाहर से कुछ (लाभ) मान लेता है। जहाँ जाना है वहाँ जाता नहीं और बाहर में भटकता रहता है। आहा...हा...!

`**और आनंद का वेदन होता है।**' विकल्प सब छूट जाये तो भगवान में आनंद है, उसका वेदन होता है। तब उसको धर्म की दशा होती है। तब वह प्राणी भव का अंत करके मुक्ति को पाता है। इसके बिना भव का अंत आता नहीं। आहा...हा...! यह ३७ वाँ (हुआ)।

आत्मा को प्राप्त करनेका जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगोंमें भी तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा। सच्चा मुमुक्षु सद्‌गुरुके गंभीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझमें आये ऐसे रहस्योंसे भरपूर वाक्योंका खूब गहरा मंथन करके मूल मार्गको ढूँढ़ निकालता है।। ३८।।

(३८ बोल।) `**आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है...**' पैसे की प्राप्ति का और पत्नी की प्राप्ति का या आबरू पाने का, यह (बात) नहीं। आहा...हा...! `**आत्मा को प्राप्त करने का जिसे दृढ़ निश्चय हुआ है उसे प्रतिकूल संयोगों में भी...**' आ...हा...हा...! शरीर में रोग आये ! देखो न ! (एक भाई के वहाँ गये थे तो) बेचारे रोने लगे। आँखों से आँसू गिरने लगे। आज एक भाई आये थे। ऐसे शरीर हो जाते हैं। काम कर सके नहीं, आत्मा का कर सके नहीं और बाहर का कर सके नहीं। आहा...हा...! ऐसे भव भी अनंत हुए हैं। यह भव पहला नहीं ऐसे तो अनंतबार हुए हैं।

इसलिये (यहाँ कहते हैं) `**आत्मा को प्राप्त करने का जिसको दृढ़ निश्चय हुआ है...**' (अर्थात्) मुझे तो आत्मा चाहिये और कुछ नहीं चाहिये आहा...हा...! उसे प्रतिकूल संयोगों में (अर्थात्) शरीर (में) आहा...हा...! पक्षघात हो, रोग हो, दिमाग फिर जाये - ऐसे प्रतिकूल संयोगों में भी आहा...हा...! `**तीव्र एवं कठिन पुरुषार्थ...**' करना चाहिये। कठिन नाम दुष्कर। आहा...हा...! गुजराती भाषा है न ! कठिन नाम कड़ा। (कड़ा) पुरुषार्थ करना है। वह `**करना ही पड़ेगा।**' है न ? `**कठिन पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा।**' चाहे जैसी प्रतिकूलता हो ! जगत में निंदा हो, प्रतिकूलता हो, शरीर में रोग हो, क्षय रोग लागू पड़े, (वह) शरीर को (लागू) पड़ता है। उसे तीव्र पुरुषार्थ करके आत्मा में जाना। उसे पाने का यह उपाय है, अन्य कोई उपाय है नहीं, आहा...! ऐसा तीव्र पुरुषार्थ उठाने पर ही छुटकारा है।

`**सच्चा मुमुक्षु सद्‌गुरु के गंभीर तथा मूल वस्तुस्वरूप समझ में आये ऐसे रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मंथन करके...**'

धर्मात्मा के वचन बहुत गंभीर होते हैं, गहरे होते हैं। धर्मी जीव (के) रहस्यों से भरपूर वाक्यों का सच्चा मुमुक्षु बहुत गहरा मंथन करके '**मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है।**' आ...हा...हा...!

अंतर में चैतन्य भगवान जागृत ज्योत पड़ी है ! परमेश्वर स्वरूप है। ३८ वीं गाथा में कहा है न ? ३८ गाथा। वह अपने परमेश्वर को भूल गया। अन्य परमेश्वर के पीछे लगा - भगवान को, तीर्थंकर को परंतु वे तो पर हैं। पर का अवलंबन लिया कि वहाँ राग की उत्पत्ति होगी। आ...हा...हा...! अपने परमेश्वर को भूल गया और दूसरे परमेश्वर की महिमा जानकर वहीं अटक गया। आहा...!

यहाँ कहते हैं कि धर्मात्मा के (वस्तुस्वरूप को) समझायें ऐसे '**रहस्यों से भरपूर वाक्यों का खूब गहरा मंथन करके...**' (ऐसा कहते हैं)। '**खूब गहरा मंथन करके...**' आहा...हा...! अंदर में जाने का तीव्र पुरुषार्थ करके ! ये बहिन के अंदर के वचन हैं न ! '**मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता (है)।**' अंदर में बहुत मंथन करके, विकल्प से रहित होकर प्रभु को ढूँढ़ लेता है। यह भगवान चैतन्य आनंद मूर्ति है। ऐसे समकिती, ऐसे धर्म की पहली सीढ़ीवाला विकल्प को तोड़कर संपूर्ण को प्राप्त कर लेता है। संपूर्ण ऐसा आत्मतत्त्व - उसे प्राप्त कर लेता है। वह प्राप्त करनेवाला आत्मा है वह समकिती है। वह सच्ची श्रद्धावाला है। वह मोक्ष के मार्ग पर है। वह संसार के अंत में आ चुका है। उसके संसार का अंत - भव का अंत आ चुका है। आहा...हा...!

अटकने के साधन अनंत - छूटने का साधन एक। यह क्या कहा ? बाहर में अटकने के साधन अनंत। राग, द्वेष, पुण्य और शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुंब, पैसा, आबरू-कीर्ति, बेटी, बहु और बड़ी पलटन...! (ऐसे) बाहर में अटकने के (स्थान हैं)। बहुत सारे

बच्चे हो फिर उसकी बहुएँ, फिर उसके बच्चे... ऐसे अटकने के साधन बहुत, प्रभु ! छूटने का साधन एक। इस चैतन्यमूर्ति भगवान तरफ जाना यह छूटने का एक साधन। आहा...हा...! मार्ग यह है। इस मार्ग का खयाल (समझ) तो करे, प्रभु ! आहा...हा...! बहुतों को देखा है - करोड़पतियों को, अरबपतियों को आहा...! लेकिन बेचारों (को) कुछ समझ नहीं। दिमाग में (यह बात) समझी न जाये। कहा नहीं था ?

अभी, मुंबई में एक वैष्णव आया था। दर्शन करने आया था। वैष्णव (था) घर में बहुएँ सब अपनी जैन, श्वेतांबर जैनियों की लड़कियाँ और आदमी सब वैष्णव, वे लोग कर्ता मानते हैं न ! दर्शन करने आया (तो कहा) 'महाराज ! परमेश्वर कर्ता है कि नहीं ?' (मैंने कहा) 'प्रभु ! 'नरसिंह महेता' ने कहा है न कि, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी...' आत्मा को न जाने तब तक सब मिथ्या भ्रम है।

जुनागढ़ में वैष्णव में एक 'नरसिंह महेता' हो गये। 'नरसिंह महेतो, भगत हरिना, जुनागढ़ ना रहेवासी' (ऐसे) आता है, बड़ी कथा आती है। उसने ऐसा कहा (है) कि, 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं' - जब तक अंतर में आत्मा को जानने का प्रयत्न नहीं किया, उसे पहचाना नहीं, तब तक 'शुं कर्युं तीर्थ न तप करवा थकी ?' 'शुं कर्युं जात्रा ने दान करवा थकी ?' इससे कोई आत्मा प्राप्त हो ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहा...हा...!

यहाँ ऐसा कहते हैं कि, (सच्चा मुमुक्षु) '**गहरा मंथन करके मूल मार्ग को ढूँढ़ निकालता है।**' आहा...हा...! यह ३८ (हुआ)।

सहज दशाको विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशाको बनाये रखनेका कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़नेका पुरुषार्थ करता है जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।।३९।।

३९ (बोल) `**सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।**' क्या कहते हैं ? आत्मा अंदर में राग रहित, विकल्प की चाहना रहित है - ऐसा जिसको जानने में आया, उसे फिर से अब कोई भेद करना पड़ता नहीं। भेदज्ञान निरंतर चलता ही रहता है। चाहे खाता हो, पीता हो, बोलता हो, परंतु अंतर में राग से भिन्न हो चुका है, ऐसा भेदज्ञान सदा निरंतर रहा ही करता है। है (अंदर) ? `**सहज दशा को विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।**' राग से भिन्न है ऐसा जो भगवान ! इसका जिसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ उसे विकल्प करके (दशा को) बनाये रखना नहीं (पड़ता)। यदि विकल्प करने बनाये रखनी पड़े फिर तो वह सहज दशा ही नहीं है। आहा...हा...! बहुत सूक्ष्म बात है।

राग करके (दशा बनाये रखनी पड़े तो) वह सहज दशा ही नहीं है। सहज दशा ! आनंद स्वरूप भगवान राग से भिन्न पड़ा

उसकी सहज दशा हुई है। उसे अब राग को भिन्न करने का नया प्रयत्न करना नहीं पड़ता। भिन्न कर दिया वह अब भिन्न होता ही रहता है। आहा...हा...! ऐसी बातें अब ! साधारण समाज ! प्रभु ! समाज साधारण है, आत्मा साधारण नहीं है। आत्मा तो बड़ा भगवान है !

सुबह कहा नहीं था ? कि, धर्मध्यान का विचार करनेवाला अपायवाला ऐसे विचार करता है...! `द्रव्यसंग्रह' में है। `द्रव्यसंग्रह' लाये हो ? है इसमें, `अपाय' का निकालीये...! उसमें धर्मध्यान का अपाय का विचार है। हमें तो हज़ारों ग्रंथ का स्वाध्याय है न ! हज़ारों ! करोड़ों श्लोक...! उसमें एक लेख है - धर्मध्यान का ! अपाय विचय - समकिती राग से भिन्न होकर जब आत्मा का विचार करता है, `अपाय' नाम विचार करता है - `मैं शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद हूँ और मैं अब पूर्ण होना चाहता हूँ, मेरी दशा अब सिद्ध होनेवाली है। मेरी तो होनेवाली है, परंतु वह करुणा से ऐसा विचार करता है कि, `**सभी आत्माएँ भगवान होओ** !!!' आहा...! ऐसा है। अंदर देखो ! धर्मध्यान है।

ठीक वैसे ही वितरागी रत्नत्रय की भावना के बल से हमारा अथवा अन्य जीवों के कर्मों का नाश कब हो ? उस प्रकार का चिंतन उसे अपाय विचय कहते हैं। कोई प्राणी भटके और दुःखी हो, ऐसा विचार धर्मी नहीं करता। आहा...हा...! इसमें है। हमारे और दूसरे जीवों के कर्मों का नाश कब हो ? इसप्रकार का चिंतन अपाय विचय नाम का दूसरा धर्मध्यान जानना। `द्रव्यसंग्रह' है। छः द्रव्यों की व्याख्या है, उसमें धर्मध्यान के `अपाय' बोल की व्याख्या है।

मैं भी चैतन्यप्रभु हूँ। मैं भी पूर्ण परमात्मा होनेवाला हूँ और

सभी आत्माएँ पूर्ण होओ ! भगवंत होओ ! ऐसी भावना धर्मी को होती है। कोई प्राणी दुःखी हो व भटकता रहे, आहा...हा...! ऐसे विचार की भावना धर्मी को नहीं होती। ऐसा यहाँ है। गाथा है। कौन-सी गाथा है ? ४८ वीं गाथा है। ४८ गाथा 'द्रव्यसंग्रह !' क्या कहा समझ में आया इधर ? आहा...!

राग से भिन्न होकर - आत्मा के विचार की धारा बहती है तब धर्मी ऐसा विचार करता है कि, मैं अब पूर्ण होनेवाला हूँ, परमात्मा होनेवाला हूँ ! भले ही एक-दो भव करने पड़े परंतु अंत में मेरी दशा सिद्ध होनेवाली ही है ! मैं तो सिद्ध हूँगा परंतु सर्व जीव कर्मों का नाश करके सिद्ध होओ ! आहा...हा...हा...! ऐसा लेख है। सर्व जीव...! आहा...हा...! धर्मध्यान का दूसरा बोल ! आर्त्त-रौद्र ध्यान है वह छोड़ने लायक है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान उपादेय है। धर्मध्यान पहले उपादेय है। शुक्लध्यान सर्वथा उपादेय है। उस धर्मध्यान के अपाय का यह बोल है। आहा...हा...!

मैं भी अल्पकाल में परमात्मा होनेवाला हूँ ! यह निश्चित है - ऐसा धर्मी अंदर में विचार करता है। परंतु अन्य सर्व प्राणी भी कर्मों का नाश करके परमात्मा होओ !! आहा...हा...हा...! देखो ! यह धर्मध्यान का विचार ! किसी भी प्राणी के प्रति वैरबुद्धि नहीं है, किसी प्राणी के प्रति दुश्मनबुद्धि नहीं है, किसी प्राणी के प्रति अल्प - हलकी बुद्धि नहीं है। उसका जो द्रव्यस्वभाव है उस पर दृष्टि है कि यह उसका द्रव्यस्वभाव है। उसे पकड़कर वह भी मुक्ति को प्राप्त हो !! आ...हा...हा...हा...! यह भावना...! धर्मी की ऐसी भावना होती है। धर्मी को कोई दुश्मन नहीं होता, धर्मी को कोई बैरी-शत्रु नहीं होता। जो बैरी-शत्रु मानता हो उसकी भी मुक्ति हो जाओ !! वह भी बंधन और दुःख से छूट जाओ !! ऐसी धर्मी

की भावना अपाय नाम विचारधारा में चलती रहती है। आहा...हा...!

वही यहाँ कहा, '(**सहज दशा को**) **विकल्प करके नहीं बनाये रखना पड़ता।**' (ऐसी) सहज दशा है। '**तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता; क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है...**' (बढ़ने का पुरुषार्थ) चालू ही है। क्या कहते हैं ? जैसे ही राग से भिन्न होकर यह भेदज्ञान हुआ, वह भेदज्ञान (की) धारा तो निरंतर चलती ही रहती है। इसके लिये अलग से पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। पुरुषार्थ स्वभाव की ओर झुका हुआ है ही। पुरुषार्थ स्वभाव के प्रति कार्यान्वित है ही, वह झुका हुआ पुरुषार्थ बढ़ता ही जाता है। वह अंतर में राग हो उसे जानता है, परंतु राग में अटकता नहीं। ऐसी धर्मध्यान की धारा... आहा...हा...! प्रगट हो ! - '**जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।**' अंतर में बढ़ने से, राग से भिन्न होकर, स्वभाव सन्मुख की दशा के कारण नया पुरुषार्थ करना नहीं पड़ता। उसमें दशा वृद्धिगत होती रहती है। वह दशा तो सहज बनी रहती है। सहज स्वभाव बना रहता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान और उसे धर्मी की दशा कहने में आती है। उसके भव का अंत हो जायेगा और दूसरे के भव का अंत हो ऐसी भावना करेगा, उसे यहाँ धर्मी कहते हैं। (विशेष कहेंगे...)

Left page:

वचनामृत - ४० से ४४ ९

साधक दशामें शुभ भाव बीचमें आते हैं, परंतु साधक उन्हें छोड़ता जाता है; साध्यका लक्ष नहीं चूकता। - जैसे मुसाफिर एक नगरसे दूसरे नगर जाता है तब बीचमें अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है वहींका लक्ष रहता है।।४०।।

वचनामृत-४० वाँ बोल। ३९ चले हैं। (अब) ४०। यह तो शांति का मार्ग है, भाई ! धीरज से (समझने जैसा है)।

`**साधक दशा में...**' क्या कहते हैं ? आत्मा परमानंद शुद्ध चैतन्य वस्तु की दृष्टि हुई, उसका आदर हुआ, उसका स्वीकार-सत्कार हुआ और रागादि का आदर छूट गया, उसे यहाँ साधकदशा - धर्म को साधनेवाली दशा कहते हैं। आहा...हा...!

`**साधक दशा में...**' साधक दशा नाम यह ! अंतर शुद्ध स्वरूप

है, उस पर दृष्टि पड़ी है उस तरफ के प्रयत्न में पड़ा है, उसे साधक (कहते हैं), धर्म के कर्ता को साधकजीव कहते हैं। यह इसकी शर्त है। साधकदशा की ये शरतें हैं। आहा...हा...! उसे `**शुभ भाव बीच में आते हैं;...**' धर्मी को भी भक्ति का, पूजा का इत्यादि शुभभाव आते हैं। जब तक (पूर्ण) वीतराग नहीं हुए, तब तक उन्हें शुभभाव आते हैं। है (अंदर) ?

`**परंतु साधक उन्हें छोड़ता जाता है;...**' आहा...हा...! उसका आदर नहीं करता (परंतु) छोड़ता जाता है। अंतर स्वरूप में जाने का प्रयत्नशील है इसलिये वह राग को छोड़ता जाता है। आहा...हा...! है ?

`**साध्य का लक्ष नहीं चूकता।**' साध्य नाम ध्रुव जो ध्येय - सत्‌चिदानंद प्रभु निर्मलानंद आनंदकंद भगवत् स्वरूप है वह साध्य है, वह ध्येय है, उसे धर्मी चूकता नहीं - भूलता नहीं। आहा...! शुभभाव आयें तो भी वह शुद्ध ध्येय को चूकता नहीं। उसका नाम साधकदशा और धर्मदशा कहते हैं। आहा...हा...हा...! है ? `**साध्य का लक्ष नहीं चूकता।**'

(अब) दृष्टांत (देते हैं)। `**जैसे मुसाफिर...**' रास्ते में निकला मुसाफिर - आदमी, `**एक नगर से दूसरे नगर जाता है...**' एक नगर से दूसरे नगर जाता है फिर भी `**तब बीच में अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है,...**' (अर्थात्) जहाँ जाना है उस नगर का ध्येय है। बीच में (दूसरे) नगर आये उन्हें छोड़ता जाता है। आहा...हा...! साधकदशा, बापू ! (कोई अलौकिक है) !!

अनंतकाल में जीव ने धर्म का ध्येय जो आत्मा (उसे) लक्ष में लिया नहीं है। दूसरे सब क्रियाकाण्ड और शुभ-अशुभ भाव अनंतबार करके अनंतबार स्वर्ग और नरक में गया। आहा...! क्योंकि देह

छूटने पर (तो) देह छूटेगी परंतु आत्मा थोड़ी छूटेगा ? नष्ट हो जायेगा ? लोग देह छूटने पर ऐसा कहते हैं कि, यह जीव गया ! ऐसा कहते हैं न ! कि जीव मर गया ऐसा कहते हैं ?

मुमुक्षु :- `पाछो थयो' (गुजराती में) ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- सही बात है। `पाछो थयो' माने दूसरा भव धारण करेगा। भाई का कहना सही है। `पाछो थयो' (ऐसा) कहते हैं। एक भव से - यहाँ से देह छूटी तो दूसरे भव में जायेगा ही। क्योंकि (आत्मा) नित्य वस्तु है और अंदर (नित्य) वस्तु का स्मरण या ध्यान नहीं है, क्या चीज़ है इसकी खबर नहीं, इसलिये नरक और निगोद या एकेन्द्रिय में `पाछो थयो' यानी कि मरकर (पुनः) वहाँ जायेगा। आहा...हा...! है ?

`**जैसे मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है तब बीच में अन्य-अन्य नगर आयें उन्हें छोड़ता जाता है, वहाँ रुकता नहीं है; जहाँ जाना है...**' आहा...हा...! जिस नगर में जाना है उसे ध्यानमें से नहीं चूकता। बीच में चाहे जितने शहर आदि आयें, परंतु वहाँ देखने में अटकता नहीं। आहा...हा...! `**वहीं का लक्ष रहता है।**' जिस ज़गह जाना है उसका ही लक्ष रहता है। बीच में चाहे कुछ भी आये...! आहा...हा...! रास्ते पर चलते हुए पेड़ की छाया मिले, पेड़ लगे हो तो रास्ते में चलते-चलते (बीच में) छाया आये लेकिन उस छाया को छोड़ता जाता है। छाया में अटकता नहीं। जिस स्थान पर जाना है उसका ध्येय चूकता नहीं। आहा...हा...!

ऐसे धर्मी साधक जीव आत्मा के पूर्णानंद के ध्येय में बाह्य कारण जो भी आयें उन्हें छोड़ता जाता है, परंतु अंदर में शुद्धि (की) वृद्धि (के) प्रयत्न में गतिशील रहता है। आहा...हा...!

`बहिन' की भाषा सादी है परंतु अंतर की है। अनुभव के लिये

विद्वता की जरूरत नहीं है कि, जैसे कोई बहुत विद्वान हो तो ही अनुभव कर सके। अंदर का अनुभव विद्वता की अपेक्षा नहीं रखता। अंतर की दृष्टि और रुचि चाहिये। आहा...हा...!

अंतर भगवान सत्‌चिदानंद प्रभु ! एक समय की पर्याय - वर्तमान अवस्था इसके पाताल में अर्थात् अंदर में, इसके पाताल में जाने पर, इसका तल हाथ लगने से, (धर्मी की) दृष्टि वहाँ कायम रहती है। आहा...हा...! अतः बीच में शुभभाव आते हैं; यहाँ तो वही बात की है, वरना अशुभ(भाव) भी बीच में आते हैं। जब तक वीतराग न हो तब तक बीच में शुभभाव भी आते हैं लेकिन वहाँ अटकता नहीं। मुझे जहाँ जाना है सो यह नहीं। आहा...हा...!

ज्ञानानंद सहजानंद प्रभु ! जिसके ध्येयमें से ध्रुव खिसकता नहीं है। जिसके ध्येयमें से ध्रुव - नित्यानंद प्रभु हटता ही नहीं। वह चाहे जैसे प्रसंग आ पड़े उन प्रसंगों को छोड़ता जाता है और ध्येय हासिल करने के लिये जो कि उसके लक्ष में है, उस तरफ गतिशील रहता है। आहा...हा...! ऐसी बात है।!

`**जहाँ जाना है वहीं का लक्ष रहता है।**' इतने से शब्दों में तो बहुत भर दिया है !!

सच्ची उत्कंठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता। जितना कारण दे उतना कार्य होता ही है। अंदर वेदन सहित भावना हो तो मार्ग ढूँढ़े ।।४१।।

४१ (बोल)। `**सच्ची उत्कंठा हो...**' आहा...हा...! चैतन्य को ग्रहण करने की, समझने की अनुभव करने की सच्ची उत्कंठा हो... आहा...हा...! `**तो मार्ग मिलता ही है**' मिले ही मिले, तो `**मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता।**' आहा...हा...!

समुद्र में एक नाव थी। उसमें एक कुटुंब बैठा था। उसमें एक छोटा आठ-दस साल का लड़का (था)। उसने यूँ नाव के बाहर पग रखा था। ऐसे में एक मगरमच्छ आया, (उसने) पैर पकड़ लिया ! अब नाव के नाविक ने कहा - भाई ! अब आप उस बच्चे को छोड़ दो ! वरना यह मगरमच्छ ऐसा है कि अगर (उसने) खींचा तो पूरी नाव डूब जायेगी !! उस (समय) भाई ! उसके माँ और बाप...! आहा...हा...! उसवक्त लड़का रो रहा था, रोता (था)...! (उसे) उठाकर समुद्र में डालना पड़ा !! उसका पैर पकड़ा था वह बड़ा मगरमच्छ था। इसलिए बच्चे को अगर छोड़े नहीं और मगर यूँ (पैर) खींचे तो पूरी नाव पलटा खा जाये ऐसा था ! आहा...हा...!

वैसे आत्मा के स्वभाव में जाते हुए राग बीच में आता है परंतु राग में खींच नहीं जाता। वह अंदर में ही रहता है। राग (में) खींच जाये तो मगरमच्छ के (मुँह में) जाकर मर जायेगा वह तो ! आहा...हा...! राग और पुण्य-पाप के भाव बीच में आते हैं परंतु अगर उनमें खींच गया - पकड़ में आ गया (तो) मर जायेगा ! चार गति में भटकेगा वह तो ! आहा...हा...! सूक्ष्म बात है प्रभु ! आत्मा की बात तो बहुत सूक्ष्म प्रभु ! ये तो `बहिन' के सरल वचन हैं इसलिये कहे जाते हैं। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं) `**सच्ची उत्कंठा हो तो मार्ग मिलता ही है, मार्ग न मिले ऐसा नहीं बनता।**' क्यों ? `**जितना कारण दे उतना**

कार्य होता ही है।' जितना अंतर में कारण देवे...! आहा...हा...! (अर्थात्) शुद्ध चिदानंद मूर्ति में जितना कारण - पुरुषार्थ देवे उतना कार्य हुए बिना रहे ही नहीं। आहा...! राग का कारण देवे तो दुःख हुए बिना रहे नहीं। स्वभाव का कारण दे तो आनंद हुए बिना रहे नहीं। आहा...हा...! ऐसा प्रकार है, बापू ! लोगों ने बाहर में धर्म की कल्पना कर ली, ये क्रियाकाण्ड में धमाधम चली और उसमें मान बैठे धर्म ! धर्म कोई दूसरी चीज़ है जो रह गई।

वही यहाँ कहते हैं `**अंदर वेदन सहित भावना हो...**' आहा...हा...! अंतर भगवान आनंद का वेदन हो, जिसको राग से छूटकर अरागी ऐसे चैतन्य के आनंद का वेदन हो, आहा...हा...! इसका ज्ञान तो करे कि वस्तु ऐसी है। वह `**अंदर वेदन सहित भावना हो तो मार्ग ढूँढ़े।**' (खोज़कर) ही रहे ! अंदर में मार्ग खोज़ेगा। अंदर में राग का वेदन आये (उसे) छोड़कर अंतर (ज्ञान) वेदन में जाये, उसे यह मार्ग मिले बिना नहीं रहता। आहा...हा...!

पुण्य और पाप के दो भाव बीच में आते हैं परंतु इनके वेदन में न रहकर, अंतर सुख के वेदन में जाने से उसे अपना मार्ग मिले बिना नहीं रहता। आहा...हा...! भाषा बिलकुल सादी है ! मूल में तो साधक की भाषा की बात है। अनुभव की भाषा है।

`अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे।' एक बार कहा था। छोटी दस-बारह साल की उम्र थी। यह तो ८० साल पहले की बात है। हमारे एक पड़ोसी थे। हमारी माँ के मायके के कोई रिश्तेदार (थे)। (उनके) गाँव के (थे) इसलिये `मामा' कहते थे। (एक बार पूछा) `आप नहाते वक्त क्या बोलते हो ?' वे ऐसा बोलते थे कि `अनुभवीने एटलुं रे आनंदमां रहेवुं रे..., भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' अनुभवी को बस सिर्फ आनंद में रहना।

वे समझते कुछ नहीं थे हं...! परंतु नहाकर कपड़ा पहनते समय ऐसा बोलते रहते। मैंने पूछा कि `आप बोल क्या रहे हैं यह ?' उसने कहा `मुझे कुछ पता नहीं !'

यहाँ कहते हैं कि, जिसको आत्मज्ञान की लगी है, जिसको स्वभाव की रुचि जमी है, उसे तो बस लगी सो लगी, अब छोड़ने से (छूटेगी नहीं)। कोई उसे छुड़ाने के लिये समर्थ है नहीं ! आहा...! चाहे कैसे भी प्रतिकूल प्रसंग आये परंतु आनंद की लगी है वह छूटेगी नहीं और आनंद को वृद्धिगत् करके आगे चला जायेगा। परंतु अंदर में उत्कंठा होनी चाहिये, बापू ! आहा...हा...! जैसे इस धूल (पैसे) की उत्कंठा लगी रहती है...! धूल... धूल...! आपकी ! ये पैसे...!

शरीर में कील लगे या तार की खूँटी लगे, ज़ंग... ज़ंगवाली, तब कोई ऐसा कहते हैं कि, `मारी माटी पाकणी छे तो पाणी अडवा देशो नहीं।' (मतलब घाव होते ही उसमें पीब भर जाना) कहते हैं न ? `मारी माटी (मिट्टी) पाकणी छे, पाणी अडवा देशो नहीं' (पानी को दूर रखना) उस वक्त तो कहेगा कि यह (शरीर) मिट्टी है, लेकिन फिर भी मानेगा कि शरीर मेरा है !! `मारी माटी पाकणी छे,' कील लगी है, जिसे ज़ंग लगा हुआ है इसलिये पानी को दूर रखना पानी से भीगेगा तो पक जायेगा। वैसे बोलने में तो `मारी माटी पाकणी छे' ऐसे बोलेगा, परंतु दूसरी ओर से देखे तो कहेगा, मिट्टी-शरीर है सो मैं हूँ ! अंदर में आत्मा भी कोई चीज़ है यह भूल जाता है ! आहा...हा...!

यह तो धूल-मिट्टी है। इसकी तो स्मशान में राख होनेवाली है। अग्नि निकलेगी इधर से ! आहा...हा...! इसी भव में...! इसी भव में कि नहीं ? अग्नि निकलेगी, बापू ! जलेगा यह ! आहा...हा...!

अंदर चैतन्य भगवान है इसकी जिसे लगन लगी नहीं, वह मरण के समय वहाँ मर जायेगा। शरीर में अपनत्व मानकर !! उसे आत्मा की उत्कंठा लगी नहीं है। यहाँ कहते हैं कि, जिसको आत्मा की उत्कंठा लगी है, वह मरण के समय भी उस पर ध्यान नहीं देता। आहा...हा...!

राजकोट में एक म्यूनिसपिलिटि का बड़ा आदमी था। वह किसी की बारात में गया था (वहाँ) कोई मिठाई खायी थी। जिससे पूरे शरीर में कफ हो गया ! फिर यूँ साँस उठी और दुःख की कोई सीमा नहीं !! आहा...हा...! (फिर कहा) `महाराज को बुलाईये !' (खुद) श्वेतांबर थे। परंतु उन सबको तो मेरे पर प्रेम था। श्वेतांबर थे फिर भी कहा, `महाराज को बुलाईये ! मांगलिक सुनना है !' मैं जैसे ही पहुँचा कि, इसकी बहु उसके सर के पास बैठी थी, सब पूछ रही थी कि, इसका क्या ? इसका क्या ? मैंने कहा - अरे...! सोचो तो सही यह मृत्युशय्या पर पड़ा है, देह छूटने की तैयारी है, रो रहा है वह, फिर भी पीछे से क्या करना ? ऐसा करना कि ऐसा, पूछ रहे हो ! यह आप क्या कर रहे हो ? खाट पर सोया था (और यह) रोग...! आँख से पीड़ा वश आँसू की धारा बहे...! म्यूनिसपिलिटि का बड़ा अफसर था। उसी वक्त रेल का बड़ा अफसर होता है न, वह आया और उसने कहा, `राव साहब का इलकाब इन्हें मिल रहा है !' एक तरफ यह मृत्यु से बिलकुल करीब ! `रावसाहब का इलकाब सरकार तरफ से इन्हें दिया जा रहा है ! मैं वहाँ बैठा था। उसकी पत्नी उसे पूछ रही थी। मैंने कहा, अरे ! यह आप क्या करते हो ? (वह तो पूछ रही थी) `हमें इन बच्चों का क्या करना ? इसका हिस्सा कैसे बाँटना ?! बेटे को क्या देना ? साला को क्या देना ? ये

क्या शुरू किया अभी !' वह मरकर कहीं चला जायेगा !!

`नियमसार' में कहा है, कुटुंबी - माँ-बाप तो ठीक, परंतु बेटा-बेटी, बहु सब - ये सब तो धूर्त की टोली मिली है तुझे। प्रभु ! `नियमसार' है। `कुंदकुंदाचार्य' का `नियमसार' शास्त्र है न ! उसमें ऐसा लिखा है कि, वह पूरी धूर्तों की टोली है ! तुझे लूटने को बैठे हैं ! तेरा क्या होगा ? इसकी चिंता किसी को नहीं। हमें सहूलियत दो, हमें ये दो... हमें ये दो...! वह आजीविका के (बहाने) पूरी धूर्तों की टोली मिली है ! आहा...हा...!

उसवक्त भी जो धर्मी-साधक होता है वह पर की तरफ न देखकर, अंदर अपने ध्येय को पकड़ता है। अखंडानंद का नाथ, सत् चिदानंद प्रभु ! उसे अंदर में पकड़कर बाहर की दरकार छोड़ दे। वही यहाँ कहते हैं कि, भावना हो तो मार्ग मिलता ही है। अंदर में मार्ग मिले बिना रहता नहीं।

यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरससे सराबोर होते हैं; और यथार्थ रुचि बिना, वह के वही शुभभाव रूखे एवं चंचलतायुक्त होते हैं।।४२।।

४२ (बोल) `**यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरस से सराबोर होते हैं;...**' थोड़ी सूक्ष्म (बात) है। यथार्थ दृष्टि जिसकी हुई हो उसको जो राग (आता है वह) वैराग्य और उपशमरस से सराबोर होता है। क्या कहते हैं ?

धर्म की जिसको दृष्टि हुई है, सम्यग्दर्शन (हुआ है), जिसने राग से भिन्न होकर आत्मा को देखा, जान, अनुभव किया है - उसका राग वैराग्य और उपशमरस से सराबोर होता है। कषाय की मंदता नहीं परंतु कषाय के अभाव से सराबोर होता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बातें हैं, बापू ! दुनिया से अलग प्रकार की हैं। दुनिया को सुनना भी कठिन लगे, वह विचार तो करे ही कब ? और अंदर की रुचि को तो कब प्रगट करे ?

वही कहते हैं। `**यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरस से...**' कषाय - क्रोध, मान, माया, (लोभ से) रहित उपशम शांत रस... आहा...हा...! उस शांतरस से उसका राग और वैराग्य सराबोर होता है। राग के समय भी शांतरस होता है और वैराग्य के समय भी अंदर शांतरस में (निमग्न) होते हैं। आहा...हा...! भाषा बहुत सादी (और) संक्षेप में है।

`सराबोर' कहने के पीछे आशय है। धर्मी को अंदर ज्ञानानंद आत्मा की रुचि हुई अब उसे राग आये तो भी शांति रहती है और वैराग्य आये तो भी शांति रहती है। वे शांतिमें से च्युत नहीं होते। अंतर शांत स्वरूप (है) उसमें वह पड़ा है। उसे बाहर की कोई परवाह नहीं। कुटुंब-कबीला, पैसे-लक्ष्मी, आबरू-कीर्ति... धूल आदि पर उसकी नज़र नहीं है। उसकी नज़र उपशमरस पर है। आहा...हा...!

स्तवन में आता है - `उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयन मां'

भजन में आता है। 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां।' आहा...हा...! प्रभु ! तेरी आँखों में उपशमरस छलकता है ! अंतर में कषायरहित उपशमभाव पड़ा है (और) शरीर में शांत... शांत... शांत... दिखता है। ऐसी वीतराग भगवान की दशा है !! जगत में जितने ऊँचे से ऊँचे परमाणु होते हैं वे भगवान के शरीर में आकर शांतरसरूप परिणमन कर रहे होते हैं !! भक्तामर (स्तोत्र में) आता है। भक्तामर में...! जगत में जितने परमाणु शांतरूप परिणमन करनेवाले हो, शांत मतलब अंदर में स्थिरता - वे शांत... शांत परमाणु (आकर बसते हैं)। शरीर में शांति दिखे ! अंतर में शांति की झलक ! (साथ ही) शरीर में शांति दिखे ! ऐसा 'उपशमरस वरसे रे प्रभु तारा नयनमां !' 'तेरी आँखों में नाथ ! उपशम झरता है !!'

वैसे धर्मी को अंदर में राग और वैराग्य के समय उपशमरस झरता है। आहा...हा...! ऐसा कैसे याद रखें ? वही कहते हैं, '**यथार्थ रुचि सहित...**' (यानी कि) जिसको आत्मा की दृष्टि हुई है उसके '**शुभभाव वैराग्य एवं उपशमरस से सराबोर होते हैं, और यथार्थ रुचि बिना...**' भगवानआत्मा ! ध्रुव का अंतर में ध्येय बिना। ध्रुव के ध्येय के ध्यान की धगश (जोश व उत्साह) के बिना, आ...हा...हा...! ध्रुव के ध्यान की धूणी धगश और धीरज से (धखाव्या = धधकाये) बिना, जितने भी रागादि होंगे उनमें वह एकाकार हो जायेगा, परंतु अंदर ध्रुव जिसकी दृष्टि के कब्ज़े में है, वह उसके शांतरस से च्युत नहीं होगा। आहा...हा...! भले ही राग आये, भले ही बाह्य वैराग्य हो - उसमें नहीं (बह जायेगा)। (क्योंकि) आखिर में वह भी एक पर्याय है, वैराग्य भी एक पर्याय है और राग भी एक पर्याय है।

एक बार भावनगर में ऐसा बनाया था। '**ध्रुवधाम ना ध्येय ना ध्याय नी धूणी धगश अने धीरज थी धखावनार धर्म नो धारक धर्मी धन्य छे।**' सब 'ध-ध्धा' है। भावनगर में एकबार बुखार आया था। उस वक्त यह बनाया था। भावनगर गये थे तब। क्या कहा ? ध्रुव के धाम का, अंदर ध्रुव का धाम - जो स्थान, उसके ध्येय के ध्यान की धूनी जोश और धीरज के साथ धधकानेवाला धर्म का धारक धर्मी धन्य है। ये चौपतियें यहाँ आये होंगे। आये हैं ? ये तो मेरे हैं। ये ऐसे शब्दों का संयोजन तो भावनगर किया था। आहा...हा...! इसके चौपतियें छप चुके हैं। यहाँ आये होंगे।

ध्रुव धाम...! आहा...हा...! नित्य ऐसा धाम, इसका ध्येय (मतलब) उसका लक्ष, (इसके) ध्यान की धधकती धूनी धगश और धीरज से लगानेवाला धर्म का धारक धर्मी धन्य है ! ये तो हज़ारों छप चुके हैं।

मुमुक्षु :- जेब में रखे तो लाभ होगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- जेब में रखने से क्या लाभ होगा ? आत्मा में रखने से लाभ होगा ! जेब तो जड़ है मिट्टी है, धूल है। आहा...हा...! धर्म के ध्येय की धूनी धगश (और) धीरज से जला। अंदर तुझे शांतरस मिलेगा। राग की धूनी लगाने पर, राग-द्वेष करने पर दुःख की ज्वाला में जल जाओगे ! आहा...हा...! बाहर में यह अग्नि नहीं दिखती परंतु राग है वह अग्नि है। पुण्य और पाप के राग है सो अग्नि है। अग्नि में अंदर शांति जलती है। आहा...हा...हा...! इसे छोड़कर एक बार प्रभु ! अंदर में धधकती धूनी लगा। अंदर आनंद का नाथ पड़ा है, आहा...हा...! उस पर जा।

(यहाँ कहते हैं) '(**यथार्थ रुचि बिना, वह के**) **वही शुभभाव रूखे एवं चंचलतायुक्त होते हैं।**' अंतर से जिसको लगन लगी है वह

शुभ भाव और अशुभ भाव में एकाकार नहीं होता। (जबकि) अज्ञानी के वैसे ही शुभभाव चंचलतायुक्त लगते हैं। धर्म की जिसको खबर नहीं उसे राग आता है परंतु वह चंचलता का राग है, चंचलता का राग है। वह शांतरस (से) सराबोर नहीं है। आहा...हा...! यह कैसी बात !

अंतर में जिसने शांतरस को पकड़ा है, उसका राग और वैराग्य शांतरस से सराबोर होता है। अज्ञानी को शुभराग और अशुभराग जलती हुई अग्नि की धूनी है। आहा...हा...! बाहर के ठाठ-बाट दिखते हो वहाँ यह सुनना भी अभी मुश्किल (पड़े)।

एक बार मैसूर गये थे। (वहाँ) साढ़े तीन करोड़ का एक मकान था। साढ़े तीन करोड़ का...! सरकार ने राजा के पास खाली करवाया। सरकार ने जब खाली (करवाया तब) राजा रोता हुआ बाहर निकल गया ! साढ़े तीन करोड़ का एक मकान ! यह तो बहुत साल (पहले की) बात है, हं ! अभी तो अरब (रुपये) देने पर भी न मिले। ऐसा मकान देखने गये थे। (मैंने कहा) देखो ! ये श्मशान में जानेवाले ऐसी साढ़े तीन करोड़ की भूमि को छोड़कर चले गये हैं। आहा...! कहीं पकड़े नहीं गये कि (कहीं) भी उसे पकड़ नहीं रखा। आहा...हा...!

वैसे राग में (जो) पकड़े गये हैं वे अग्नि की ज्वाला में जल रहे हैं ! यहाँ कहते हैं, राग से भिन्न आत्मा का ध्येय जिसने पकड़ा है वह शांतरस में सराबोर है !! आहा...हा...! है ? '**और यथार्थ रुचि बिना, वह के वही शुभभाव...**' शुभभाव भले ही हो - दया, दान, भक्ति का (शुभराग भी) अगर यथार्थ दृष्टि एवं रुचि न हो तो रूखा व चंचलतायुक्त होता है। आहा...हा...! क्या कहा ?

जिसको आत्मा की रुचि एवं दृष्टि हुई उसके शुभभाव वैराग्य

और शांतरस से सराबोर होते हैं। जिसको आत्मा की रुचि नहीं परंतु राग की रुचि है, उसे राग की रुचि में - वह राग केवल चंचलतायुक्त व रूखा होता है। भले ही शुभ हो लेकिन रूखा और चंचलतायुक्त है। शांति और निष्चंचलता उसमें बिलकुल नहीं है। आहा...! ऐसी बातें हैं। शुभराग हं ! ये क्रियाएँ ! ये सब शुभ की क्रियाएँ हैं न ! (इसकी बात करते हैं)। धर्म तो शुभ से पर है। अंदर में धर्म है। धर्म कोई बाहर से नहीं होता। (धर्मी को भी) बीच में शुभभाव आते हैं। पूर्ण (वीतरागता) न हो तब तक आये बिना नहीं रहते। परंतु (वे) रूखे लगते हैं, उनमें चिकनापन नहीं होता, उनमें रस नहीं होता, वे उनमें एकाकार नहीं होते, आहा...हा...! जबकि अज्ञानी के शुभभाव तो रूखे और चंचलतायुक्त होते हैं। आहा...हा...!

जिस प्रकार कोई बालक अपनी मातासे बिछुड़ गया हो, उससे पूछें के 'तेरा नाम क्या ?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरा गाँव कौन ?' तो कहता है 'मेरी माँ', 'तेरे माता-पिता कौन हैं ?' तो कहता है 'मेरी माँ', उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है उसे हरएक प्रसंग में 'ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव' - ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसीकी निरंतर रुचि एवं भावना रहती है।।४३।।

४३ (बोल) `**जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो,...**' माता की यूँ उँगली पकड़कर चलता हो, भीड़ में उँगली छूट गई और माता चली गई आगे और बच्चा छूट गया कहीं और। ऐसा तो पोरबंदर में अपनी आँखों से देखा था। पोरबंदर में चातुर्मास था। एक लड़की खो गई थी। वहाँ खड़ी (थी)। उसकी माँ दूर चली गई थी। पुलिस ने (उसको) पूछा था `लड़की किस घर की हो ? तू किस मोहल्ले की हो ?' तो वह बोले `मेरी माँ !' तेरा नाम क्या ? तो कहे `मेरी माँ,' तेरी सहेली कौन ? तो भी कहे `मेरी माँ !' बस ! एक ही रट `मेरी माँ...!' `मेरी माँ...!' करती थी। कुछ भी पूछे तो (एक ही जवाब) ! `तेरा नाम क्या ?' तो कहे `मेरी माँ...!' पुलिस तो पूछताछ करते हैं न ? किस मोहल्ले की हो बताओं तो वहाँ ले चले। किस गली में रहती हो ? तुम्हारी सहेली कौन है ? तुम किस ज्ञाति से हो ? कुछ भी पूछे परंतु उसका तो एक ही रटन `मेरी माँ... मेरी माँ...!'

वही कहते हैं कि `**जिस प्रकार कोई बालक अपनी माता से बिछुड़ गया हो, उससे पूछें कि `तेरा नाम क्या ?' तो कहता है `मेरी माँ'...**' एक ही धुन लगी है - मेरी माँ चली गई... मेरी माँ चली गई... कहाँ गई मेरी माँ ? माँ कहाँ गई ? आहा...! तेरा नाम क्या ? तो कहे `**मेरी माँ' `तेरे माता-पिता कौन हैं ?' तो कहता है `मेरी माँ...**' सबका एक ही जवाब देता है। आहा...हा...!

`**उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायक स्वभाव प्राप्त करना है...**' आहा...हा...! अंदर ज्ञायक आत्मा मतलब जाननेवाला रस, ज्ञानरस, ज्ञान का पूर (सैलाब) और ज्ञान के नूर का - तेज का पूर है। आहा...हा...! जैसे नदी के पानी का पूर यूँ बहता है वैसे आत्मा का ज्ञान पूर यूँ ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... बहता

है। अंदर में ज्ञान का प्रवाह ध्रुव बहता है। आहा...हा...! सूक्ष्म बातें हैं।

`**उसी प्रकार जिसे आत्मा की सच्ची रुचि से ज्ञायक स्वभाव प्राप्त करना है...**' आहा...हा...! सिर्फ कहने मात्र नहीं और दुनिया को समझाने के लिये नहीं और दुनिया मान दे इसलिये नहीं, आहा...हा...! परंतु जिसको सच्ची रुचि लगी है, (एक) `**ज्ञायकस्वभाव प्राप्त करना है...**' अंदर जाननेवाला ज्ञायक चिदानंद प्रभु ! ध्रुव नित्य प्रभु विराजमान है उसको जिसे पकड़ना व प्राप्त करना है, `**उसे हरएक प्रसंग में ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव... - ऐसी लगन बनी ही रहती है,...**' आहा...हा...! मैं तो ज्ञायकस्वभाव हूँ। राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कुटुंब नहीं, कबीला नहीं, देश नहीं, कुछ नहीं। `मैं तो ज्ञायक हूँ' ऐसी लगन रहा ही करती है। जैसे लड़की को माँ... माँ... रहता था, आहा...हा...! (वैसे इसको ज्ञायक की रट लगी ही रहती है)।

अंतर आत्मा नित्यानंद प्रभु परमेश्वर है, वह भगवत् स्वरूप है। वह अतीन्द्रिय आनंद का सागर - नायक है, आहा...हा...! इसकी जिसे रुचि हुई, उसे प्रति क्षण और पल में ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... (रहा ही करता है)। आहा...हा...! है ?

`**ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायकस्वभाव... - ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसीकी निरंतर रुचि एवं भावना रहती है।**' निरंतर (रहती है)। संयोग जो भी हो, भले ही शुभ और अशुभ भाव आयें लेकिन ज्ञायकभाव की रुचि और दृष्टि छूटती नहीं। जिसे ज्ञायक की रुचि जमी है और ज्ञायक की दृष्टि हुई है, उसका ध्येय चाहे जैसे प्रसंग में भी छूटता नहीं है। आहा...! ऐसा उसका स्वभाव है। यह धर्म...!

करना क्या हमें लेकिन ? करना ऐसा है प्रभु ! कि, यह ज्ञायकभाव अंदर भगवान है, उसे पकड़ना और उसमें रहना, रुचि करना - यह करना है। बाकी सब धूल की धूल है। आहा...हा...! (कहते हैं) `**ऐसी लगन बनी ही रहती है, उसीकी निरंतर रुचि एवं भावना रहती है।**' आहा...हा...!

ये `बहिन' के अंतर अनुभव से निकले वचन हैं। उनकी छाया में ६४ बालब्रह्मचारी बेटियाँ हैं। ६४ बेटियाँ, बालब्रह्मचारी...! उनके बीच ये थोड़ा कुछ बोले थे, जो लिख लिया था तो अभी प्रसिद्धि में आ गया। उन्हें तो प्रसिद्धि में आने की बिलकुल कामना नहीं है नाही कुछ बोलनेवाले हैं। मुरदे (जैसे) चलते हैं। अंतर आनंद के रस में उन्हें बाहर की कोई दरकार नहीं रही !! केवल आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आनंद का रस है मेरा नाथ, उसे छोड़कर उन्हें कहीं भी रस नहीं आता।

धर्मी को ज्ञायक के रस को छोड़कर अन्यत्र कहीं रस नहीं आता। भले शुभभाव आयें परंतु उसमें उन्हें रस आता नहीं। आहा...हा...! शुभभाव असंख्य प्रकार के हैं - दया, दान, भक्ति, पूजा, ऐसे असंख्य प्रकार के भाव हैं। वैसे अशुभभाव भी असंख्य प्रकार के हैं। परंतु ज्ञानी को एक ज्ञायकभाव के प्रेम के आगे असंख्य प्रकार के भाव में रुचि होती नहीं। उन्हें दृष्टि में और ध्येय में नहीं लेते। उनकी उपेक्षा करके छोड़ देते हैं ! आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म मार्ग ! (लोगों को) समय मिलता नहीं। आहा...हा...!

करना तो यह है। प्रभु ! बाकी सब थोथा हैं, एक अंक बिना के शून्य हैं। लाख शून्य करने पर भी उससे एक अंक नहीं बनता। कोरे कागज पर लाख शून्य लिखने से कोई एक अंक हो जाये? जबकि एक अंक अकेला हो तो भी उसका नंबर आता

है। वैसे आत्मा की दृष्टि और (ध्येय) बिना जो कुछ भी किया जाये, वे सब बिना एक के शून्य हैं। आहा...हा...! आत्मा की रुचि और दृष्टि करते ही एक अंक आया। और यदि उसमें स्थिर हुआ तो शून्य आया। तो दस (१०) हो गया ! (एक) के पीछे शून्य ले तो दस हो जाये। एक के पीछे शून्य लगे तो (दस हो जाये)। सिर्फ शून्य तो लाख हो तो भी एक नहीं होता। वैसे सम्यग्दर्शन (अर्थात्) आत्मा का दर्शन और आत्मा की दृष्टि हुई बाद में यदि इसमें स्थिरता आये तो जैसे एक के पीछे शून्य लगने से दस होता है वैसे स्थिरता बढ़ने पर उसमें शांति बढ़ जाती है। समझ में आया ? ऐसा है यह !

ये पैसे में कहीं धर्म होगा ? (चाहे कितने भी पैसे खर्च कर दे) परंतु (वह कोई) धर्म नहीं है। धूल में धर्म कहाँ से होता ? आहा...हा...!

प्रश्न :- थोड़ा बहुत तो होता होगा न ?

समाधान :- है न, शुभराग है। कुछ है - राग की मंदता है, शुभभाव है। इसकी ममता है वह अशुभ है और इस बारे में तो अपनी `पद्मनंदी'में से बात नहीं चली थी !

`पद्मनंदी (पंचविंशती में)' वह दृष्टांत है कि, आदमी जब चावल और खिचड़ी पकाकर खाता है, फिर जली हुई खिचड़ी जो होती है वह कौए और कुत्ते को (खाने के लिये) फेंक देते हैं। हमारे वहाँ `पालेज' में था। पीछे पत्थर रखते थे। फेंकने की चीज़ (उखडीया) उसमें डालते। `उखडीया' समझते हो ? (बरतन में) जली हुई खिचड़ी को `उखडीया' कहते हैं, उस उखडीया को पीछे पत्थर पर डालते हैं। एक कुत्ता अगर खाता हो तब दूसरा आये तो उसके साथ लड़ेगा। लेकिन एक कौआ अगर खाने आयेगा

तो वह (खाते-खाते) दूसरे कौओं को बुलायेगा। काऊँ... काऊँ... काऊँ... करके (दूसरे) दस-पंद्रह कौओं को बुलायेगा और साथ में खायेगा।

`पद्मनंदी' में आचार्य ऐसा कहते हैं, तुझे पूर्व पुण्य के कारण यदि पाँच-पचास लाख - धूल मिली हो, इसे अगर अकेला खायेगा और राग मंद करके धर्म के अनुराग में खर्च नहीं करेगा तो तू तो कौए से भी गया बीता है !! जब शुभभाव की ही व्याख्या करनी हो तब तो ऐसा ही कहेंगे न ! ऐसी व्याख्या की है, पाठ है हं ऐसा ! `पद्मनंदी' वहाँ (`सोनगढ़' में) तो पूरे ग्रंथ पर स्वाध्याय चल चुका है।

कौआ भी अकेला (जली हुई)। खिचड़ी नहीं खाता। वैसे तेरे पुण्य जो है वह जली हुई खिचड़ी है। क्या कहा ? पुण्य जो है वह तो पूर्व में तूने जो शुभभाव किया था, कि जो शुभभाव होने पर (आत्मा की) शांति जली थी और पुण्य बंधा था। शांति जली है तब ! शुभभाव है सो जली हुई खिचड़ी है ! इसका फल यह पुण्य और उस पुण्य का फल यह धूल ! (पैसा) ! केवल संसार हेतु इसका खर्च किया और धर्म के अनुराग में अगर खर्च नहीं किया तो (कौए से भी गये बीते हो तुम !) वहाँ शुभभाव करवाना हो तब तो ऐसा ही समझायेंगे कि नहीं ? और अशुभ घटाकर जिस वक्त जो भाव (कहना) हो उसे ही बतायेंगे कि नहीं ? फिर भी ऐसे शुभभाव की रुचि ज्ञानी को नहीं होती। समझ में आया ? कहते हैं कि, जब कौआ भी अकेला नहीं खाता और तुझे अगर ये पाँच-पच्चीस लाख या करोड़ - दो करोड़ की धूल मिली हो, और अगर तू अकेला उसे खायेगा तो तू तो कौआ से भी गया बीता है !! आहा...हा...! `पद्मनंदी पंचविंशती' में दान अधिकार बहुत

विस्तारपूर्वक है। पूरे का समूह स्वाध्याय हो चुका है।

कौए से भी गये बीते हो ऐसा (कहा है)। मुनि को कहाँ किसीकी परवाह है ! कि किसीको बुरा लगेगा या नहीं लगेगा ! हमने `पद्मनंदी'में से वह बात की थी कि, हम तुझे यह बात करते तो है, लेकिन अगर तुझे ठीक न लगे तो प्रभु ! क्षमा करना !! तू क्रोधित मत होना, अरुचि मत करना, प्रभु ! यह बात ही हमारी कोई अलौकिक (है) ! जन्म-मरण रहित होने की बातें हैं। तुझे सूक्ष्म लगे या न रुचे, अरुचि होवे, सुहाये नहीं और एक ही एक बात करते हो ऐसा लगे, भिन्न-भिन्न तरह से आती हो फिर भी तुझे ऐसा लगता हो, रुचती न हो तो माफ करना। आहा...हा...!

आचार्य...! मुनि...! एकावतारी - एक भव बाद मोक्ष जानेवाले ! `पद्मनंदी(आचार्य)' (अभी) स्वर्ग में गये हैं और ऐसा लगता है कि, उनकी दशा तीर्थंकर होने की लगती है। भविष्य में तीर्थंकर होंगे !! ऐसी उसमें शैली है। देखते हुए, पढ़ते हुए ऐसा लगता है। उनका जीव तीर्थंकर होगा।

`भक्तामर'का रचयिता भी तीर्थंकर होनेवाला है, ऐसा शैली पर से लगता है। `भक्तामर स्तोत्र' में ऐसी शैली है ! भविष्य में एक-दो भव करके तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे ऐसा लगता है।

इस `पद्मनंदी' में (आचार्य) स्वयं कहते हैं, प्रभु ! तुझे सूक्ष्म बात लगे, तूने जानी नहीं, सुनी नहीं इसलिये अनजानी (लगे), और तुझे अरुचि हो जाये (तो) प्रभु ! माफ करना ! बापू ! हमारे पास तो तू और तो क्या लेने आयेगा ! हलवाई की दुकान पर अफीम का मावा नहीं मिलेगा !

यह अफिम का मावा कहते हैं न ? अफ़ीम पीते हैं न ? फिर कहते हैं न ! चढ़ा... चढ़ा... चढ़ा... ऐसा कहे तब चढ़ता

है ! पता है ? अफ़ीम होता है न अफ़ीम...! ये सब तो हमारा देखा हुआ है। `गोंडल' जाते समय रास्ते में `रीबड़ा' (गाँव) आता है। वहाँ ठहरे थे। रीबड़ा में एक बाबा था वह अफ़ीम घोलता था। बाद में पी गया, पीने के बाद चढ़ा... चढ़ा... चढ़ा... ऐसा बोले तो चढ़े ! यह उतर गया ऐसा कहे तो चढ़ेगा नहीं ! वैसे (मुमुक्षु को) अगर चढ़े, चढ़ने का कहे (और) अंदर में चढ़ जाये तो यथार्थ है। ढीली बात करे तो रुचे नहीं।

धर्मी को (और) जिसको आत्मा की दृष्टि और रुचि करनी है, उसको ढीली व कमज़ोर बात बिलकुल नहीं सुहाती ! अफ़ीम पीया हो फिर भी कोई ऐसा कहे कि, यह नहीं चढ़ेगा, तो नहीं चढ़ता ! ऐसी स्थिति है।

`रीबड़ा' में चौपाल में ठहरे थे, इसके बगल में दरबार का घर था। वह अफ़ीम पीते-पीते बोलता था। हमारे ऊपर तो प्रेम था। हमें वहाँ ठहराया था। बनियें के घर नहीं थे इसलिये वहाँ ठहरे थे। अफ़ीम पीने के बाद इतना नशा चढ़ा...! चढ़ा...! ऐसा अगर कहे तो ठीक, वरना उतर जायेगा ! पीने के बावजूद भी चढ़ेगा नहीं। वैसे जिसको अंतर में आत्मा का रस नहीं है उसे चाहे जितनी बात करें फिर भी अंदर नहीं जा सकेगा। ढीला-ढाला हो जायेगा वह तो !! आहा...हा...!

बहुत देखा, बहुत सुना। ६७ वर्ष तो दीक्षा ली उसे हुए, दुकान छोड़ी उसे ६७ साल हो गये। मैं तो दुकान पर भी शास्त्र पढ़ता था। छोटी उम्र में दुकान पर बहुत से शास्त्र रखे थे। १९-२० वर्ष की उम्र में ! आचारांग, सूयगडांग.. इत्यादि पढ़े थे। व्यवसाय में भी मैं तो यही करता था ! लेकिन `समयसार' जब हाथ लगा...! आहा...हा...! अरे...! यह तो शरीर रहित (होने की)

वस्तु है !! सम्यग्दर्शन (पाने की) व शरीर रहित (होने की) यह चीज़ है !! मैंने तो कहा सेठ लोगों से, स्थानकवासी ढूँढ़िया को भी कहा - `शरीर रहित होना हो, सिद्ध होना हो तो यह वस्तु है !!' बाकी बुरा लगे तो माफ़ी चाहता हूँ, भाई ! वस्तु यह है। जिसको शरीर रहित होकर सिद्ध होना हो तो इस `समयसार' में वह तत्त्व भरा है, उसे समझो और पहिचानो तो सम्यग्दर्शन होगा और शरीर रहित हुए बिना रहेगा नहीं। आहा...हा...! यह ४३ वाँ हुआ।

रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तुकी प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिंतन, मंथन, खटका बना रहता है। जिस प्रकार किसीको `माँ' का प्रेम हो तो उसे माँकी याद, उसका खटका निरंतर बना ही रहता है, उसी प्रकार जिसे आत्माका प्रेम हो वह भले ही शुभमें उल्लासपूर्वक भाग लेता हो तथापि अंतर में खटका तो आत्माका ही रहता है। `माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुंब-परिवारके समूहमें बैठा हो, आनंद करता हो, परंतु मन तो `माँ' में ही लगा रहता है : `अरे ! मेरी माँ... मेरी माँ !'; उसी प्रकार आत्माका खटका रहना चाहिये। चाहे जिस प्रसंगमें `मेरा आत्मा... मेरा आत्मा !' यही खटका और रुचि रहना चाहिये। ऐसा खटका बना रहे तो `आत्म-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।।४४।।

४४ (बोल)। `**रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती ही नहीं।**' (अर्थात्) रुचि में पुसाता (हो), रुचना। आहा...हा...! जिसको अफ़ीम रुचता है उसे अफ़ीम में प्रेम आता है, जिसको सब्ज़ी की रुचि (हो) उसे सब्ज़ी में मज़ा आता है, जिसको अरवी के पत्ते की पकौड़ी और खीर (भाती हो) उसे उसमें मज़ा आता है और उसका रस चढ़ जाता है, तृप्त... तृप्त (हो गया जैसे) ! ऐसे ओ... (डकार) खायेगा ! आहा...हा...! उसप्रकार जिसको भीतरमें से आत्मा के आनंद का रस आये उसे अंदर में तृप्ति... तृप्ति हो जाती है। समझ में आया ? आहा...हा...!

`**रुचि में सचमुच अपने को आवश्यकता लगे तो वस्तु की प्राप्ति हुए बिना रहती नहीं। उसे चौबीसों घण्टे एक ही चिंतन,...**' (चलता है)। आहा...हा...! आत्मा... आत्मा... आत्मा... अंदर आनंद का नाथ सागर...! चौबीसों घण्टे, चाहे गृहस्थाश्रम में हो, परंतु उसका चौबीसों घण्टे एक ही चिंतन (चलता है)। ऐसा चिंतन रहा ही करता है। आहा...! उसका `**मंथन,...**' रहा ही करता है, उसीका `**खटका बना रहता है।**' (यानी कि) अंतर की दृष्टि का - रुचि का खटका तो बना ही रहता है, आहा...हा...!

(अब दृष्टांत देते हैं) `**जिस प्रकार किसीको `माँ' का प्रेम हो तो उसे माँ की याद, उसका खटका निरंतर बना ही रहता है,...**' (जैसे) मेरी माँ... मेरी माँ... मेरी माँ... (रहा करता है)। आहा...हा...! `**उसी प्रकार जिसे आत्मा का प्रेम हो वह भले ही शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो...**' क्या कहते हैं ? आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति की रुचि और दृष्टि हुई फिर भी उसे भक्ति आदि का शुभभाव आयें, उल्लास भी दिखे, फिर भी उसे रुचि में उसका भाव नहीं

होता।

एक `नंदिश्वरद्वीप' है। हमलोग जंबुद्विप में हैं। आठवाँ नंदिश्वरद्वीप है। वहाँ बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ रत्न की प्रतिमाएँ हैं। कार्तिक सुदी अष्टमी से पूर्णिमा, आषाढ़ सुदि अष्टमी से पूर्णिमा, फाल्गुन सुदि अष्टमी से पूर्णिमा - (ऐसे) तीन बार इन्द्र वहाँ जाते हैं। आठवें द्वीप में बावन जिनालय हैं। एक-एक जिनालय में १०८ रत्न की प्रतिमाएँ हैं। एकावतारी इन्द्र भी वहाँ आठ दिन की धुन लगाते हैं। वे भी नाचते हैं ! परंतु खयाल में है कि यह शुभभाव है। मेरा स्वभाव भिन्न है। ऐसे भान में मस्त है।

वही (यहाँ) कहते हैं। देखो ! `**शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हो तथापि...**' शुभ में उल्लासपूर्वक भाग लेता हुआ दिखे तो भी, उल्लास दिखे, ज्ञानी को बाहर के शुभभाव में उल्लास दिखता हो `**तथापि अंतर में खटका तो आत्मा का ही रहता है।**' फिर भी अंदर में खटका तो भगवान... भगवान... भगवान आनंद स्वरूप...! आहा...हा...! स्व स्वभाव की रुचि और खटका तो रहा ही करता है। आहा...हा...!

व्यभिचारी को - जिसके साथ व्यभिचार हो उसका खटका रहा ही करता है। चाहे कितने भी काम हो तो भी रहा ही करता है। इसप्रकार इस अव्यभिचारी आत्मा की दृष्टि जिसको हुई। उसका खटका तो अंदर रहा ही करता है। बाहर के शुभभाव में उल्लास दिखे, भक्ति में उल्लास दिखे, वंदन में दिखे, भगवान के सामने नाचते हुए नज़र आये तो भी अंदर में राग की रुचि नहीं होती। उल्लास दिखता है जरूर, परंतु अंदर में आत्मा की रुचि हटती नहीं। खटका तो आत्मा का ही लगा रहता है।

``**माँ' के प्रेमवाला भले ही कुटुंब-परिवार के समूह में बैठा**

हो, आनंद करता हो, परंतु मन तो `माँ' में ही लगा रहता है।' मेरी जनेता - माता... मेरी माँ कहाँ है ? मेरी माँ कहाँ है ? मेरी माँ कहाँ है ? जिस बच्चे को माँ का प्रेम हो उसे माँ के बिना कहीं सुहाता नहीं। वैसे जिसको आत्मा का प्रेम है उसे राग की रुचि नहीं सुहाती और आत्मा के बिना कहीं नहीं रुचता। ऐसी बातें हैं ! क्या करना इसमें ? ये बाहर में कुछ करने से होता होगा कि नहीं ?

(मंदिर बनवाये, इसमें पैसे खर्च करके ऐसा माने कि) इससे धर्म हो जायेगा, तो ऐसा तो नहीं है। हम तो पहले से कहते आये हैं। फिर भी मंदिर अपने स्वकाल में होता है, उसे करनेवाले को शुभभाव भी हो परंतु उसे शुभ में रुचि नहीं रखनी चाहिये। रुचि रखनी चाहिये आत्मा में। भाव तो आयेंगे, भाव तो होंगे, दया का भाव होगा, दान का (भाव) आयेगा, पर की दया का भाव तो (आयेगा), परंतु पर की दया कर सकता नहीं। आत्मा पर की दया कर सकता नहीं। क्योंकि आत्मा पर वस्तु का कुछ नहीं कर सकता। जबकि पर की दया का भाव आये उसे भी राग और हिंसा कहते हैं ! आत्मा की शांति इसमें जलती है। आहा...हा...हा...! फिर भी धर्मी को भाव आता है परंतु उस तरफ की रुचि नहीं होती। आहा...! इतना बड़ा फ़र्क ! (संप्रदायवाले) कहते हैं `दया है सुख की बेलडी, दया है सुख की खान, अनंत जीव मुक्ति में गये, दया के प्रमाण।' यहाँ कहते हैं, पर की दया में राग है, तेरी दया में वीतरागता है। तेरी दया माने ? राग रहित अनंत गुणों का स्वामी शुद्ध आनंदकंद ! `सिद्ध समान सदा पद मेरो' `चेतनरूप अनुप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो, ज्ञानकला उपजी

अब मोकुं, कहुं नाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधे शिव मारग, वेदे मिटे घट वास वसेरो' (अर्थात्) यह घट - हड्डियों में रहा है सो कलंक है ! आहा...हा...!

आनंद का नाथ ! अमृत का सागर ! इन हड्डियों में और चमड़े में आकर बसा है, यह भव कलंक है ! आहा...हा...! वह कलंक उसका उड़ जाता है, (ऐसा) कहते हैं।

जिसको आत्मा का रस लगा, `चेतनरूप, अनुप, अमूरत' चेतनरूप अनुप (अर्थात्) जिसकी उपमा नहीं है। `सिद्ध समान सदा पद मेरो - मेरो पद तो सिद्ध समान सदा ही है।' आहा...हा...!

`मोह महातम आतम अंग' - परंतु पर में मोहवशात्, आत्मा के अंग का अवयव राग, उसमें मैं उलझ गया, `मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग...' मैंने राग का भी संग किया, परसंग (किया)। `कियो परसंग महातम घेरो' - इस राग के घेरे में मैं घिर गया। राग के रंग में मैं घिर गया।

`ज्ञानकला उपजी अब मोकुं' - धर्मी कहते हैं, अब तो मैं राग से रहित, राग होने पर भी मेरी चीज़ तो आनंद है, `ज्ञानकला उपजी अब मोकुं, कहु नाटक आगम केरो' - `समयसार नाटक' कहुँगा। आहा...!

`तासु प्रसाद...' इसके प्रसाद से `सधे शिव मारग' शिव (मतलब) मोक्ष का मार्ग सधे और इसका घट में बसना मिट जाये। आहा...हा...!

`योगिन्द्रदेव' के दोहे में (आता) है। भव है सो कलंक है। जीव को जन्म है सो कलंक है। प्रभु ! वीतरागमूर्ति आनंद ! अररर...! उसे ये ढोर के, गधे के सड़े हुए शरीर में रहना पड़े... कलंक है ! (ऐसा) कहते हैं। आहा...!

जिसको अंदर में आत्मा की लगी है, उसे तो बस लगी सो

लगी ही है, कहते हैं। आहा...हा...! **`चाहे जिस प्रसंग में `मेरा आत्मा... मेरा आत्मा !' यही खटका और रुचि रहना चाहिए। ऐसा खटका बना रहे तो `आत्मा-माँ' मिले बिना नहीं रह सकती।'** ऐसा खटका लगा रहे तो अनुभव हुए बिना रहे नहीं और ऐसा खटका न रहे तो संसार मिले बिना रहे नहीं। विशेष कहेंगे...

स्वयं अंतर में नहीं उतर पाता, इसका कोई कारण तो होना चाहिए न ? अनंत गुणयुक्त अपार महिमावंत प्रभु है, उसकी अनुभूति न होने का कोई कारण तो होगा न ? - या तो पर का अभिमान या राग का अभिमान या स्वयं कहाँ अटका है उसकी अनभिज्ञता आदि कारणों से अंतर में नहीं उतर पाता। (परमागमसार-१६८)

वचनामृत - ४५ से ४७ — १०

अंतर का तल खोज़कर आत्मा को पहिचान। शुभ परिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके `मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर, जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है। अज्ञानी को ज़रा कुछ आ जाय, धारणा से याद रह जाय, वहाँ उसे अभिमान हो जाता है; क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे ख्याल ही नहीं है; इसलिये वह बुद्धि के विकास आदि में संतुष्ट होकर अटक जाता है। ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष होनेसे वह अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ इसमें नया क्या है ? इसलिये ज्ञानी को अभिमान नहीं होता। ।।४५।।

वचनामृत, ४५ वाँ बोल है। भाषा सादी है। परंतु अंतरस्पर्शी (है) **`अंतर का तल खोज़कर...'** अंतर का तल माने ध्रुव (स्वरूप)।

पर्याय जो है सो द्रव्य के ऊपर-ऊपर तिरती है। राग और विकल्प हैं सो तो ऊपर है (ही) परंतु अपनी पर्याय जो अवस्था है, वह भी द्रव्य से ऊपर-ऊपर तिरती है। आहा...हा...! उस पर्याय के तल में - अंतर में देख ! आहा...हा...! ऐसी बात...!

`**अंतर का तल खोज़कर...**' उस ध्रुव को देखकर `**आत्मा को पहिचान।**' यह सार है। अंतर में ध्रुव है उसे खोज़कर ध्रुव को देखकर आत्मा को पहिचान। आहा...हा...! यह क्या कहा ? पर्याय को पहचानकर या राग को पहिचानकर आत्मा को पहिचान, ऐसा न कहा। क्योंकि पर्याय तो एक समय की है। राग है सो तो विकार है। इस पर्याय के अंतर में - तल में जाँच कर। आहा...हा...! बहुत सादी भाषा लेकिन गहराई बहुत है। इसके तल को - पर्याय के तल को अंतर में खोज़कर आत्मा को पहिचान। इसके अलावा आत्मा को पहचानने की कोई रीत नहीं है। आहा...हा...! इतना कठिन लगे आदमी को !

`**शुभ परिणाम, धारणा आदि का थोड़ा पुरुषार्थ करके...**' (अर्थात्) कषाय को थोड़ा मंद (किया), कुछ शुभ परिणाम किये और शास्त्र पढ़कर कोई धारणा कर ली (वैसे) `**थोड़ा पुरुषार्थ करके `मैंने बहुत किया है'...**' ऐसा उसको लग जाता है। आहा...हा...!

अंदर में भगवान अनंत आनंद का नाथ (विराजता है)। अनंत... अनंत... शक्तियाँ और एक-एक शक्ति का अनंत-अनंत बल, ऐसी जो अंदर ध्रुव वस्तु उसे जाने बिना, शुभ परिणाम और थोड़ी जानकारी का पुरुषार्थ करके, `**मैंने बहुत किया है' ऐसा मानकर जीव आगे बढ़ने के बदले अटक जाता है।**' आहा...हा...! ऐसी मंद राग की क्रिया करके शास्त्र वांचन आदि से कुछ धारणा करके वहीं अटक जाता है। संतुष्ट हो जाता है कि, हमने कुछ किया ! आहा...!

परंतु वैसा तो अनंतबार किया है। ऐसा शुभराग और धारणा - दोनों में - (पाताल में) तल में आत्मा बसता है (उसकी पहचान नहीं की)। आहा...हा...!

(अब कहते हैं) `**अज्ञानी को ज़रा कुछ आ जाय, धारणा से याद रह जाय,...**' यह थोड़ी सूक्ष्म बात कर दी ! `**वहाँ उसे अभिमान हो जाता है;...**' आहा...हा...! बेहद (सामर्थ्य का धनी) भगवान अंदर विराजमान है। अनंत-अनंत शांति के रस का कंद प्रभु विराजमान है। इसके प्रति देखने का प्रयत्न करता नहीं, और कुछ शुभ क्रिया के परिणाम करके, शास्त्र के शब्दों (की) कुछ धारणा करके वहीं अटक जाता है और `**मैंने बहुत कर लिया**' ऐसा मानता है। आहा...हा...! यह बात सूक्ष्म आयी !

शास्त्र की धारणा की वह भी एक दूसरी चीज़ है। शुभभाव भी एक दूसरी चीज़ है। इतना करके संतोष मान ले वह आत्मा को अंदर याद कर सकता नहीं। धारणा से याद रहते ही अभिमान हो जाता है।

`**क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे खयाल ही नहीं है;...**' आहा...हा...! क्या कहा ? राग की मंदता का शुभभाव और कुछ जानकारीरूप धारणा (कर ली परंतु) इससे (भिन्न) वस्तु का अगाध स्वभाव अंदर है। अगाध गंभीर चीज़ पड़ी है, प्रभु ! आहा...हा...! जिसके तल को देखे तो अनंतता का पार नहीं पाये, ऐसे अनंत गुणों का धनी प्रभु अंदर विराजमान है। वहाँ उसकी नज़र जाती नहीं। राग की मंदता और थोड़ी धारणा करके वहीं संतुष्ट हो जाता है। आहा...हा...! जैसे `मैंने बहुत कर लिया !' हम धर्म करते हैं, ऐसे अभिमान में वहाँ अटक जाता है। `**क्योंकि वस्तु के अगाध स्वरूप का उसे खयाल ही नहीं है;...**' थोड़ी शुभ भावना करके

और थोड़ी धारणा करके, जबकि वस्तु तो अगाध है। आहा...हा...!

अंतर ज्ञान, आनंद और शांति का सागर (है)। अनंत... अनंत... अनंत... (सामर्थ्य से भरपूर स्वभाव) पर्याय के पीछे अंतर तल में विराजमान है। उस पर नज़र करने का अवकाश लेता नहीं। मूल चीज़ यह है। नौवीं ग्रैवेयक अनंत बार गया, ग्यारह अंग की जानकारी की, पंच महाव्रत के परिणाम किये, नग्न दशा धारण करके, परिषह और उपसर्ग आने पर उसे सहन किये, परंतु वह सारा परलक्षी राग है। आहा...हा...! अगाध वस्तु अंदर में है। अंदर में सागर भरा है। एक समय की पर्याय के पीछे अगाध सागर (भरा है)। अनंत ज्ञान और आनंद का सागर भरा है। आहा...!

`**इसलिये वह बुद्धि के विकास आदि में संतुष्ट होकर अटक जाता है।**' अगाध स्वभाव की जिसको कीमत नहीं है। अंदर का अगाध द्रव्य स्वभाव... आहा...हा...! बेहद स्वभाव का पिण्ड उसकी जिसे कीमत नहीं है, `**वह बुद्धि के विकास आदि में संतुष्ट होकर अटक जाता है।**' आहा...हा...! भाषा सादी है परंतु वस्तु अंदर की है। आहा...! कहाँ अटका है ? (वह बताते हैं)।

अटकने के कारण अनंत और (छूटने का) कारण एक अगाध स्वभाव को पकड़ना वह है। अगाध स्वभाव से भरा हुआ भगवान, उसे पकड़ना और उसका अनुभव करना वह (वास्तविक) चीज़ है। इसे छोड़कर ऊपर-ऊपर की चीज़ तो अनंत बार की। वह सब हदयुक्त और मर्यादायुक्त चीज़ थी। राग की मंदता और शास्त्र की धारणा तो मर्यादित थी। अमर्यादित ऐसा स्वभाव उसके (अनुभव के) संतोष में नहीं आया। उसे संतोष में (ऐसा आया) कि वह धारणा में संतुष्ट हो गया। अंतर आनंदकंद प्रभु भगवान है उसके प्रति नज़र करने का अवकाश भी जीव ने नहीं लिया। आहा...हा...!

`**ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष होने से...**' धर्मी इन्हें कहते हैं, प्रभु ! कठिन बात है, भगवान ! अभी तो बाहर में धमाधम चलती है और क्रियाकाण्ड में (धर्म) मना देते (हैं)। शास्त्र की कुछ धारणा हो जाते ही मान बैठते हैं कि हम समकिती हैं ! (परंतु) वह चीज़ ऐसी नहीं है। आहा...हा...!

`**ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष होने से...**' अज्ञानी को तो अगाध स्वभाव की खबर नहीं है। इसलिये राग की मंदता और शास्त्र की धारणा में संतुष्ट हो जाता है। आहा...हा...! `**ज्ञानी को पूर्णता का लक्ष...**' (होने से कहीं भी संतुष्ट होता नहीं)। पूर्ण स्वरूप प्रभु है। आत्मा परमात्म स्वरूप ही है !

(`समयसार' की) ३८ वीं गाथा में कहा है न ? है इसमें ३८ वीं गाथा ? `अपने परमेश्वर को भूल गया' - ऐसे शब्द हैं। अपने परमेश्वर को भूलकर सारी बातें करे। भले ही राग मंद करे - दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, गिरनार और शत्रुंजय व सम्मेदशीखर की यात्राएँ (की)। (परंतु अपने परमेश्वर को भूलकर) आहा...हा...! है न उसमें ? क्या कहा है ? (देखो) ! `**अपने परमेश्वर आत्मा को भूल गया...**' परमेश्वर नाम अपना आत्मा ! आहा...हा...!

अनंत-अनंत ऋद्धि, आनंद आदि अनंत संपदाओं का स्वामी प्रभु तो उसकी नज़र में आया नहीं, उस पर नज़र की नहीं और राग की मंदता में संतुष्ट हो गया। ज्ञान (को) पूर्णता का लक्ष है। (अतः) मेरा प्रभु पूर्ण स्वभाव से भरा है। आहा...हा...! (ऐसे) पूर्ण स्वभाव का `**लक्ष होने से वह अंश में नहीं अटकता।**' (अर्थात्) वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि होनेरूप अंश में नहीं अटकता। आहा...हा...! धारणा में तो अटकता नहीं, मंद राग में तो अटकता नहीं, परंतु सम्यग्दर्शन और ज्ञान (की) दशा (प्रगट) हो, उसमें भी अटकता नहीं है। पूर्ण

स्वरूप में उसका मंथन है। आहा...हा...! ऐसी बात सुननी कठिन लगे...! (इस चीज़ का) अभ्यास नहीं (और) बाहर का अभ्यास (है इसलिये कठिन लगता है) आहा...!

कहते हैं कि (ज्ञानी) `**अंश में नहीं अटकता। पूर्ण पर्याय प्रगट हो...**' कहते हैं कि, भले अंदर से केवलज्ञान प्रगट हो...! आहा...हा...! `**तो भी स्वभाव था सो प्रगट हुआ...**' है ? वह कोई नई चीज़ नहीं है। (क्योंकि) सर्वज्ञ स्वभाव ही है उसका। `सर्वज्ञदेव परमगुरु' है यह ! `**सर्वज्ञदेव परमगुरु** !' (अर्थात्) स्वयं ही अपना सर्वज्ञदेव परमगुरु है। आहा...हा...! उसे जिसने देखा और पूर्ण (स्वभाव का) जिसको लक्ष है वह पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ। `**इसमें नया क्या है ?**' आहा...हा...!

अनंत केवलज्ञान, अनंत केवलदर्शन, अनंत आनंद और अनंत वीर्य ऐसी अनंतता प्रगट की तो भी इसमें विशेषता क्या हुई ? उसमें तो जो चीज़ थी सो (प्रगट) हुई है। अंदर में थी सो बाहर आयी है। प्राप्त की प्राप्ति है, जिसका अस्तित्व न हो उसकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती। `कुए में पानी हो तो उबारा में आयेगा।' - वैसे अंतर में अगर पूर्ण स्वभाव मौजूद है जब तो पर्याय में पूर्णता आती है। आहा...हा...! ऐसा उपदेश है ! आफ्रिका में, नायरोबी में ऐसा उपदेश !! आप लोगों की माँग से आये हैं। आहा...! मार्ग तो बापू ! अंतर की शैली सुनने (मिलना) भी मुश्किल है। आहा...हा...!

कहते हैं कि, कदाचित् केवलज्ञान प्रगट हो (तो भी ज्ञानी को विशेषता नहीं लगती)। अंतर में केवल ज्ञानरस का पिण्ड प्रभु है, उसमें से स्वभाव की दशा में पूर्ण स्वभाव प्रगट हो तो भी विशेषता क्या है इसमें ? (उसमें) नया क्या है ? जो (अंदर में)

था सो प्रगट हुआ है। प्राप्त की प्राप्ति है। अंदर था सो बाहर आया है। आहा...हा...! ज्ञानी को पूर्णता में संतोष नहीं आता। वह पूर्णता के ध्येय को नहीं चूकता। पूर्णता के ध्येय को चूकता नहीं है और पूर्णता प्रगट हो तो भी उन्हें विशेषता लगती नहीं है। आहा...हा...! है ?

`**इसमें नया क्या है ? इसलिये ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।**' आहा...हा...! चौदह पूर्व और बारह अंग का ज्ञान हो, और मुनिपने में तीन कषाय के अभावरूप दशा प्रगट हो तो भी उसका अभिमान नहीं होता। आहा...हा...!

`स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में एक लेख है। `कार्तिकेय स्वामी !' जिस समय जो होनेवाला सो होगा ऐसी बातें आती हैं न ? क्रमबद्ध की ? उसमें एक ऐसा लेख है, `स्वामी कार्तिकेय' में ! कि, जिसको आत्मा का दर्शन होता है, वह खुद को पर्याय में पामर मानता है। क्या कहा ? अंदर (जिसको) आत्मज्ञान होता है, राग से और पर्याय से भिन्न द्रव्य की, पूर्णता की दृष्टि होती है और उस पूर्णता के स्वरूप का अनुभव होता है, तो भी वह अपनी पर्याय में पामरता मानता है। (ऐसी) गाथा है, `स्वामी कार्तिकेय' में ! `स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' पुस्तक है न ! उसमें ऐसी गाथा है। आहा...हा...! चार ज्ञान और चौदह पूर्व का ज्ञान खुले और तीन कषाय के अभाव की वीतरागता आये तो भी पर्याय अपेक्षा मैं पामर हूँ ! कहाँ केवलज्ञान ! केवलदर्शन ! केवल आनंद ! और केवल पूर्ण पुरुषार्थ !! अनंत चतुष्टय की व्यक्तता के आगे अपनी व्यक्त पर्याय की पामरता जानते हैं। अज्ञानी को थोड़ी जानकारी और शुभभाव होते ही उछलने लगता है ! कि हमने कुछ कर लिया और हम कुछ आगे बढ़े !! आहा...हा...! ऐसा (ज्ञानी-अज्ञानी के बीच) फ़र्क है ! यह बहिन

की वाणी ऐसी है !!

(यहाँ कहते हैं कि) `**इसलिये ज्ञानी को अभिमान नहीं होता।**' जो था सो प्रगट हुआ। आहा...हा...! छोटी पीपल में चौंसठ पहर तीखाश भरी है। हिन्दी में `चरपराई' (कहते हैं)। हमारे गुजराती में `तीखाश' (कहते हैं)। छोटी पीपल में चौसठ पहर चरपराई - तीखाश भरी है। कद में छोटी, रंग में काली, परंतु शक्ति में पूर्ण ! शक्ति में चरपराहट और हरे रंग से पूर्ण (है) ! उस पूर्ण चौंसठ पहर नाम पूरा रुपया - सोलह आना। ऐसी शक्ति अंदर में पड़ी है ! उसे जब घोटने पर (बाहर) आती है (तो) वहाँ प्राप्त की प्राप्ति है। मात्र घोटने से आती हो जब तो लकड़े और पत्थर को घोटने लगे, चौंसठ पहर चरपराई बाहर आनी चाहिये। (परंतु) जिसमें है नहीं तो प्रगट होगी (कैसे) ? आहा...हा...!

(वैसे ही) आत्मा में ज्ञान, दर्शन और आनंद है। वह छोटी पीपल में जैसे चौंसठ पहर मतलब पूरा का पूरा तीखा और हरा रंग है तब तो बाहर आता है। वैसे आत्मा में परमेश्वर पद पड़ा है, आहा...हा...! केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत आनंद, (अनंत वीर्य) - ऐसे चतुष्टय शक्तिरूप पड़े हैं, उनकी व्यक्तता होती है। `है' उसकी व्यक्तता होती है। प्राप्त है उसमें से प्राप्ति होती है। आहा...हा...! अब ऐसा मार्ग...!

इतनी पूर्णता प्रगट हो तो भी धर्मी को विशेषता या अद्भुतता बिलकुल नहीं लगती। आहा...हा...! `समयसार' में पीछे दो श्लोक हैं। (उसमें) आता है - `अद्भुतात्अदभुतम् !' उसकी दशा में `अद्भुतात्अदभुतम्' प्रगट हुआ तो भी उन्हें उसकी विस्मयता नहीं है। वह तो मेरा स्वभाव था, मेरा प्रभु पूर्ण था सो पर्याय में पूर्णरूप से प्रगट हुआ है। आहा...हा...! यह ४५ बोल पूरा हुआ।

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परंतु प्रतीतिमें ऐसा ही होता है कि यह कार्य करनेसे ही लाभ है, मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है।।४६।।

४६ वाँ (बोल)। `**जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये।**' आहा...हा...! क्या कहते हैं ? गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी जीवन आत्मामय कर लेना चाहिये। आत्मामय `ही' कर लेना चाहिये, (ऐसा कहा है)। इसमें राग, लक्ष्मी तो बहुत दूर रह (गये), उसका तो वह कर्ता भी नहीं है और उसकी यह चीज़ है भी नहीं। लक्ष्मी मेरी है, ऐसा माननेवाला जड़ को अपना मानता है। वह चैतन्य को - अपनेआप को नहीं मानता। आहा...हा...!

(`समयसार') निर्जरा अधिकार में आता है - मैं ऐसे राग को यदि अपना मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ ! फिर ये लक्ष्मी-जड़-धूल तो बहुत दूर रह गये ! ये मेरे हैं और मैं इनका हूँ - यह स्थूल मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! स्थूल झूठी दृष्टि है और इसके फल में उसको झूठा संसार भटकने को मिलेगा, आहा...हा...!

(इसलिये यहाँ कहते हैं) `**जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये।**' (बाहर में) चाहे कोई भी चीज़ का संयोग हो उसका लक्ष

छोड़कर व जीवन में आत्मा ही (हूँ) ज्ञायक हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्य हूँ, आनंद हूँ, पूर्ण हूँ - ऐसे जीवन को आत्मामय ही कर लेना चाहिये। आत्मामय `ही' कर लेना चाहिये (ऐसा कहा है), आहा...हा...! भले ही गृहस्थाश्रम में हो !

भरत चक्रवर्ती गृहस्थाश्रम में थे फिर भी उन्हें आत्मज्ञान और (स्वरूप) लीनता थी। दो भाई लड़ाई करते (थे) तो भी आत्मा में लीनता थी ! लड़ाई के भाव में भी खुद को कर्ता न मानकर, (मात्र) जानते थे। आहा...हा...! दो भाइयों के बीच लड़ाई !! दोनों समकिती !! दोनों ज्ञानी !! दोनों उसी भव में मोक्ष जानेवाले !! आहा...हा...! जैसे ही चक्र छोड़ा...! भरत ने जैसे ही बाहुबली पर चक्र छोड़ा...! चक्र रुक गया। चरम शरीरी जीव है (इसलिये) चक्र ने काम नहीं किया। ये भाई-भाई के बीच ऐसा राग ! इस राग को भी अंदर से भिन्न जानते हैं। `मैं वह नहीं, यह मेरा नहीं, यह तो कमज़ोरीवशात् राग आया वह दुःखदायक दशा (है) ! मेरी तो आनंद स्वरूपदशा ! यह दुःख दशा सो मेरी नहीं, मेरे में नहीं, (मैं) उसका नहीं, वह मेरे में नहीं, उसमें मैं नहीं' आहा...हा...! ऐसी दृष्टि होने पर जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये।

`भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो...'** क्या कहते हैं ? अंदर जाननेवाला उपयोग, चैतन्य को पकड़ने का उपयोग कार्य कर सकता न हो तो **`परंतु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है,...' अंतर स्वरूप में जाने पर, अंतर (स्वभाव) प्राप्त हो वही लाभ है। बाकी बाह्य चीज़ में कहीं भी लाभ है नहीं। आहा...हा...! (ऐसा) प्रतीति में जीव को आना चाहिये। क्या आया ?

`उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो...' (अर्थात्)

ज्ञान का उपयोग अंदर में अभी कुछ पकड़ नहीं सकता हो, **`परंतु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है,...'** राग से और एक समय की पर्याय से भी, ग्यारह अंग की जानकारी से भी (मार्ग भिन्न है) और शुभराग की क्रिया - ये पूजा, भक्ति सब शुभराग हैं, वह कोई धर्म नहीं है। आहा..हा...! आता है... शुभराग आता है, (और) **`भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परंतु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है,...'** (यानी कि) राग से हटकर अंतर में जाना, वहाँ आत्मा है। अन्यत्र कहीं आत्मा है नहीं।

`आहा...! बहिन के वचन हैं ये ! बहिन अनुभवमें से बोले हैं। अनुभवमें से यह रस आया है।' आहा...हा...!

(कहते हैं कि) **`प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है, मुझे यही करना है;...'** आहा...हा...! मुझे तो इस आत्मिक ज्ञान और आनंद को ही (प्रगट) करना है। ऐसी जिसको प्रतीति और ज़ोर आता है **`वह वर्तमान पात्र है।'** वह जीव वर्तमान पात्र है। उस पात्रता में वह आत्मा का लाभ ले सकेगा। ऐसी पात्रता नहीं है उसे आत्मा का लाभ मिल सकेगा नहीं। आहा...हा...!

देखो ! इसे पात्रता कही है। ऐसे जीव तो पात्र हैं ! कि जिसको आत्मा (की) इतनी लगन लगी है कि उसका उपयोग सूक्ष्मरूप से कदाचित् काम न करे परंतु प्रतीति में इतना वर्तता है कि इसमें जाना ही है और जाकर ही रहूँगा ! ऐसा जिसको प्रतीति भाव है (कि) सर्व धर्मकार्य करते समय लाभ तो मेरे आत्मा का हो, वह है।

(अतः) **`मुझे यही करना है; वह वर्तमान पात्र है।'** (यानी कि)

वह वर्तमान में समकितदर्शन पाने का पात्र है। सम्यग्दर्शन पाने का पात्र - लायक है। आहा....हा...! जो सम्यग्दर्शन 'दंसण मूलो धम्मो' - जो दर्शन चारित्र(रूप) धर्म का मूल है। यह समकित ऐसे पात्र जीव को प्राप्त हो ऐसा है। आहा...हा...! यह ४६ (बोल पूरा हुआ)।

त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है। मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनयसे है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लारमें बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है, जैसे घरमें रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्योंमें, उपाधियोंमें, जंजालमें फँसा है परंतु मनुष्यरूपसे छूटा है; वैसे ही जीव विभावके जालमें बँधा है, फँसा है परंतु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है। चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञानआनंदकी मूर्ति-ज्ञायकमूर्ति है, परंतु स्वयं अपनेको भूल गया है। विभावका जाल बिछा है उसमें फँस गया है, परंतु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है।।४७।।

४७। '**त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।**' क्या कहते हैं ? त्रिकाली द्रव्य जो भगवान द्रव्य स्वरूप (उसकी बात करते हैं)। द्रव्य माने आपका ये पैसा नहीं हं !

सोनगढ़ में स्वाध्यायमंदिर में 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' (ऐसा लिखा है न) ! 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि !' एक बार एक आदमी आया। वह ऐसे बैठा था और यह - 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' पढ़ा। (फिर) पूछा - 'महाराज ! यह 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि' (लिखा है) तो द्रव्य (मतलब) लक्ष्मी वह सम्यग्दृष्टि !' यह कहाँ से आया !?' जैन में जन्म लेनेवाले को इतनी तो खबर !! अंदर द्रव्यदृष्टि पढ़कर (उसे लगा कि) द्रव्य नाम पैसे की दृष्टि ! यहाँ सब करोड़पति आते हैं इसलिये पैसेवाले सब सम्यग्दृष्टि !? अरे...! प्रभु ! आप यह क्या कहते हो ? यहाँ आपके द्रव्य - पैसे का कहाँ काम है ?! पैसे का स्वामी बने वह तो मूढ़ और बड़ा मूर्ख है !! आहा...! समझ में आया ?

जो जड़ है, अजीव है, अरे...! राग का स्वामी हो वह मिथ्यादृष्टि है ! शुभराग का स्वामी हो वह भी मिथ्यादृष्टि है तो फिर लक्ष्मी, स्त्री, कुटुंब-परिवार की तो बात ही क्या करना ? आहा...हा...! यह तो पर चीज़ है, पर के कारण आयी है और उसके अपने कारण से टिकती और पलटती है। तेरे अधिकार में वह चीज़ है नहीं। फिर भी अपना अधिकार - स्वामीत्व उसमें माने (तो) बड़ी मूढ़ता है ! ऐसा वीतराग कहते हैं। मूढ़ जीव है वह ! मूर्ख है ! आहा...हा...! चारगति (में) भटकने के लक्षण हैं, (ऐसा) कहते हैं। 'मूढ़ जीव' आता है न ? 'समयसार' में आता है। मूढ़ जीव है वह ! आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं '**त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।**' क्या कहते हैं ? सुबह में ('समयसार' - १४ वीं गाथा में)

`अबद्धस्पृष्ट' आया था न ?! वह `अबद्धस्पृष्ट' नास्ति से बात है और `मुक्त' है वह अस्ति से बात है। वास्तव में (तो) वस्तु है वह मुक्त ही है। उसे आवरण भी नहीं है, वह बँधा हुआ नहीं है। आहा...हा...!

आत्मद्रव्य जो है, आत्मपदार्थ जो है, भगवान ने जिसको `आत्मा' कहा वह आत्मा बँधा हुआ और आवरणयुक्त नहीं है। वह कभी बँधा ही नहीं। आहा...हा...! उसकी पर्याय में राग और द्वेष से बंधन मानता है। वस्तु बँधी हुई नहीं है। त्रिकाल निरावरण परमात्मा अंदर पड़ा है। आहा...हा...! `त्रिकाल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य सो मैं हूँ। आहा...हा...! ऐसी दृष्टि हुई उसे द्रव्य कभी बँधा ही नहीं - ऐसा मालूम पड़ता है। आहा...हा...!

(अब कहते हैं) `**मुक्त है या बँधा है...**' (अर्थात्) पर्याय में मुक्त है या बँधा हुआ है, `**वह व्यवहारनय से है,...**' आहा...हा...! बंध और मुक्त की दशा व्यवहार है। निश्चय से द्रव्य बँधा हुआ या मुक्त है नहीं, वह तो मुक्तस्वरूप ही है। पर्याय में मुक्त होना और पर्याय में बंधन होना, यह तो व्यवहारनय का उपचरित वर्तमान कथन है। त्रिकाल वस्तु बंधनयुक्त है ही नहीं।

अरेरे...! ऐसी बातें अब...! सारा दिन दुनिया के धंधे में रस-कस में पड़ा हो, आहा...हा...! कपड़े की गठरियाँ की लेती-देती में रोज़ाना २००-५०० की पैदाइश होती हो...! ५००-१०००-२०००-५०००-१०००० की पैदाइश हो तो भी क्या हुआ ? दस-दस हज़ार की आमदनी एक दिन में हो ! उसमें क्या है ? (वह तो) जड़ है, धूल है।

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा को बँधा हुआ और मुक्त मानना,

यह व्यवहारनय है। यह व्यवहारनय हेय नाम छोड़ने लायक है। आहा...हा...! ऐसी बात सुनना कठिन पड़े ! करो... करो...! यह करो... वह करो... यह करो... वह करो...! प्रभु ! यहाँ कहते हैं कि तेरा `करो' तो एक तरफ रहा परंतु मुक्तदशा भी व्यवहारनय है !! राग करो यह तो कर्तृत्व - मिथ्यात्व है...! आहा...हा...! परंतु मुक्ति की पर्याय को - मुक्त पर्याय है उसे भी निश्चयनय का विषय मानना, यह मिथ्यात्व है !! (क्योंकि यह तो) व्यवहारनय का विषय है। एक समय की पर्याय, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय भी व्यवहार है। आहा...हा...! समझ में आया ?

पैसा और यह शरीर (तो) मिट्टी और धूल (है)। यह तो मिट्टी है। ये तो बहुत दूर रह गये - स्त्री, बच्चे और कुटुंब और उसका आत्मा और शरीर के रजकण तो बहुत दूर रह गये ! उसे अपना माने वह तो बड़ा मूर्ख और मूढ़ है। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं, जीव को पर्याय में मुक्त मानना वह व्यवहारनय है। क्या कहा ? पर्याय में मुक्त होगा वह निश्चय नहीं परंतु व्यवहार है। क्योंकि पर्याय है। पर्यायमात्र व्यवहार (है)। वस्तु द्रव्य है सो निश्चय (है)। `पंचाध्यायी' (शास्त्र में) दो बोल लिये हैं, द्रव्य सौ निश्चय और पर्याय सो व्यवहार। चाहे तो मुक्त पर्याय हो, चाहे तो केवलज्ञान हो, चाहे तो अनंत आनंद हो, परंतु वह पर्याय व्यवहार है। आहा...हा...! उस पर दृष्टि रखने जैसा नहीं है। आहा...हा...! दृष्टि में तो त्रिकाली ध्रुव, त्रिकाल मुक्त स्वरूप ही है। अवस्था में मुक्ति होगी वह तो व्यवहार है। मुक्त स्वरूप है सो निश्चय है। आहा...हा...!

ऐसा यहाँ नायरोबी में सुनना !! कपड़े के व्यवसाय में सब उलझ गये हो अंदर से ! (इसमें यह सुनना) !!

मुमुक्षु :- हमारा भाग्य का उदय हुआ, वरना आप कहाँ से

पधारते ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- बात सही है...! भाई ! बात सच्ची ! ये वचन बापू ! पुण्यशालियों को मिले ऐसे हैं ! ओ...हो...हो...!

मुमुक्षु :- आपका हमलोगों पर परम उपकार है !!

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह वस्तु ऐसी है !!

यहाँ कहते हैं, बँधा हुआ है वह व्यवहारनय और मुक्त है वह (भी) व्यवहारनय (है)। अरेरे...! कौन मानेगा इसको ? राग है, राग से बँधा हुआ (है) वह भी व्यवहार है और केवलज्ञान - मुक्त पर्याय होना भी व्यवहार है। पर्यायमात्र को व्यवहार कहा जाता है और एक समय की पर्याय (से) रहित त्रिकाली द्रव्य है उसे निश्चय कहने में आता है। निश्चय मतलब सच्चा और व्यवहार मतलब क्षणिक अवस्था है उसे व्यवहार कहेंगे (और) वह उपचार है। आहा...हा...! सुने तो सही ! कैसी बात है !! अरे...! मनुष्यभव मिला... चला जा रहा है। कहाँ जायेगा ? आहा...हा...!

मुमुक्षु :- उतारा कहाँ होगा पता नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- इसीलिये उतारा का निर्णय करो (ऐसा) कहते हैं। उतारा का निर्णय करो कि मैं त्रिकाल मुक्त स्वरूप हूँ। मेरा उतारा मुक्ति में जायेगा। देह तो छूटेगी, प्रभु ! देह की तो मुद्दत है। तू तो आत्मा (है)। (तेरी) मुद्दत नहीं है। तू तो अनादि-अनंत है। (तो) कहाँ जायेगा ? कहाँ रहेगा ? आज के बाद अनंतकाल रहेगा कहाँ ? जिसने राग को और पर को अपना माना वह तो नरक और निगोद में रहेगा। आहा...हा...! और जिसने राग को और मुक्ति को भी पर्यायनय का विषय जानकर, ध्रुव पर दृष्टि दी है वह अल्प काल में मोक्ष को प्राप्त करेगा।

यह श्लोक आया है न (`पद्मनंदी पंचविंशती' में) ? `तत्प्रति

प्रीतिचितेन येन वार्ता पि हि श्रुताः' - ऐसी जो यह अबंध (स्वरूप की) बात (है उसे) प्रीतिपूर्वक सुने। अबंध (माने) मुक्तस्वरूप - त्रिकाल मुक्तस्वरूप ! मुक्त होना सो तो पर्याय है। (मैं तो) मुक्त स्वरूप ही हूँ। ऐसी जो अंदर में दृष्टि होना... आहा...हा...! ऐसा भाग्यशाली को होता है, (ऐसा) कहते हैं। आहा...! और उसे अल्प काल में अनंत संसार टूटकर अनंत केवलज्ञान की प्राप्ति (होगी)। भविष्य में अनंत काल ज्ञान (में) (अर्थात्) केवलज्ञान में रहेगा। यहाँ से (देह) छूटने के बाद साधकपना रहा होगा तो साधक(पना) छूटकर साध्य - केवल(ज्ञान) होगा। और अनंत काल केवलज्ञान में रहेगा और यदि यह नहीं समझा और राग और पर को अपना मानकर जिस ने मिथ्यात्व का सेवन किया है, प्रभु ! (वह संसार में भटकेगा)। आहा...हा...!

(एक) घण्टा पूजा और भक्ति कर लिया इसलिये धर्म हो गया ऐसा माने, भगवान की पूजा एक घण्टा किया सो तो राग (है), शुभराग है, इसमें धर्म कहाँ था ? आहा...हा...! शुभभाव होगा (परंतु वह कोई) धर्म नहीं है।

प्रश्न :- तो फिर मंदिर क्यों बनाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मंदिर तो अपने कारण से बनता है। करनेवाले का तो (केवल) शुभभाव है इतना। भाव है तो (वह) शुभ है इतना। बाकी (मंदिर की रचना) तो अपने कारण से है। रजकण की पर्याय अपने कारण से हैं। उन रजकणों की पर्याय को कोई दूसरा करे ऐसा तीन काल में बनता नहीं। आहा...हा...!

प्रश्न :- पत्थर पर पत्थर अपनेआप लगते होंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- अपनेआप ही लगते हैं। एक एक परमाणु की जिस क्षेत्र में, जिस काल में जो अवस्था होनेवाली है, उस-

उस काल में अपने कारण से होगी। कोई कहे कि, मेरे कारण से यह मंदिर हो रहा है और मैं मंदिर बना सकता हूँ, इस बात में कोई दम नहीं है, बापू ! आहा...हा...! बात ऐसी है कि लाखों (दे दें) चाहे करोड़ दे दें, उसमें तो राग की मंदता करेगा तो शुभ है। परंतु ये पैसे मेरे हैं और मैंने दिये, ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है। यहाँ तो किसी को मस्का नहीं (लगाते) बापू ! आहा...! वीतराग को कहाँ किसी की परवाह है। वीतराग तो जो सत्य है उसे प्रसिद्ध करते हैं। आहा...! तेरे करोड़ तो क्या पाँच करोड़ या अरब दे दें, उसमें भी अगर राग की मंदता की होगी तो पुण्य (है)। और वहाँ भी `मैंने दिये, ये मेरे थे' ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! ऐसी बातें !

मुमुक्षु :- पैसे दें उसे भी मूढ़ कहना !?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पैसे भी दिये थे कब ? पैसा कहाँ इसका था ? पैसा जड़ का है। चैतन्य का है ? राग चैतन्य का नहीं है तो ये पैसा उसका कहाँ से हो गया ? राग मंद किया हो तो वह राग भी आत्मा का नहीं है। आत्मा तो निर्मलानंद सत् चिदानंद प्रभु है। पर्याय में राग होता है वह कलंक और दोष है।

`नियमसार' में दो ज़गह ऐसा कहा है कि, शुभभाव घोर संसार है ! ऐसा कहा है। आहा...हा...! अरे...! (ऐसा) सुनने कहाँ मिले ? शुभभाव ! यह भक्ति आदि का शुभभाव ! `नियमसार' में उसे दो ज़गह `घोर संसार' कहा है। (शुभभाव) होते हैं, परंतु है संसार ! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, इससे भिन्न अंदर भगवान (है)। बँधा हुआ या मुक्त सो तो व्यवहारनय से है। वह तो पर्याय है। मुक्ति और

बंध तो पर्याय है। आहा...हा...! समझ में आया ? क्या कहा ? भगवानआत्मा ! सेकंड के असंख्य वें भाग में एक सेकंड में पूर्ण मुक्त स्वरूप है। उसे आत्मा कहते हैं। उसे निश्चयनय (से) आत्मा कहेंगे।

`नियमसार' की ३८ वीं गाथा में ऐसा आया है कि, त्रिलोकनाथ (सीमंधर भगवान की) वाणी `कुंदकुंदाचार्यदेव' ने सुनी और अंतर अनुभव तो था, वे ऐसा कहना चाहते हैं कि, जो भी आत्मा (वस्तु है), (अर्थात्) जिसे हम `आत्मा' कहते हैं वह तो पर्याय रहित जो त्रिकाली है उसे हम `आत्मा' कहते हैं। राग रहित तो ठीक, परंतु संवर, निर्जरा और मोक्ष (की) पर्याय रहित (उसे हम `आत्मा' कहते हैं)। (बात थोड़ी) सूक्ष्म लगेगी, प्रभु ! क्या कहा ?

संवर, निर्जरा और मोक्ष ! (यानी कि) मोक्ष का मार्ग (संवर, निर्जरा) और मोक्ष तीनों नाशवान हैं। अतः तीनों व्यवहारनय का विषय है। निश्चय आत्मा संवर, निर्जरा और मोक्ष से भिन्न है। आहा...हा...! अब यहाँ तक ले जाना...! ये अंदर (आत्मा) राम तक ले जाना है। आहा...हा...!

(`नियमसार') ३८ वीं गाथा में ऐसा आया कि, नौ तत्त्व हैं सो नाशवान है। एक तत्त्व जो त्रिकाली परमात्मा वह ध्रुव है। इन नौ में संवर, निर्जरा (अर्थात्) धर्म - मोक्ष का मार्ग, मोक्ष, केवलज्ञान, अनंत आनंद उन्हें भी पर्याय में गिनकर नाशवान कहा है। आहा...हा...! अविनाशी तो अंदर त्रिकाली ध्रुव है वह अविनाशी है। आहा...! उसकी दृष्टि करने जैसी है, बापू ! आहा...हा...!

वहाँ (सोनगढ़ में) तो सब ग्रंथों पर स्वाध्याय हो चुका है न ! ४५ सालों में वहाँ बहुत-से शास्त्रों पर स्वाध्याय हो चुका है। आहा...हा...!

`नियमसार' है यहाँ, उसमें है। दो ज़गह (शुभराग को) `घोर संसार' (कहा है)। और `नियमसार' की शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं गाथा - पहली गाथा में तो जिसको आत्मा का ज्ञान, दर्शन और चारित्र प्रगट हुए हैं व मोक्ष दशा हुई है - कहते हैं कि, यह मोक्षदशा और संवर, निर्जरा (अर्थात्) धर्म और धर्म का फल मोक्ष - ये सब नाशवान हैं, क्योंकि वे पर्याय हैं। सूक्ष्म बात है, बापू ! आहा...हा...! प्रभु ! तेरी बात सूक्ष्म है बहुत, प्रभु ! आहा...हा...! बाहर में सब उसका चलता है और उसमें लोग राज़ी-राज़ी होकर रहते (हैं), सब मिश्रण करते हैं !

यहाँ तो तीन लोक का नाथ, इन्द्र और गणधरों की सभा में दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते थे, वही (बात) `कुंदकुंदाचार्य' कहते हैं कि, संवर, निर्जरा और मोक्ष - सम्यग्दर्शन, ज्ञान (और) चारित्र जो सम्यक् - सच्चा है और उसका फल मोक्ष - दोनों ही नाशवान हैं, क्योंकि वे पर्याय हैं। आस्त्रव, बंध की तो क्या बात करना ? आहा...हा...! पुण्य और पाप के भाव जो भी करे उसमें कोई कल्याण (नहीं है)। भक्ति - पूजा कर लिये, वहाँ हो गया धर्म ! (ऐसा मानते हैं)। (जबकि) वे तो शुभभाव हैं, वह (भी) रखा हो तो ! धर्म तो था ही कहाँ उसमें ? आहा...हा...! एक घण्टे थोड़ी पूजा, भक्ति कर लिये कि (मानता है) हो गया धर्म ! अब कीजिये २३ घण्टे पाप !! आहा...हा...!

त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि ऐसी है कि, `निश्चय आत्मा' उसे कहते हैं कि, संवर, निर्जरा और मोक्ष का भी जिसमें अभाव है ! त्रिकाल चीज़ है उसे हम निश्चय आत्मा कहते हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष को हम व्यवहार आत्मा कहते हैं। आहा...हा...! यहाँ वही कहा न, देखो न ! `**मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनय**

से है, वह पर्याय है।' आहा...हा...! समझ में आया ?

`समझ में आया ?' यह विश्राम लेने का वाक्य है। एक छः-सात साल का छोटा बच्चा उसकी माँ से पूछता था कि, `समझ में आया ?' कहते हैं, वे `महाराज' कहाँ है ?!' `समझ में आया ?' ऐसा एक महाराज कहते हैं, वे `महाराज' कहाँ है ? पाँच-छः साल का लड़का था। आहा...हा...! प्रभु ! यह तो कोई अलौकिक शांति का मार्ग है !!

यहाँ तो कहते हैं, संवर, निर्जरा और मोक्ष, - आस्त्रव-पुण्य और पाप की तो बात ही क्या करना ? वह तो दुःख और ज़हर है - परंतु संवर, निर्जरा अमृत है और मोक्ष है वह अमृत की पूर्ण दशा है, फिर भी ये तीनों नाशवान हैं, क्योंकि वे पर्यायें हैं। पर्याय की मुद्दत एक समय की है। भले ही केवलज्ञान हो परंतु वह केवलज्ञान एक समय रहता है। दूसरे समय वह केवलज्ञान नहीं रहता। दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान होगा, तीसरे समय तीसरा केवलज्ञान होगा। केवलज्ञान दूसरे समय में नहीं रहता। अररर...! ऐसी बातें अब ! केवलज्ञान नाशवान है ! अररर...! एक समय की मुद्दत है इसलिये (नाशवान कहा)। पर्याय की (मुद्दत) एक समय की ही होती है। एक सेकण्ड का असंख्यवाँ भाग ऐसा एक समय। (वह) केवलज्ञान एक समय रहता है। दूसरे समय में दूसरा होगा। वह का वह नहीं रहेगा। वैसा ही, लेकिन वह नहीं। वैसा ही (रहेगा परंतु) वह का वह नहीं। इस अपेक्षा से (केवलज्ञान) पर्याय को नाशवान कही है। आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं (कि), वह पर्याय है इसलिये हम उसे व्यवहारनय कहते हैं। आहा...हा...! ये `बहिन' के शब्द हैं, वहाँ `नियमसार' (में) भगवान के शब्द हैं। निश्चय आत्मा हम उसे कहते

हैं, वास्तव में आत्मा उसे कहते हैं कि जो पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष से भिन्न है। क्योंकि एक समय की पर्याय से वह त्रिकाली द्रव्य भिन्न है। वह भिन्न है उसे हम निश्चय आत्मा कहते हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी हम व्यवहार आत्मा कहते हैं। वह व्यवहारनय का विषय है, (वह) भेदरूप है। (जबकि) त्रिकाली द्रव्य अभेदरूप (है) और निश्चयनय का विषय है। आहा...हा...!

प्रश्न :- 'गुरुदेव' ! सवेरे अनुभूति को आत्मा कहते हो और अभी अनुभूति को आत्मा नहीं कहते ?!

समाधान :- वहाँ अनुभूति को आत्मा कहा, वहाँ राग (आत्मा) नहीं है इसलिये (अनुभूति को) आत्मा कहा जबकि यहाँ संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी नाशवान (कहा)। एक समय की पर्याय है इसलिये नाशवान कहते हैं। अनुभूति भी एक समय की दशा है।

प्रश्न :- सुबह आत्मा और अभी अनात्मा हो गया !

समाधान :- वहाँ आत्मा किस प्रकार कहा ? (कि) राग आत्मा नहीं है इसलिये उस निर्मल अनुभव को आत्मा कहा। परंतु यहाँ तो अब त्रिकाली ध्रुव की अपेक्षा से (निर्मल अनुभव को नाशवान कहा)। वहाँ राग की अपेक्षा अनुभूति को आत्मा कहा था। दया, दान और भक्ति आदि राग के जो परिणाम हैं, वह बंधन का कारण है। उसकी अपेक्षा अनुभूति है वह आत्मा है, ऐसा कहा था। अभी यहाँ कहते हैं, वह अनुभूति तो क्या ? मोक्ष भी एक समय की पर्याय है ! आहा...हा...! सिद्धत्व भी एक समय की पर्याय (है) दूसरे समय में दूसरा, तीसरे समय में तीसरा (सिद्धत्व है)। ऐसी बात है। सुनने मिलना मुश्किल पड़े ऐसी है !!

मुमुक्षु :- उत्तम और मंगल (बात) है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- भाग्यवान को सुनने मिले ऐसी बातें हैं !!

आहा...हा...! वह आता है न ? 'भवि भागन जोग !' स्तुति में आता है। 'भवि भागन जोग' वीतराग की वाणी निकलती है ! भव्य (जीव के) भाग्यवश वीतरागी की वाणी आती है !! 'भवि भागन जोग' ऐसा आता है। हिन्दी स्तुति में ऐसा आता है। 'भवि भागन जोग' वीतरागी की वाणी निकलती है। उन्हें कुछ बोलना नहीं है, वे तो ज्ञानरूप हैं। वे तो वाणी के कर्ता भी नहीं हैं। भव्य प्राणी (को) योग है, प्राणी की पात्रता है - उसके लिये वीतराग की वाणी का ध्वनि आता है।

'ॐ कार धुनि सुनी, अर्थ गणधर विचारे' - भगवान को ॐ ध्वनि आती है ! उन्हें ऐसी (शब्दात्मक) वाणी नहीं होती। ऐसी वाणी भगवान को नहीं होती। जो राग सहित हो उसे ऐसी खंडयुक्त वाणी होती है। वीतराग को ऐसी खंडयुक्त वाणी नहीं होती। उन्हें पूरे शरीरमें से अखण्ड ॐ-ध्वनि छूटती हो। 'ॐकार धुनि सुनी, अर्थ गणधर विचारे' आहा...! 'रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' (गणधरदेव दिव्यध्वनि के) आगम रचते हैं, भव्य प्राणी होते हैं वे मिथ्यात्व को टालकर आत्मा का अनुभव करते हैं। आहा...! परंतु उन आगम वचनों को सुनकर ! दूसरे की वाणी को सुनकर नहीं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की वाणी सुनकर जिसने मिथ्यात्व को टाला वह मुक्ति को पाने के लायक हैं। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई !

यहाँ क्या कहा ? '**मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...**' मकड़ी का दृष्टांत दिया। 'मकड़ी' कहते हैं न आपकी (हिन्दी में) ? एक बार कहा था। दो पैरवाले को मनुष्य कहा। आदमी जब स्त्री से शादी करता है तब चार पैरवाला

मतलब पशु होता है और उसको जब बच्चा होता है तब दो पैर बढ़ने से छः पैरवाला भँवरा हुआ। भँवरा भूँ...भूँ किया करे - मेरा बच्चा है और मेरा बच्चा ऐसा, उसे ऐसे खुश रखना और ऐसे करना ! और लड़का जब शादी करके बहु लाता है तब आठ पैरवाली मकड़ी बनता है। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। (ऐसा) सुना भी नहीं होगा ! मकड़ी नहीं होती है मकड़ी ! उसको आठ पैर होते हैं। भँवरे को छः पैर होते हैं।

वही यहाँ कहते हैं, `**जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...**' क्योंकि खुद लार में बँधी हुई है। उलटे पुरुषार्थ से लार में बँधी है। सुलटा पुरुषार्थ करके बंधन छोड़ सकती है। है ? (पहले) मकड़ी का दृष्टांत दिया। (अब कहते हैं) `**जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में,...**' आहा...हा...! है ? `**जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य...**' (ऐसा कहकर) यहाँ दूसरा कहना है कि, मनुष्य चाहे जैसे काम करे परंतु वह मनुष्य, मनुष्य मिटकर उस वक्त कोई नारकी हो जाता है ? मनुष्य तो मनुष्य है। मनुष्य चाहे कितने भी बाहर के कार्य करे लेकिन वह मनुष्य मिटकर उस वक्त पशु हो जाता है ? फिर उसके फल में भले ही पशु गति में जाये।

कषाय की तीव्रता का सेवन करे, मांस-दारू न खाता हो (तो पशु में जाता है)। माया-लोभ (वह) राग, क्रोध-मान (वह) द्वेष - उसका सेवन करे तो आत्मा से टेढ़ा चला। टेढ़ा मतलब यह मनुष्य में शरीर सीधा है (जबकि) पशु में गाय, भेंस, गिलहरी... क्या कहते हैं ? गिलहरी नहीं होती ? उनका शरीर यूँ तिरछा होता है। उनके शरीर यूँ तिरछे होते हैं। क्योंकि पूर्व में बहुत तिरछाई की है। कषाय का सेवन बहुत किया है। मांस खाया नहीं। मांस खाये

तो नरक में जाये। क्रोध, मान और माया का सेवन किया है, इसलिये तिरछे शरीर - वक्र शरीर पाते हैं, यूँ बाँका...! मनुष्य ऐसे सीधे हैं। वे ऐसे तिरछे हैं। इसलिये उन्हें तिर्यंच कहते हैं। `गोम्मटसार' (में आता है)। तिर्यंच नाम तिरछा। टेढ़ा हुआ क्योंकि वक्रता बहुत की थी, इसलिये तिरछे हो गये। आहा...हा...!

पंचेन्द्रिय तिर्यंच की संख्या बहुत है। बहुत-से जीव तो वहाँ उत्पन्न होंगे, क्योंकि धर्म नहीं है, आत्मा का ज्ञान नहीं है, और ऐसा कोई दो-चार-छः घण्टे (का) सच्चा सत्समागम या शास्त्रवांचन नहीं हो, उसके तो पुण्य भी नहीं है ! एक घण्टा (पढ़) लें, एक घण्टा भक्ति-पूजा कर ले इससे क्या हो...? वह तो ऐसा हुआ कि, `निहाई की चोरी और सूई का दान !' (बड़े पाप के अनुपात में प्रायश्चित के तौर पर किया जानेवाला अल्प दान।) सुनार के वहाँ निहाई नहीं होती ? निहाई बड़ी लोहे की ! वह तो `निहाई की चोरी और सुई का दान' (इसके जैसा है)। वैसे तेईस घण्टे पाप करे और एक घण्टा पुण्य-शुभ भाव किये होंगे तो वे तो अंदर स्वाहा हो जायेंगे ! इसमें तेरे पुण्य का ज़ोर नहीं चलेगा।

इसलिये यहाँ कहते हैं कि, `**जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जंजाल में फँसा है परंतु मनुष्यरूप से छूटा है;...**' मनुष्य मिटकर वह कोई पशु नहीं हो गया ! वैसे आत्मा चाहे जैसे कार्य में जुड़े फिर भी आत्मा तो आत्मा ही रहा है। उसे प्राप्त कर सके ऐसी उसमें ताकत है। विशेष कहेंगे...

वचनामृत - ४७ से ५० ११

(वचनामृत) ४७ बोल फिर से (लेते हैं)। **`त्रैकालिक ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं है।**' क्या कहते हैं ? प्रभु ! यह आत्मा जो अंदर वस्तु है वस्तु। वस्तु उसे कहें कि जिसमें अनंत-अनंत गुण बसे हुए हैं, मौजूद हैं। ऐसा भगवान आत्मा सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव ने कहा है, देखा है - वह जीव ध्रुव (है), त्रिकाली ध्रुव है। वह ध्रुव द्रव्य कभी बँधा नहीं। कठिन बात है प्रभु ! पर्याय में बंधन और पर्याय में मुक्ति दिखती है। पर्याय माने क्या ? अवस्था। वस्तु माने क्या ? त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व, यह त्रिकाल रहा तत्त्व कभी बँधा नहीं। आहा...हा...! है ?

`मुक्त है या बँधा है वह व्यवहारनय से है,...' सूक्ष्म बात है, प्रभु ! अनंतकाल से सत्य सुना नहीं। इस देह में भगवान विराजमान है। चैतन्य द्रव्य के रूप में वस्तु है वस्तु। यह वस्तु है द्रव्यरूप, तत्त्वरूप, वह स्वयं बँधा हुआ भी नहीं और मुक्त भी नहीं। वस्तु तो अंदर बंध और मुक्त की पर्याय से रहित है। आहा...! ऐसी बात !

प्रभु ! तेरी महानता का पार नहीं। तू अंदर में एक समय की अवस्था को देखे बिना त्रिकाली को देख तो वह त्रिकाली चीज़ तो बंधनयुक्त या मुक्त है ही नहीं। बंधन और मुक्ति, यह

तो एक समय की पर्याय में वर्तमान व्यवहारनय का उपचरित विषय है। आहा...! ऐसी बात है, प्रभु ! यह तत्त्व अंदर में (मौजूद है), अनंतकाल में एक सेकंड मात्र भी यह तत्त्व क्या है ? उस पर लक्ष और ध्यान गया नहीं। बाह्य प्रवृत्ति में अटककर स्वयं क्या चीज़ है ? इसकी जीव ने सँभाल नहीं की। वह यहाँ कहते हैं।

ये बहिन के वचन हैं। बहिन को नौ भवों का ज्ञान है। असंख्य अरब वर्षों का पूर्वभव का जातिस्मरण (ज्ञान) है। सूक्ष्म बात है, बापू ! भगवान सीमंधर परमात्मा विराजते हैं। वहाँ थे, वहीं से आये हैं और अंदर में अनुभवपूर्वक राग से भिन्न होकर चैतन्य घन, नारियल में गोला जैसे छूटा पड़ जाता है, वैसे सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली दशा आने पर राग से व शरीर से भगवान - (चैतन्य) गोला भिन्न दिखता है ! आहा...हा...! कठिन बात है, प्रभु !

तेरी प्रभुता से भरा हुआ जो तत्त्व है, वस्तु जिसको कहते हैं, अब बंधन और मुक्ति तो पर्याय में - अवस्था में है। वस्तु त्रिकाल निरावरण है। आहा...हा...! यह बात कैसे बैठे ? बाह्य प्रवृत्ति में गले तक डूब गया (है)। इसमें यह तत्त्व अंदर (कैसे बैठे) ?

बँधा हुआ या मुक्त सो तो व्यवहारनय से है, वह तो पर्याय है। वह तो द्रव्य की वर्तमान दशा है। परंतु त्रिकाली चीज़ है वह तो त्रिकाल निरावरण अखंडानंद प्रभु (है)। जिनेश्वरदेव ने सर्वज्ञ स्वभाव में (ऐसा) देखा है। कल कहा था `प्रभु तुम जाणग रीति...' प्रभु ! महाविदेह में सीमंधर परमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा विराजमान हैं। जिनकी लोग सामायिक और प्रतिक्रमण के समय आज्ञा लेते हैं। सो तो ठीक, लेकिन परमात्मा विराजते हैं। उनके श्रीमुख से निकली यह दिव्यध्वनि है। वह बहिन को अंदरमें से प्रगट हुई है। जो किसी समय बोलने में आ गया।

(`बहिन') ऐसा कहते हैं कि, आत्मा जो है, त्रिकाली द्रव्य जो पदार्थ है, उसमें बंधन और मुक्ति तो पर्याय में हैं, अवस्था में हैं, वस्तु में नहीं। यह क्या होगा ? वस्तु में नहीं और पर्याय में है ! कभी सुना न हो ! है ?

`**जैसे मकड़ी अपनी लार में बँधी है वह छूटना चाहे तो छूट सकती है,...**' मकड़ी...! `**जैसे घर में रहनेवाला मनुष्य अनेक कार्यों में, उपाधियों में, जंजाल में, फँसा है परंतु मनुष्यरूप से छूटा है;...**' मनुष्य के रूप में वह कोई (मिट नहीं गया)। पर की व्यवस्था के समय मनुष्य मिटकर पर के व्यवसाय में कोई घुस नहीं जाता ! मनुष्य तो मनुष्यरूप ही सदा रहता है। ये सारी व्यापार-धंधा आदि की चाहे जिस प्रकार की अवस्था में हो परंतु वहाँ कोई मनुष्यत्व छूटकर पशु या दूसरी कोई दशा नहीं हो गई। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! मनुष्य तो मनुष्य ही है।

`**वैसे ही जीव विभाव के जाल में बँधा है,...**' आहा...हा...! भगवानआत्मा ! यहाँ तो आत्मा को `भगवान' कहकर संबोधन करते हैं !! त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव और संत आत्मा को `भगवान' कहकर बुलाते हैं ! (`समयसार') ७२ गाथा में है - भगवानआत्मा ! आहा...हा...! कैसे बैठे दिमाग में ? एक बीड़ी ठीक से पीये उसमें मज़ा आये, ऐसे में पाँच-पच्चीस लाख मान लो मिल गये, दो-पाँच करोड़ मिल जाये उसमें मज़ा आने लगे, अब ऐसे जीव को आत्मा अंदर में पर से भिन्न है, (यह) कैसे बैठे ? आहा...हा...! वह जंजाल में फँस नहीं गया।

`**जीव विभाव के जाल में बँधा है, फँसा है परंतु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है...**' आहा...हा...! नारियल में जैसे गोला छूटा है वैसे यह राग और शरीर के बीच अंदर प्रभु भिन्न (विराजमान

है)। सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की प्रथम दशा आने पर, धर्म की प्रथम सीढ़ी आने पर, आत्मा राग से भिन्न गोला जानने में आता है। तभी उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी - प्रथम श्रेणी कहने में आता है। कठिन बात है, प्रभु ! आहा...हा...! बाहर की जंजाल में उलझकर मर गया है !

अंदर चैतन्य भगवान तीन लोक का नाथ अनंत आनंद और अनंत ज्ञान से भरा हुआ तत्त्व (मौजूद है)। (यहाँ कहा, जीव) विभाव के जाल में बँधा हुआ है। विभाव नाम विकार, पुण्य और पाप के विकल्प की जाल। मकड़ी जैसे जाल में बँधी है, वैसे यह (आत्मा) पुण्य और पाप के विकल्प के राग के जाल में बँधा है। पर्याय में (बँधा है) ! वस्तु में तो वस्तु भिन्न है। यह अब (कैसे) बैठे ? ऐसा सुनने मिले नहीं ! अरे...! प्रभु !

कहते हैं कि, `**परंतु प्रयत्न करे तो स्वयं मुक्त ही है ऐसा ज्ञात होता है।**' सम्यग्दर्शन होने पर, धर्म की पहली दशा प्रगट होने पर, राग से और देह से अंदर भिन्न (चैतन्य) गोला दिखता है। ऐसी वह चीज़ है। आहा...हा...! छूटा गोला अंदर में पड़ा है, (ऐसा) कहते हैं। कभी नज़र की नहीं, प्रभु ! तूने तेरे अंदर में चैतन्य की सत्ता में नज़र नहीं की है कि क्या यह चीज़ है ? आहा...हा...!

इसलिये यहाँ कहते हैं कि, जीव विभाव के जाल में बँधा है परंतु अगर प्रयत्न करे तो स्वयं छूटा ही है। आहा...हा...! नारियल में (जैसे) गोला छूटा हो जाता है, वैसे प्रभु राग और शरीर से भिन्न अंदर देखे तो वह भिन्न ही पड़ा है। आहा...हा...! ऐसी बात अब सुनने भी मिलना मुश्किल पड़े, तो प्रभु उसे समझे तो कब ? क्या करे ? और वह भी ऐसे अनार्यदेश में ! ऐसी चीज़ अंदर

क्या है ? (यह समझना कठिन पड़े)। आहा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! चैतन्य पदार्थ तो अंदर भिन्न ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनंद की मूर्ति (है) ! आहा...हा...! यह आत्मा जो अंदर में है वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंद की मूर्ति मतलब उसका स्वरूप ही वैसा है। तेरी नज़र वहाँ तक गई नहीं। नज़र में राग और द्वेष, पुण्य और पाप और पुण्य-पाप के फल में ये बाहर (में) धूल (पैसे) आदि... (है) ! यह राज मिले, पाट मिले या अरबों रुपये की पैदाइश हो, ये सब धूल-पुण्य के फलस्वरूप (मिली है) तेरी नज़र वहाँ लगी है। तेरी नज़र अंदर राग से भिन्न चैतन्य है वहाँ कभी तूने की नहीं। उसका तूने लक्ष किया नहीं, इसकी जाति को जानने, सँभालने और जानने, तूने तत्त्व को सँभालने और जानने का प्रयत्न कभी किया नहीं। आहा...हा...! कठिन बात है। है ?

`चैतन्यपदार्थ तो मुक्त ही है। चैतन्य तो ज्ञान-आनंद की मूर्ति...' आहा...हा...! जैसे शक्कर में मीठापन भरा है, उस पर हाथ का मैल दिखे वह भिन्न है। बालक को रोटी के साथ शक्कर का टुकड़ा दे तब उसे छूते ही मैल चढ़ता है, मैल जैसा दिखता है, परंतु वह तो ऊपर है। शक्कर मूल चीज़ है उसमें तो मीठापन भरा है। वैसे यह भगवानआत्मा...! प्रभु ! सूक्ष्म बात है। यहाँ हमारे वहाँ तो (सोनगढ़ में) ४५ वर्ष से चलता है। यह बात कोई नई नहीं है। ४५ वर्ष से चलती है ! अठारह बार तो (`समयसार') के एक-एक अक्षर के अर्थ सोनगढ़ में समूह स्वाध्याय में हो चुके हैं। हज़ारों लोगों के बीच !

मुमुक्षु :- भजन में ऐसा कहते हैं कि, हे भगत ! यह नयी बात तू कहाँ से लाया !?` आप कहते हो पुरानी बात है !

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह बात कही थी, प्रभु ! अपनी खुद की बात ज्यादा नहीं करते ! समझ में आया ? साधारण-साधारण बात अपनी की जाती है। बाकी वैसे तो हम महाविदेह में प्रभु के पास थे। वहाँ राजकुमार थें, प्रभु ! अरबों की पैदाइश थी। परंतु देह छूटते समय ऐसा रोग आया कि, सहन नहीं हो पाया, देह छूटकर यहाँ काठियावार के `उमराला' गाँव में जन्म हो गया। भावनगर के पास में `उमराला' है। वहाँ तेरह साल रहा। `पालेज' में हमारी दुकान है, `भरुच' और `बड़ोदा' के बीच... वहाँ नौ वर्ष (रहा)। वहाँ पूर्व का याद आता था। परंतु क्या आ रहा है यह ज्यादा समझ में नहीं आता था। फिर अंदर से `बहिन' को जब जातिस्मरण हुआ (उसमें) नौ भवों का प्रत्यक्ष (स्मरण में आया)। तब उन्हें सब खयाल में आया कि, कहाँ से हम आये हैं ? यहाँ से कहाँ जानेवाले हैं ? सब नक्की हो चुका है। सूक्ष्म बात है, प्रभु ! प्रतीति आनी मुश्किल है। वहाँ से लायी हुई (वाणी) भगवान के पास से आयी है !! आहा...!

तीनलोक के नाथ विराजते हैं, करोड़ पूर्व का आयुष्य है, पाँचसौ धनुष्य की देह, दो हज़ार हाथ ऊँचे हैं प्रभु ! समवसरण में विराजते हैं। आहा...! वहाँ संवत ४९में `कुंदकुंदाचार्य' गये थे। तब वहाँ हमारी मौजूदगी थी। वहाँ हम समवसरण में उनके साथ गये थे। बहुत सूक्ष्म बात है, प्रभु ! बहुत लंबी बात है। यह तो थोड़ी ऊपर-ऊपर से करते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, आत्मा चैतन्य भिन्न है, प्रभु ! ऐसा तीन लोक के नाथ फरमाते थे। जिनेश्वरदेव सीमंधर परमात्मा बीस तीर्थंकर सहित महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। उनमें सीमंधर परमात्मा प्रथम हैं। दूसरे, तीसरे ऐसे करके बीस तीर्थंकर हैं। वर्तमान में

महाविदेह में विराजते हैं। वे जो कहते हैं वह यहाँ `बहिन' की वाणी में आया है !! आहा...हा...! थोड़ा कठिन लगे, बापू ! कठिन लगे बापू ! थोड़ा, लेकिन अब सुनना तो पड़े न !

प्रश्न :- प्रभुजी ! लेकिन अब हमारी उम्र बहुत हो गई। अब हम क्या करें ?

समाधान :- थम जाओ... थम जाओ, बापू ! अब जम जाओ...!

प्रश्न :- `पाके घड़े कांठा चड़ाववा ?!' (इतनी उम्र में नया सीखना) ?!

समाधान :- `पाके घड़े कांठा चढ़शे', (इस उम्र में भी काम होगा !) बापू ! यहाँ तो वृद्धवस्था में हो तो भी केवलज्ञान पाते हैं, ऐसा प्रभु कहते हैं !! वृद्धावस्था ! अभी तो साधारण अवस्था है। परंतु (पहले) करोड़ पूर्व की अवस्था (आयु) थी और (अभी भी) वहाँ है। यहाँ पर भी जब प्रथम तीर्थंकर थें तब करोड़ पूर्व का आयुष्य था। करोड़ पूर्व में तो एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ छप्पन हज़ार करोड वर्ष बीतते हैं ! इतना (समय) गया हो तो भी आखिर के समय अंतर्मुहूर्त में भी केवलज्ञान पाकर मुक्ति में चले जाते हैं ! गुलाँट खानी (पलटा खाना) चाहिए बस ! जो बाहर में - जंजाल में यूँ भटकता है, इसके बज़ाय थोड़ी अंदर में गुलाँट खानी चाहिये। कठिन बात है, प्रभु !

यहाँ कहते हैं, चैतन्य तो भिन्न ही है। चैतन्य तो ज्ञान, आनंद की मूर्ति, ज्ञायकमूर्ति प्रभु अंदर विराजता है। आहा...हा...! `**परंतु स्वयं अपने को भूल गया है। विभाव का जाल बिछा है...**' आहा...! पुण्य और पाप के विकल्प मतलब राग। विभाव मतलब विकार। विकार की जाल बिछाकर पड़ा है, आहा...हा...! परंतु भीतर में स्वयं विकार से रहित है, उसके सामने नज़र नहीं की, आहा...हा...!

`**विभाव का जाल बिछा है उसमें फँस गया है, परंतु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है।**' प्रयत्न करे, अंदर में देखने का प्रयत्न करे, परंतु बापू ! ये कोई साधारण बातें नहीं हैं, यह कोई साधारण पुरुषार्थ से मिल जाये ऐसा नहीं है। अनंत-अनंत प्रयत्न का पुरुषार्थ चाहिये, तब अंदर राग से भिन्न पड़ सके, तब उसे आनंद का नाथ (चैतन्य) गोला, आनंद का गोला मालूम हो। तब उसे सम्यग्दर्शन और धर्म की प्रथम दशा प्राप्त होती है। इसके बिना धर्म की दशा हो सकती नहीं। जगत (भले ही इससे उलटा) माने और मनवाये, ऐसा तो अनादि से चला आया है, परंतु राग के विकल्प से - दया, दान और व्रत, भक्ति के परिणामरूप राग से भी प्रभु अंदर भिन्न है। ऐसी जब तक अंदर नज़र न करे तबतक अपना आत्मा उसकी नज़र में आता नहीं। समझ में आया ? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं `**परंतु प्रयत्न करे तो मुक्त ही है।**' आहा...हा...! लेकिन अंदर में प्रयत्न - पुरुषार्थ चाहिये, बापू ! भगवंत ! तेरा स्वरूप तो अंदर पूर्णानंद से भरा पड़ा है। ये राग और द्वेष तो दुःख की दशा दिखती है। पुण्य और पाप के भाव, प्रभु ! वह तो राग और दुःख है। दुःख के पीछे आनंद का नाथ भरा पड़ा है। अतीन्द्रिय आनंद से भरा प्रभु ! (है) इसकी ओर देख, देख तो तुझे प्राप्त हो वैसा है। अंतर्मुहूर्त में पलटा खा जाये, अंतर्मुहूर्त में आत्मा को केवलज्ञान होकर मुक्त हो जाये, ऐसी उसमें ताकत है !! परंतु वह ताकत पुरुषार्थ करे तो (प्रगट हो)।

(अब कहते हैं `**द्रव्य बँधा नहीं है।**') है आखिर में ? वस्तु जो है वह बँधी हुई नहीं है, प्रभु ! वह त्रिकाल निरावरण है। कल कहा था। `समयसार' की ३२० गाथा है, इसके अर्थ में ऐसा है कि, त्रिकाल निरावरण है, अंदर वस्तु है वह त्रिकाल निरावरण

प्रभु है। परंतु वर्तमान पर्याय-दशा की दृष्टि में उसको वह चीज़ दिखती नहीं है। जैसे समुद्र पानी से भरा है परंतु किनारे पर (यदि) चार हाथ का कपड़ा या (परदा) बीच में रखे तो कपड़ा आँख में - नज़र में आयेगा। समुद्र नज़र नहीं आता। वैसे अंदर भगवान अनंत आनंद और ज्ञान से भरा हुआ है, परंतु राग और पुण्य-पाप (पर) नज़र है, इस नज़र के कारण भगवान दिखता नहीं है। आहा...हा...! बातें ऐसी हैं, बापू !

यहाँ तो ४५ साल से (यही) चलता है। ४५ साल सोनगढ़ गये उसको (हुआ)। ९० वाँ वर्ष चलता है - शरीर को तो ९० वाँ वर्ष चलता है। सारी जिंदगी यही किया है। दुकान है... पालेज में दुकान है, भरुच और बड़ौदा के बीच बड़ी दुकान है। वहाँ पाँच साल दुकान चलाई थी। अठारह वर्ष की उम्र से लेकर तेईस (वर्ष की उम्र तक) ऐसे पाँच साल। तेईस वर्ष की उम्र में छोड़ दिया। दुकान बड़ी है। चालीस लाख रुपये हैं, चार लाख की पैदाइश है, अभी है। अभी चार लाख की तो पैदाइश है ! भरुच और बड़ौदा के बीच पालेज है। वहाँ जाते हैं कभी-कभी, बुआ का लड़का हिस्सेदार था, उसके लड़के हैं। हमारे यहाँ से कोई नहीं है। परंतु यह तो हमारा तब से अंदर का परिचय है। बहत्तर साल पहले ! शास्त्र पढ़ता था। पिताजी की अपनी दुकान (थी), वहाँ पढ़ता था। '**क्योंकि पूर्व के संस्कार जो थे** !!' उसमें से अंदर मालूम होता था... आहा...हा...! कि यह आत्मा तो त्रिकाली आनंदकंद और शुद्ध है ! ये पुण्य और पाप का जो जाल दिखता है, वह विकल्प का जाल (है), वह लार है। वह आत्मा नहीं।

अरेरे...! कब उसे बैठे ? प्रभु ! यह जगत की जंजाल...! इसमें दो-पाँच-दस करोड़ रुपया अगर हो, उसे (ऐसा लगता है

कि) आहा...हा...! मकड़ी जैसे लार में फँस जाती है वैसे यह बेचारा उलझा है। आहा...हा...!

दीनानाथ के दयाल ! परमात्मा ने तो दया से, करुणा से बात की है, अकषाय करुणा से (बात की है) ! अकषाय करुणा !! आहा...! तीनलोक का नाथ परमात्मा विराजता है, उनकी बात की धुनी - (वाणी में), उसके सार में यह आया था। वह जो याद आया सो यह लिखा गया है !! बहिन को याद में (स्मरण में) बिलकुल इतना याद आया है... कि असंख्य अरब वर्ष की बात, जैसे कल की बात याद आये, वैसे याद आता है !! परंतु बाहर निकलने का (डॉक्टरों द्वारा) प्रतिबंध है। वहाँ सोनगढ़ में रहते हैं। ये उनके शब्द हैं।

यहाँ कहते हैं '**द्रव्य बँधा नहीं है।**' आहा...हा...! कैसे बैठे यह ? द्रव्य क्या ? और पर्याय क्या ? पर्याय नाम प्रभु ! पर्याय मतलब अवस्था। जैसे सोना है न सोना ? उसमें सोना है वह वस्तु है और सोनेमें से जो कड़ा, कुंडल, अँगूठी इत्यादि सब अवस्थाएँ हैं। अवस्थाओं को पर्याय कहते हैं और त्रिकाली सोना को सोना - द्रव्य कहने में आता है। वैसे आत्मा में राग-द्वेष, पुण्य-पाप होवे उन्हें विकारी पर्याय कहते हैं और इनसे रहित अंदर त्रिकाली पड़ा है उसे आत्मद्रव्य कहते हैं। आहा...हा...!

बहिन के उसमें (वचनामृत में) एक शब्द आया था, '**सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगती।**' आया था ? कौन से, तीन शब्द थे न? तीन हैं न ? 'अग्नि को दीमक नहीं लगती' आहा...हा...! 'सुर्वण को ज़ंग नहीं लगती, अग्नि को दीमक नहीं लगती' तीसरा बोल है न कुछ ? तीन बोल कहे थे न ? 'प्रभु को आवरण नहीं होता।' प्रभु ! कठिन लगेगा, भगवान ! यहाँ तो अंदर की भगवान

की बात है, नाथ ! आहा...हा...!

श्रोता :- आवरण, न्यूनता या अशुद्धता आती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आवरण (या) अशुद्धता उसमें है ही नहीं। वह तो त्रिकाली आनंद का नाथ अंदर विराजमान है...! आहा...हा....! ३८० बोल है। `**जिस प्रकार सुवर्ण को ज़ंग नहीं लगती,...**' सोने को ज़ंग नहीं लग सकती। लोहे को ज़ंग लगती है। आहा...हा...! `**अग्नि को दीमक नहीं लगती,...**' ये दीमक नहीं होती सूक्ष्म ? जंतु... छोटा जंतु... सफेद ? जैसे धूप लगे कि एकदम जल जाये। वैसे अग्नि में दीमक नहीं होती। `**उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।**' सूक्ष्म बात है, प्रभु ! पहले-पहले सुने उसे थोड़ा कठिन लगे ऐसा है, नाथ !

प्रभु ! तेरी बात ही निराली है, बापू ! आहा...! परंतु अपनी प्रभुता की जीव को खबर नहीं है। पामरता मानकर बैठ गया है। एक थोड़ा-सा राग करे कि मान ले जैसे हमने (कुछ कर लिया) ! पुण्य किया इसमें क्या से क्या कर दिया मानो !! लाख-दो लाख, पाँच लाख खर्च करे... (तो जैसे क्या कुछ कर दिया) !! परंतु बात ऐसी (है) कि, तेरे पच्चीस-पचास करोड़ दे दे न ! तो भी उसमें धर्म तीनकाल में नहीं है। (ज्यादा से ज्यादा) राग की मंदता करेगा तो पुण्य है, लेकिन धर्म नहीं। आहा...हा...! यह तो पहले से बात की थी। ऐसे कई करोड़पति वहाँ आते हैं। अरबोंपति आते हैं। धूल के धनी !! आहा...!

यह आत्मा अंदर है, उसे ज़ंग नहीं लगती (ऐसा) कहते हैं। आहा...! (जैसे) सोने को ज़ंग नहीं लगती वैसे अंदर तीन लोक के नाथ को राग नहीं है। अंतर परमात्मा स्वरूप भरा हुआ है, प्रभु ! अग्नि में दीमक नहीं है वैसे प्रभु में राग और द्वेषरूप दीमक

नहीं है। `**ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती ! तू उसे पहिचानकर उसमें लीन हो तो तेरे सर्व गुणरत्नों की चमक प्रगट होगी।**' आहा...हा...!

यह `बहिन' की वाणी है ! यह तो पूरी पुस्तक... कुदरती सहज बोले थे परंतु उन्हें पता नहीं, चौंसठ बालब्रह्मचारी बेटियाँ हैं, उनके (**बहिनश्री के**) **आश्रय में लाखोंपति - पचास-पचास लाख की** (**पैदाइश वालों की**) **बेटियाँ बालब्रह्मचारी हैं, इनमें से नौ बेटियों ने लिख लिया था। इन्हें** (**बहिन को**) **पता नहीं था कि ये लिखते हैं ! ऐसे में इनके भाई के हाथ में आ गया। उन्होंने फिर इसको प्रसिद्ध किया। वरना वे खुद तो प्रसिद्धि में आने की या लिखाने की बात करते ही नहीं। प्रसिद्धि में आने की बात नहीं।**

वे यहाँ कहते हैं `**प्रयत्न करे तो मुक्त ही है। द्रव्य बँधा नहीं है।**' है ४७ बोल में ? आहा...हा...! ऐसा कठिन लगे, बापू ! इसमें ये (सारी) धमाधम !

विकल्पमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये। विकल्पमें किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है ऐसा जीवको अंदरसे लगना चाहिये। एक विकल्पमें दुःख लगता है और दूसरे मंद विकल्पमें शांतिका आभास होता है, परंतु विकल्पमात्रमें तीव्र दुःख लगे तो अंदर मार्ग मिले बिना न रहे।।४८।।

४८ (वाँ बोल)। `**विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये।**' क्या कहते हैं ? पुण्य और पाप का भाव, शुभ और अशुभ का भाव, उसमें दुःख लगना चाहिये। क्योंकि वह दुःखस्वरूप है। भगवान इससे भिन्न आनंद स्वरूप है। आहा...हा...! है ? विकल्प माने राग। पुण्य और पाप की जो वृत्ति उठती है, उसमें पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। आहा...हा...!

यह तो विकल्प बिना का प्रभु ! आनंदमूर्ति है ! यदि विकल्प में दुःख लगे तो विकल्प रहित आनंद की मूर्ति में अंदर नज़र करेगा। परंतु जीव को विकल्प माने क्या ? और दुःख माने क्या ? इसकी खबर भी नहीं है ! (पहले) जाने कि विकल्प उठना मतलब क्या ? विकल्प माने क्या ? विकल्प माने राग, फिर चाहे दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो चाहे हिंसा, झूठ, चोरी, विषय का राग हो - दोनों में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिए। आहा...हा...! ऐसी बात !

(अब कहते हैं) `**विकल्प में किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है...**' (अर्थात्) पुण्य और पाप की वृत्ति में - राग में ज़रा-सी (भी) सुख और शांति नहीं है। धूल में तो है ही नहीं... धूल मतलब क्या ? ये पैसे ! वह तो मिट्टी-धूल है ! उसमें तो कुछ है नहीं। यह (शरीर भी) मिट्टी है न ! कहा नहीं था ?

शरीर में ज़ंगवाली कील लगे तब ऐसा कहते हैं `मारी माटी पाकणी छे तो पाणी अडवा देशो नहीं।' `मारी माटी पाकणी' ऐसा बोलेंगे ! बोले जरूर लेकिन समझे नहीं कुछ !! ऐसा बोलेंगे कि, `मारी माटी पाकणी छे' ज़ंगवाली कील अगर लगी हो (और) घाव पर पानी लग जाये तो पक जाता है। (तब) ऐसा कहेंगे, `शरीर मेरा है !' एक तरफ से मिट्टी कहना और दूसरी तरफ से शरीर

मेरा है - ऐसा कहता है !! यह शरीर जड़, मिट्टी, धूल है, यह तो ! ये सब क्रियाएँ - चलने, फिरने की होती है वह जड़ की क्रिया (है)। वह आत्मा की क्रिया है ही नहीं। आहा...हा...!

(यहाँ कहते हैं)। `**विकल्प में पूरा-पूरा दुःख लगना चाहिये। विकल्प में किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है ऐसा जीव को अंदर से लगना चाहिये।**' अरेरे...! लेकिन कब विचार करे ? कब वह निवृत्त होकर विचार करे और समय निकाले ? एक तो पाप से निवृत्त होता नहीं। ऐसा (कोई) कहता था न ? एक तो बाहर में पाप से अभी निवृत्ति नहीं मिलती ! आहा...हा...! बापू ! भगवान ! हमारे पास तो यह बात है।

परमात्मा के घर की यह बात है ! तीनलोक के नाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि, ये यहाँ समवसरण में सामने विराजते हैं, प्रभु ! उनकी यह ध्वनि है ! आहा...हा...! वही बात इन शब्दों में `बहिन' के श्रीमुख से निकली है !!

(कहते हैं कि) `**विकल्प में किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है...**' (अतः) राग का अंश भले ही आये, भले ही दया, दान और भक्ति का (भाव) आये; पचास लाख, करोड़, दो करोड़ दिये हो, फिर भी उसमें राग की मंदता होगी तो पुण्य है, परंतु यह पुण्य है वह दुःख है। अररर....! यह बात कैसे माने ?

लक्ष्मी तो जड़ है, वह तो धूल है। प्रभु चैतन्य है। प्रभु अरूपी है, लक्ष्मी रूपी, धूल, मिट्टी है, लेकिन अंदर जो पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं वे भी अचेतन हैं। चैतन्य आनंद का नाथ उसमें है नहीं। राग के भाव में चैतन्य प्रकाश का नूर (नहीं है)। चैतन्य के नूर का पूर अंदर भरा है। इस चैतन्य का अंश पुण्य और पाप के विकल्प में नहीं है। इसलिये उसे अजीव और जड़ कहते

हैं। अरेरे...रे...! यह बात !

`**विकल्प में किंचित् भी शांति एवं सुख नहीं है ऐसा जीव को अंदर से लगना चाहिये। एक विकल्प में दुःख लगता है और दूसरे मंद विकल्प में शांति का आभास होता है,...**' क्या कहा इसमें ? यह विषय का - भोग का एक अशुभ राग हो (या) कमाने का (तो) उसमें तो कदाचित् ऐसा लगे भी कि, यह पाप है। परंतु पुण्य का विकल्प जब आता है तब उसमें शांति का आभास है (कि) `शुभराग तो करते हैं, दूसरे से विशेष शुभराग करते है न, हमें इतनी तो शांति है न !' धूल में भी शांति नहीं है, सुन तो सही ! आहा...हा...! `दूसरे मंद विकल्प' माने शुभभाव। उसमें जीव को शांति लगती है वह भ्रम है, वह अज्ञान है, वह मिथ्यात्व है, वह जैनधर्म से विरुद्ध बात है ! ऐसे राग में जैनधर्म नहीं है। आहा...हा...! है (अंदर) ?

`**परंतु विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे...**' रागमात्र में उसे दुःख लगे, आहा...! `**तो अंदर मार्ग मिले बिना न रहे।**' यह शर्त ! यह इसकी शर्त ! कि शुभ और अशुभ राग में अगर दुःख लगे तो अंदर गये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! विकल्पमात्र में तीव्र दुःख लगे, (ऐसा कहा) !

प्रभु ! कठिन लगता है, नाथ ! लेकिन वस्तु यह है। दूसरे रास्ते जायेगा तो धोखे में रह जायेगा, हं...! यह मनुष्यभव चला जायेगा और मनुष्यभव नष्ट होने से कोई आत्मा का नाश नहीं होगा। आत्मा तो यह भव छोड़कर दूसरे भव में जायेगा। अज्ञानरूप जैसे भाव किये होंगे ऐसे दुःख अगले भव में भोगेगा। क्योंकि देह छूटकर आत्मा तो चला जायेगा। आत्मा तो नित्य है। इस देह के बाद भी आत्मा तो अनंतकाल रहनेवाला है। (तो) कहाँ रहेगा ?

राग और पुण्य में यदि दुःख (न) लगा तो वहीं रहेगा और संसार में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बात है, प्रभु ! सूक्ष्म लगे नाथ !

सो तो कहा नहीं था ? मुनि ने ब्रह्मचर्य की बहुत बात की। `पद्मनंदी पंचविंशति' (शास्त्र) है। (उसमें) ब्रह्मचर्य की बात करते-करते (आचार्य महाराज कहते हैं) कि, शरीर से ब्रह्मचर्य का पालन वह ब्रह्मचर्य नहीं है। शरीर से तो अनंतबार ब्रह्मचर्य का पालन किया। ब्रह्मचर्य तो उसे कहे, `ब्रह्म' नाम आनंद और `चर्य' नाम उसमें चरना / रमण करना। अतीन्द्रिय आनंद के नाथ में रमणता करे उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। ऐसी ब्रह्मचर्य की सूक्ष्म व्याख्या करते-करते आचार्य महाराज कहते हैं, प्रभु ! मेरी बात जवान लोगों को, भोग के रसीक जीवों को ठीक न लगे (तो) प्रभु ! माफ करना !! हमारी तरफ से दूसरी क्या आशा तू रखेगा ? हम तो तुझे सत्य बात कहनेवाले और सत्य बात माननेवाले हैं। ऐसे में तू हमारे पास से असत्य बात लेना चाहेगा सो तो नहीं होगा।' आहा...हा...! दिखाया था न ?! `पद्मनंदी पंचविंशति !' (उसमें) गाथा है। ब्रह्मचर्य की व्याख्या ऐसी की... ऐसी की... (कि) शरीर और मन से पालन करे वह ब्रह्मचर्य नहीं !

परमात्मा कहते हैं, ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं - ब्रह्म नाम आत्मा - अतीन्द्रिय आनंद का नाथ उसका चरना (नाम) उसमें रमणता करे, उसका नाम ब्रह्मचर्य। यह तुझे अगर न सुहाये, न रुचे तो हम तो मुनि हैं, माफ करना ! हमारे पास तू दूसरी आशा (मत रखना)। तुझे अच्छी लगे ऐसी बात नहीं आयेगी। तुझे रुचे ऐसी बात नहीं आयेगी ! `पद्मनंदी' में पाठ है। २६ अध्ययन का पूरा शास्त्र है। मुनि ने बनाया है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, `विकल्प में तीव्र दुःख लगे,...' तो अंदर

में मार्ग मिले बिना रहेगा नहीं। क्या कहते हैं, प्रभु ? पुण्य और पाप का भाव तो विकल्प और राग है। प्रभु ! अगर तुझे राग में दुःख लगेगा तो उस दुःख से अंदर आनंदस्वरूप भिन्न है, उसे तू खोज़े बिना - ढूँढ़े बिना रहेगा नहीं। लेकिन अगर तुझे विकल्प में दुःख नहीं लगा तो वहीं का वहीं पड़ा रहेगा तो चौरासी में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं। किस प्रकार का उपदेश है यह ? हमारे वहाँ सोनगढ़ में ४५ साल से चलता है। यह कोई पहल-पहल बात नहीं चलती। ४५ साल की उम्र में गये थे और ४५ (बाद में हुए)। ९० साल हुए इस शरीर को ! शरीर को ९० साल हुए ! अंदर भगवानआत्मा तो अनादि अनंत है। उसे कहाँ उम्र लागू पड़ती है ! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, विकल्प में अगर दुःख लगे... संयोग की बात नहीं (अर्थात्) प्रतिकूलता, निर्धनता ये सब नहीं - (परंतु) विकल्प जो पुण्य-पाप के उठते हैं उसमें प्रभु ! अगर तुझे दुःख लगेगा, उस विकल्प में तुझे आकुलता मालूम होगी तो तू आनंद को खोजे बिना नहीं रहेगा तो आत्मा आनंदस्वरूप है उसे तू ढूँढ़ेगा। लेकिन विकल्प में (अगर) दुःख नहीं लगा तो आनंद की खोज़ तू करेगा नहीं। और वहीं का वहीं पड़ा रहेगा और चौरासी में भटकेगा। आहा...हा...! ऐसी बात सुनने मिलने पर कठिन लगे ! वह अंदर में तो कब जाये ? और कब विचार करेगा ? वस्तु की स्थिति ऐसी है। बापू ! आहा...हा...!

सारे दिनमें आत्मार्थको पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरुषार्थकी ओर झुकना। चिंतवन मुख्यरूपसे करना चाहिये। कषायके वेगमें बहनेसे अटकना, गुणग्राही बनना।।४९।।

४९ वाँ बोल। `**सारे दिन में आत्मार्थ को पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने...**' किये ? यह कभी जाँच की है ? ऐसा कहते हैं। सारे दिन में आत्मा को पोषण मिले, आनंद को, शांति को (पोषण मिले) ऐसे (परिणाम) कितने किये ? `**और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर...**' इसकी जाँच करके, `**पुरुषार्थ की ओर झुकना**' (अर्थात्) अंदर में झुकना।

`**चिंतवन मुख्यरूप से करना चाहिये।**' भगवान आनंदस्वरूप प्रभु है। सत् चिदानंद है ! सत् नाम शाश्वत ! चिदानंद चिद् नाम ज्ञान और आनंद। यह प्रभु तो अंदर में चिदानंद (अर्थात्) ज्ञान और आनंद की मूर्ति है। आहा...हा...! अरे ! कैसे माने ? यहाँ थोड़े मैसुब और अरवी के पत्ते की पकौड़ी खाने मिले कि ओ...हो... मज़ा आ गया...! ऐसा माने ! खीर और पूड़ी खाता हो कि मज़ा... मज़ा... आ गया, ऐसा माने ! आहा...हा...!

बाहर की बातों में जिसको मज़ा दिखे, उसे (राग में) दुःख

नहीं लगता। अतः अंतर में आनंद है उसे देखने - सम्यग्दर्शन करने का उद्यम नहीं करता। सम्यक्‌दर्शन - सम्यक् नाम सच्चा दर्शन - समकित नाम सत्य दर्शन, सच्ची श्रद्धा। आनंद का नाथ अंदर जो भगवान (है) उसकी सम्यक् प्रकार से प्रतीति - श्रद्धा। अंदर विकल्प में दुःख लगे तो इसकी श्रद्धा में जायेगा। परंतु दुःख न लगे तब तक अंदर की श्रद्धा में नहीं जाता। समझ में आया?

यहाँ `समझ में आया ?' मतलब ? समझ तो अलग वस्तु है। परंतु किस पद्धति से कहा जाता है ? किस रीति से कहने में आता है ? यह खयाल में आता है ? इतनी बात है। आहा...हा...! समझ में आ जाये जब तो कल्याण हो जाये और संसार से छूट जाये !! परंतु किस रीति व पद्धति से, किस कला से कहा जाता है ? यह खयाल में आये तो जीव का अंदर जाने का पुरुषार्थ व प्रयत्न चले। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, शुद्ध आत्मा के पोषण के कितने परिणाम हुए? और अशुभ एवं शुभ (भाव) जो अशुद्ध हैं, - क्या कहा ? शुभभाव और अशुभभाव दोनों अशुद्ध हैं और आत्मा शुद्ध है, तो शुद्ध की पुष्टिरूप कैसे, कितने परिणाम हुए ? उसका तूने विचार किया नहीं। आहा...हा...! है ? `**वह जाँचकर पुरुषार्थ की ओर झुकना।**' आहा...हा...! क्या करना इसमें इसकी सूझ पड़े नहीं। बाहर से क्या करना ? बाहर का क्या धूल करे ? शरीर को आत्मा हिला भी सकता नहीं ! प्रभु ! क्या कहें ?

यह शरीर जड़ है। यह जो चलता है वह जड़ की क्रिया (है), आत्मा से नहीं होती। आत्मा जड़ का कर्ता तीन काल में नहीं हो सकता। जड़ का कर्ता आत्मा हो जाये जब तो आत्मा जड़ हो जाये ! आहा...हा...! शरीर की ये क्रियाएँ - चलना, फिरना,

बोलना सो तो जड़ की - मिट्टी की क्रिया है। वह आत्मा की क्रिया नहीं। वह तो नहीं परंतु भीतर में पुण्य और पाप के भाव हो, वह भी आत्मा की क्रिया नहीं। आहा...हा...!

वही यहाँ कहते हैं, (कि) ऐसे परिणाम कितने हुए ? (अर्थात्) अपने आत्मा की शुद्धता के पोषणरूप और अशुद्धतारूप शुभाशुभ परिणाम कितने हुए ? इसे जाँचकर पुरुषार्थ तरफ झुक ! आत्मा के प्रति झुक ! उस तरफ झुक ! आहा...! पुण्य और पाप के परिणाम की ओर तेरा झुकाव है, प्रभु ! आहा...हा...! वह झुकाव अब आत्मा के प्रति कर ! अगर तुझे सुखी (होना हो) व जन्म-मरण मिटाने हो तो। शर्त इतनी ! जन्म-मरण नहीं मिटाने (हो तो) अनंतकाल से भटक (ही) रहा है। आहा...! साधु भी अनंतबार हुआ। परंतु जीव को आत्मज्ञान (नहीं हुआ)। आत्मा क्या ? वह आत्मज्ञान किया नहीं। समझ में आया ? आहा...हा...! अनंतबार मुनिपना लिया, परंतु आत्मा राग की क्रिया से भिन्न है, यह बात जीव को कभी नहीं बैठी। आहा...हा...! ये सब राग की क्रियाओं में ही जीव फँस गया है। जो शुभराग है वह भी संसार है। कठिन लगे, प्रभु !

राग से भिन्न अंदर भगवान है उसे तूने कितने परिणामों से पुष्ट किया ? और पुण्य-पाप के अशुद्ध परिणामों से कितना पुष्ट किया ? इसकी जाँच करके पुरुषार्थ के प्रति झुक ! अंदर की ओर झुक अब ! (ऐसा कहते हैं) आहा...हा...!

`**चिंतवन मुख्यरूप से करना चाहिये। कषाय के वेग में बहने से अटकना,...**' आहा...हा...! `कषाय' नाम `कष' मतलब संसार। `आय' मतलब लाभ। `कषाय' शब्द है। (उसमें) `कष' नाम संसार और `आय' मतलब लाभ। पुण्य-पाप का भाव कषाय है। अतः वह संसार का लाभ है, वह भटकने का लाभ है। आहा...हा...! उसे कषाय

कहते हैं।

कषाय के दो प्रकार हैं। राग और द्वेष। द्वेष के दो प्रकार हैं - क्रोध और मान। राग के दो प्रकार हैं - माया और लोभ। माया, लोभ, क्रोध और मान सब मिलाकर राग-द्वेष हैं। राग-द्वेष सहित मोह है। इस मोह के परिणाम में अनादि से रहा है। लेकिन इस मोह के परिणाम रहित स्वरूप क्या है ? उसकी दरकार और प्रयत्न किया नहीं। सुनने मिला तब ऐसे निकाल दिया कि `यह तो सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म बात है। इसमें अपना काम नहीं !' ऐसा करके छोड़ दिया है। आहा...हा...! `ये तो अंदर बहुत सूक्ष्म बातें हैं ! ये सब तो त्यागियों की समझ में आये ! ये कोई हमारी समझ में थोड़ी आयेगा ?'

मुमुक्षु :- सुख ही स्वयं सूक्ष्म है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :- (सच्चे) दुःख (की) ही अंदर खबर नहीं पड़ती कि दुःख किसको कहना ?! विषय-भोग का अशुभ राग होना वह राग दुःख(रूप) है। आहा...! और पैसे का मान करना भी दुःख है। और शुभराग करना भी दुःख है। अरेरे...रे...! यह बात कैसे माने ? ये शुभाशुभ राग है सो दुःख है, इससे (पीछे) हट जा ! है ? `**वेग में बहने से अटकना,...**'

`**कषाय के वेग में बहने से अटकना,...**' शब्द है ? `**गुणग्राही बनना।**' अंतर आत्मा में आनंद है उसके गुणग्राही बनना। अंतर के गुण को पकड़नेवाला बनना। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! पुण्य-पाप कषाय का जो भाव है उसे छोड़कर गुणग्राही (बनना)। (अर्थात्) आत्मा आनंद, ज्ञान और शांति का सागर है, उन गुणों को ग्रहण करना। इससे तुझे आत्मा प्राप्त होगा। इसके बिना आत्मा प्राप्त होगा नहीं। इसके बिना प्रथम सम्यग्दर्शन की दशा भी शुरू

नहीं होगी। आहा...हा...?

`**गुणग्राही बनना।**' गुणग्राही मतलब ? दूसरे के गुण (ग्रहण करना) वैसे नहीं। पुण्य और पाप के दो भाव (हैं)। प्रभु ! ये दोनों कषाय हैं। दोनों से संसार गति में भटकने का लाभ मिलता है। इस कषाय से भिन्न होकर गुणग्राही (बनना)। यानी कि आत्मा आनंद और ज्ञान है, उन गुणों के ग्राही बनना। इन गुणों को पकड़ने अंदर में जाना। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, प्रभु ! भाषा तो यह सादी (है) परंतु इसके भाव गंभीर हैं ! है ? `**गुणग्राही बनना ।**' आहा...! यह ४९ (पूरा हुआ)।

तू सत्‌की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मामें परिणमित हो जायगी। सत्‌के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अंतमें अन्य गतिमें भी सत् प्रगट होगा। इसलिये सत्‌के गहरे संस्कार डाल।।५०।।

५० (वाँ बोल)। `**तू सत् की गहरी जिज्ञासा कर...**' आहा...हा...! सत् (नाम) सत्ता। अंदर चैतन्य की सत्ता है - त्रिकाली अस्तित्व है, ऐसे सत् को ढूँढ़ने जा ! ऐसे सत् की जाँच कर ! आहा...!

सत् की गहरी जिज्ञासा कर। सत् माने ? पुण्य और पाप के विकल्प असत्य हैं। शरीर, वाणी, मन की बात ही यहाँ नहीं। वे तो जड़ हैं। लेकिन जीव में हो रहे पुण्य-पाप के भाव भी चैतन्यस्वरूप के भाव से भिन्न विकल्प का जाल है, उसे छोड़कर अंतर की गहरी सोच में जा ! आहा...हा...! गहरी... गहरी.. जिज्ञासा कर ! `**जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा;...**'

अंतर में गहराई तक... और गहराई तक जा ! अंदर राग के तल में इसके पीछे भगवान विराजमान है। राग ऊपर-ऊपर है। जैसे पानी में तेल की बूँदें ऊपर-ऊपर हैं। पानी के दल में तेल की बूँदें ऊपर हैं। वह पानी के दल में प्रवेश नहीं करती। वैसे भगवान आनंदस्वरूप में पुण्य-पाप के परिणाम तेल की बूँद समान हैं। वे अंदर प्रवेश नहीं करते। आहा...हा...! अरे...! ऐसी बातें कहाँ से (आयी) ?! (लेकिन) ऐसी बात है, प्रभु ! यहाँ तो इस घर में तो यह (बात) है।

एक बार बात की थी न ? `अब हम कबहु न निज घर आये,...' `अब हम कबहु न निज घर आये, पर घर भमत अनेक नाम बनाये, परभाव भमता अनेक नाम धराये, लेकिन अब हम कबहु न निजघर आये।' निजघर - अंदर आनंद का नाथ प्रभु विराजमान है, इसके घर में जाने का प्रयत्न तो किया नहीं, परंतु (वहाँ) जाने योग्य है - ऐसी जिज्ञासा भी नहीं की ! उसमें जाने लायक है ऐसी जिज्ञासा भी नहीं की !! सो यहाँ कहते हैं। - (तू सत् की) गहरी... गहरी... जिज्ञासा कर ! आहा...हा...!

`बहिन' तो अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव में... रात्रि में थोड़ा बोल गये थे। जो गुप्तरूप से लिख लिया। उन्हें तो पता भी नहीं था कि यह लिखा जा रहा (है) ! नौ ब्रह्मचारी बेटियों ने लिख

लिया था। फिर बात प्रसिद्धि में आ गई।

अपनी ओर से - सोनगढ़ की तरफ से बाईस लाख पुस्तकें छपी हैं ! आठ लाख जयपुर से छपी हैं। लेकिन हमने कभी नहीं कहा कि, यह करो या पुस्तक बनाओ या मकान बनाओ - मंदिर बनाओ ! यहाँ तो तत्त्व का उपदेश (है) ! सुनना चाहे वह सुने और करना चाहो तो करो !! यहाँ हमें किसी को कहना नहीं है कि, यहाँ पाँच हज़ार दे दो और दस हज़ार दे दो ! यह बात हमारे पास कभी नहीं होगी ! बाहर की क्रिया तो बननेवाली होती है वह बनती है। यहाँ तो आत्मा की बात करनी है !

(यहाँ कहते हैं), (तू सत् की) गहरी... गहरी... जिज्ञासा कर, `**जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा; तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर...**' आहा...हा...! प्रभु ! तेरी मति सरल एवं सुलटी करके, विकार, वक्र और टेढ़ापन छोड़कर (ऐसा कहते हैं) आहा...हा...! `**तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जायगी।**' (अर्थात्) अगर आत्मा को राग से भिन्न करके सरल और सीधी दशा से जायगा तो तुझे आत्मा मिल जायेगा। आत्मा आनंदरूप परिणमित हो जायेगा। आहा...हा...! है ?

`**सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे...**' (अर्थात्) सत् चिदानंद प्रभु ! सर्वज्ञ जिनेश्वर परमेश्वर ने कहा वह ! इसके अलावा किसी और ने कहा वह (नहीं)। परमेश्वर तीनलोक के नाथ अरिहंतदेव विराजते हैं, उन्होंने कहा ऐसा आत्मा, इसके संस्कार यदि डाले होंगे, आहा...हा...! `**सत् के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अंत में अन्य गति में...**' (यानी कि) आखिर में इस भव में यदि समकित न हुआ तो दूसरे भव में भी अगर संस्कार (डाले होंगे तो वहाँ जाकर) प्राप्त कर लेगा। आहा...हा...!

ये धूल की बातें तो कहीं (दूर) रह गई ! परंतु अंदर पुण्य परिणाम के संस्कार भी अगर रह गये (तो) भटक जायेगा चार गति में ! चौरासी के अवतार में ! लेकिन अगर संस्कार (डाले होंगे) तो अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। 'पुण्य-पाप से (में) भिन्न हूँ' - ऐसे संस्कार डाले होंगे (तो अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा)।

जैसे सकोरा कोरा हो, उसमें पहले पानी डाले तो उसे चूस लेगा। लेकिन पानी भर जाने के बाद पानी ऊपर आ जायेगा। वैसे (ये) संस्कार डालते... डालते... आहा...हा...! पहले अंदर में संस्कार डालने पर ऊपर-ऊपर रहेंगे। फिर संस्कार अंदर तल में जायेंगे। आत्मा आनंद का नाथ है, उसका सम्यग्दर्शन में भान हो जायेगा; लेकिन अगर उसके प्रति का प्रयत्न और पुरुषार्थ करेगा तो ! बाहर का पुरुषार्थ कर-करके अनंत काल से मर गया ! आहा...हा...!

स्वर्ग के देव के भव अनंत किये हैं। मनुष्य के भव अनंत कर चुका। इससे भी असंख्यातगुना नारकी के भव किये। इससे असंख्यगुने देव के किये। इससे अनंतगुने अनंत निगोद के... लहसुन और प्याज के किये ! आहा...! लेकिन कभी जीव ने आत्मा का विचार नहीं किया, बापू ! आहा...हा...! ऐसे भव तूने किये हैं, प्रभु ! क्योंकि अभी तक भव बिना नहीं रहा। अगर भव बिना रहा होता तो जैसे सेंका हुआ चना उगता नहीं, कच्चा चना हो तो कसैलापन रहता है और वह उगता है, परंतु चना सेंकने पर कसैलापन छूट जाता है, मिठास देता है और फिर उगता नहीं, वैसे अज्ञान में दुःख और जन्म-मरण होते हैं, जबकि ज्ञान में सुख होता है और जन्म-मरण मिटते हैं। आहा...हा...! अरेरे...! ऐसी बातें, प्रभु ! बातें

तो तेरे घर की हैं, नाथ ! लेकिन तुझे रुचनी चाहिये। बाहर की प्रवृत्तियाँ तो ढेर सारी जगत में चलती हैं।

(यहाँ कहते हैं) '**अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिये सत् के गहरे संस्कार डाल।**' (अर्थात्) अंदर में पुण्य-पाप से रहित (आत्मा है) इसके संस्कार डाल ! तो आगे के भव में - अगले भव में भी तुझे समकित होगा और भव का अंत आयेगा। (विशेष कहेंगे...)

जिसे सुखी होना है उसे कहते हैं कि जो शुद्ध चैतन्य वस्तु है वह सर्वांग ज्ञान से भरी हुई है, उस ओर सन्मुख होना ही सुखी होने का मार्ग है - वही धर्म है। सर्वांगज्ञान से परिपूर्ण चैतन्यवस्तु में स्थिर होते शुद्धता होती है, और अशुद्धता का नाश होता है - इसका नाम स्वयं का हित अर्थात् कल्याण है। (परमागमसार-७७)

वचनामृत - ५१ से ५६ १२

आकाश-पाताल भले एक हो जायें परन्तु भाई ! तू अपने ध्येय को मत चूकना, अपने प्रयत्न को मत छोड़ना। आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना, अवश्य सिद्धि होगी।।५१।।

वचनामृत, ५१ वाँ बोल है। ५० हुए (न) ? यहाँ तो मुख्य बात है कि, यह आत्मा जो है वह निर्मल (है)। अंदर त्रिकाल निरावरण निर्मल है। इसके ध्येय को चूकना नहीं (ऐसा इस बोल में कहेंगे)। ५१ वाँ बोल।

`**आकाश-पाताल भले एक हो...**' आहा...हा...! आकाश और पाताल भले एक हो, `**परंतु भाई ! तू अपने ध्येय को मत चूकना,...**' सूक्ष्म बात है, भाई ! ध्येय जो आत्मा है, सत् चिदानंद प्रभु ! मंगलिक, उत्तम और शरण वह अंदर ध्रुव स्वरूप है। ऐसे ध्येय

को तू चूकना नहीं। लाख बात आयें, प्रभु ! आकाश और पाताल कदाचित् एक हो तो भी तेरे ध्येय को तू चूकना नहीं। यह मुद्दे की रकम है ! है ?

`**अपने प्रयत्न को मत छोड़ना।**' अंदर में शुद्ध स्वरूप की सन्मुखता का प्रयत्न होना (वह सही प्रयत्न है)। सूक्ष्म बात है, भगवान ! अंदर में शुद्ध स्वरूप के (सन्मुख होने का) जो प्रयत्न चले, उसे छोड़ना मत। `**आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना।**' अर्थात् आत्मस्वभाव को पोषण मिले वह कार्य करना। अंतर में दर्शन, ज्ञान, वीर्य - सबको अंतर चैतन्य स्वभाव में मोड़ दे। श्रद्धा-ज्ञान में ध्येय को मत चूकना। कर्तव्य तो यह है। इसके बिना जन्म-मरण के फेरे, चौरासी के अवतार मिटेंगे नहीं। है ?

`**आत्मार्थ को पोषण मिले वह कार्य करना। जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ...**' (अर्थात्) आत्मा के द्रव्यस्वभाव के ध्येय में चढ़ा `**उसे पूर्ण करना,...**' आहा...! यह ध्येय है। बाकी इसके पहले बीच में जितने शुभभाव आयें वे छोड़ने लायक हैं। आहा...! राहदारी को जहाँ जाना है उसमें बीच-बीच में (दूसरे) जितने मार्ग आयें उसे छोड़ने लायक हैं। आहा...हा...!

आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन पाती है ! तब आत्मा सत् चिदानंद ध्रुव शुद्ध (है) उस ध्येय को पकड़ती है और उस ध्येय को पकड़ने पर प्रयत्न उस तरफ झुकता है। उसे पूर्ण करना, जिस ध्येय पर आरूढ़ हुआ उसे पूर्ण करना। आहा...हा...! `**अवश्य सिद्धि होगी।**' जरूर मुक्ति होगी। आहा...!

शब्द तो सादे हैं (परंतु) भाव तो अंदर अनुभव के हैं। अनुभवमें से वाणी निकली है। आनंद के अनुभव में जो सहज बोले सो वाणी यह निकल गई है। अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव (है)।

सम्यक्दृष्टि को सम्यक्ज्ञान में अतीन्द्रिय ज्ञान का वेदन - अनुभव होता है। आहा...हा...! तब उन्हें धर्म की शुरूआत कहते हैं। आहा...! उस आनंद की लहर में, अतीन्द्रिय आनंद के ध्येय में आरूढ़ आत्मा, बाहर में अनेक प्रकार के विकल्प आने पर भी उन्हें छोड़ता जाता है। उनका आदर नहीं करता। यह वस्तु है।

(यहाँ कहते हैं) `**अवश्य सिद्धि होगी।**' ध्येय को पकड़कर अंदर जायेगा तो जरूर तेरी मुक्ति होगी। इसमें संदेह को स्थान नहीं है। परंतु उस ध्येय को पकड़ना चाहिये। आहा...हा...!

सुबह तो आया था न ? प्रथम आत्मा को जानना चाहिये। ऐसा कहा था। दूसरी सब बातें छोड़ देना ! पहले में पहले (आत्मा को जान) ! भगवान अंदर पूर्ण आनंद, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतराग स्वभाव से भरा द्रव्य है। यह त्रिकाली द्रव्य तो निरावरण है। उसे दृष्टि में लेने पर, ध्येय को पकड़ने से, पर्याय में जो आनंद आया है, ऐसे ध्येय को छोड़ना मत। आहा...हा...! ऐसी बातें हैं ! `**अवश्य सिद्धि होगी।**' ५१ वाँ (पूरा हुआ)।

शरीर शरीर का कार्य करता है, आत्मा आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, उनमें `यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा। देह के लिये अनंत भव व्यतीत हुए; अब, संत कहते हैं कि अपने आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर।।५२।।

५२ (वाँ बोल)। `**शरीर शरीर का कार्य करता है,...**' क्या कहते हैं ? यह शरीर का चलना, फिरना, बोलना ये सब शरीर के कार्य शरीर करता है, आत्मा नहीं। आहा...हा...! शरीर शरीर का कार्य नाम पर्याय करता है। शरीर की पर्याय - यह चलना, फिरना, बोलना - सब कार्य - शरीर की पर्यायरूपी कार्य है। वह आत्मा का कार्य नहीं। आहा...हा...!

`**आत्मा आत्मा का कार्य करता है।**' आत्मा ज्ञानानंद स्वरूप, वह ज्ञान और आनंद का अनुभव का कर्ता है। दोनों का कार्य एक क्षण में एकदम साथ-साथ होते हुए भी दोनों का कार्य भिन्न-भिन्न है। अब इतनी हद तक जाना...! बीच में दूसरे कामों का लक्ष छोड़कर वहाँ जाना है। यह मुख्यरूप से कर्तव्य है। आहा...!

`**आत्मा आत्मा का कार्य करता है। दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं,...**' आहा...हा...! यह होठ हिलना भी जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। वाणी निकलती है वह भी जड़ की क्रिया है, भाषा वर्गणा की क्रिया है, आत्मा की नहीं। आहा...हा...! चश्मा यहाँ नाक पर रहता है, वह चश्मा का कार्य है, आत्मा का नहीं। आहा...हा...! ऐसा मान्यता में स्वीकार करना...!

(कहते हैं कि) दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं। परमाणु आत्मा के कारण नहीं और आत्मा परमाणु के कारण नहीं। आत्मा में आत्मा के लक्षपूर्वक जो आनंद आये वह कोई शरीर या राग की अपेक्षा नहीं रखते। और शरीर, वाणी की क्रिया होने में आत्मा की कोई अपेक्षा नहीं है, आहा...हा...!

`**उनमें `यह शरीरादि मेरे'...**' शरीरादि मेरे (कहा इसमें) आदि में लड़का, लड़की, पैसा, आबरू, कीर्ति, मकान सब (आ जाते हैं)। आहा...हा...! एक चैतन्य तत्त्व को छोड़कर राग से लेकर जितने

बाह्य तत्त्व हैं वे सब मेरे - यह मान्यता मिथ्यात्व और विपरीत श्रद्धा है। आहा...हा...! सर्व प्रथम मिथ्यात्व ही उसका महान दोष है। इस दोष को मिटाने `शरीर शरीर का कार्य करता है, आत्मा आत्मा का कार्य करता है' वैसे जीव को भिन्नता का ज्ञान करना पड़ेगा। आहा...हा...!

`**उनमें `यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर,...**' (अर्थात्) शरीर की अनुकूलता देखकर, विषयादि के साधनों को देखकर, `मुझे अच्छा लगता है, मज़ा आता है' - ऐसा न कर, प्रभु ! वह सब दुःख है। प्रतिकूलता के साधन में - शरीर में रोग आये, शरीर के टुकड़े हो जाये, चूरा हो जाये, आहा...हा...! गाड़ी में कुचल दे, हाथी के पैर तले कुचल दें !

`टोडरमलजी' को हाथी के पैर तले कुचल दिया था। `मोक्षमार्ग प्रकाशक' है, जिन्होंने बनाया उन्होंने स्पष्ट बात की है। वह बात राजा को, कुछ लोगों को रुचि नहीं। `मोक्षमार्ग प्रकाशक' ! जो सत्य था वह उसमें लिखा। प्रसिद्धि में (शास्त्र) आया (तो) कुछ लोगों को (बात) जची नहीं इसलिये राजा के पास चुग़ली करके कहा (कि) साहब ! यह तो सत्य को बहुत हानि पहुँचाता है ! शिव की मूर्ति जेब में रखता है ! और उसका अनादर करता है ! जेब में उन लोगों ने (चुपके से) डाल दी थी ! (यह देखकर) राजा ने हुकम कर दिया कि, `इसे हाथी के पैर तले कुचल दो !' अरर...! वह काल कैसा होगा ? जैन होंगे... जैन के लोग होंगे ! फिर भी वह काल ऐसा था (तो) राजा ने हुकम कर दिया (कि) `हाथी के पैर तले (कुचल दो) !'

हाथी आया। हाथी भी पैर रखने से हिचक रहा था। खुद ने कहा, `अरे... हाथी ! राजा ने जब हुक्म किया है, तो तू क्यों

हिचकता है ? भाई !' आ...हा...हा...! `यह शरीर पड़ा है। उस पर पैर रख दे तू !' आहा...! `मेरा आनंद का नाथ इसमें नहीं कुचलेगा ! मेरा प्रभु इससे भिन्न है।' आहा...! पैर रखने में हाथी हिचक रहा था ! ऐसे जवान आदमी को... अररर...! पैर रखना ! (`टोडरमलजी' ने कहा) `भाई ! राजा को जब ऐसी बुद्धि सूझी है तो तू क्यों हिचकता है ? भाई !' आहा...हा...! तनिक-सा भी द्वेष नहीं है हाथी पर ! और राजा पर भी ! `जिस काल में जो पर्याय होनेवाली है उसे कौन रोक सके ? मैं एक चैतन्य आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ ! वहाँ किसी का असर (नहीं पहुँचता), उसे कोई बाधा करनेवाला है नहीं !' (ऐसा समाधान वर्तता है)। आहा...हा...!

भाई ! वह हाथी फिर यूँ आता है, पैर रखता है, देह छूट जाती है। आहा...हा...! स्वर्ग में चले जाते हैं। `मोक्षमार्ग प्रकाशक' के कर्ता ! शरीर ऊपर से भी ममता छूट गई थी। शरीर मेरा नहीं। उसका रहना हो तो हो और नहीं रहना हो तो न रहे। मेरे अधिकार की बात नहीं है। मेरा अधिकार तो मेरे आत्मा पर है। आहा...हा...! ऐसी अंदर में द्रव्य की दृष्टि, आत्मा के ध्येय की दृष्टि किये बिना, इतनी समता ऐसे काल में रहना संभव नहीं है। अंदर आनंद (स्वरूप की) जहाँ द्रव्यदृष्टि हुई है, तो हाथी पैर (रखता) है फिर भी खुद आनंद में हैं !! आहा...हा...!

देह से भिन्न जिसने आत्मा को जाना है ऐसा सम्यक्‌दृष्टि, फिर चाहे आठ वर्ष की बालिका हो, या कुत्ते का बच्चा हो लेकिन समकित प्राप्त करते हैं। ढाई द्वीप से बाहर असंख्य तिर्यंच सम्यक्‌दृष्टि हैं। यह मनुष्य क्षेत्र है (वह) ४५ लाख योजन (में) (है)। मनुष्य वहाँ तक ही हैं। फिर ढाई द्वीप से बाहर असंख्य द्वीप हैं और असंख्य समुद्र हैं। उन सब में केवल तिर्यंच ही बसते हैं। उन

तिर्यंच में भी असंख्यवें भाग में कितने ही समकिती हैं। असंख्यगुने मिथ्यादृष्टि हैं। (असंख्य) तिर्यंच समकिती हैं ! आहा...हा...!

बिल्ली होती है, वह अगर सम्यक्‌दृष्टि हो तो बाघ खाने आये (तो भी) डरे नहीं। निडरता से अंदर (रहती है) कि, शरीर मेरा नहीं है। शरीर की स्थिति (मेरी नहीं)।

`श्रीमद्' में आता है न ?

`एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ, सिंह संयोग जो,'

आहा...! मेरी दशा ऐसी कब हो ! चाहे जैसा प्रतिकूल प्रसंग आओ...!

`एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ, सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहीं क्षोभता.'

`श्रीमद् राजचंद्र' गृहस्थाश्रम में कहते हैं !!

`अडोल आसन ने मनमां नहीं क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्यां योग जो !'

मित्र का योग हुआ ! मुझे शरीर चाहिये नहीं और उसे चाहिये तो भले ही ले जाये !! आहा...हा...! (लेकिन) ऐसा कब संभव है प्रभु ?! शरीर से आत्मा को भिन्न पिछाना हो तब ऐसा संभव है। शरीर, वाणी, मन और राग में एकमेक होनेवाले को यह बात नहीं बैठेगी। आहा...हा...! राग, शरीर और वाणी, यह जड़-मिट्टी, इसका जिसे रंग चढ़ा उसे आत्मा का रंग नहीं चढ़ता और जिसको आत्मा का रंग लगता है उसे शरीर आदि का रंग छूट जाता है। आहा...हा...! वही कहते हैं कि, अगर इस देह को सिंह ले जाये तो (वह) मेरा मित्र है। मुझे देह चाहिये नहीं और उसको देह चाहिये (अतः वह तो) मेरा मित्र है !! आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में (थें) ! लाखों रुपयों का जवाहरात का व्यापार था। उनका नैतिक जीवन तो अलौकिक था !! `श्रीमद् राजचंद्र' ! एक बार किसी के साथ हीरे का सौदा किया था। उसमें जिन हीरों का सौदा किया था उसके बज़ाय दूसरे हीरों की पुड़िया वह आदमी गलती से दे गया। साधारण हीरों का व्यापार किया था। साधारण हीरे माँगे थे। ऐसा नक्की किया था कि, ये हीरे (लेने)। इसके बज़ाय गलती से बहुत कीमती हीरों की पुड़िया देकर चला गया। इन्होंने घर या दुकान पर देखा... तो यह क्या ?! लाखों रुपयों की जिसमें पैदाइश (थी) ! जिन हीरों का सौदा किया था इसके बज़ाय यह क्या ? अरेरे...! जिसके हैं वह अभी आयेगा ! ज्यों का त्यों रख दिया। पुड़िया ज्यों कि त्यों बंद करके रख दी ! वह आदमी लेने आया - (और कहा) `प्रभु ! हमारा जो सौदा हुआ था, इसके बज़ाय गलती से बहुत (मूल्यवान) हीरें - मानिक इसमें आ गये हैं। इसमें तो लाखों रुपये के (हीरे) आ गये हैं !' (`श्रीमद्‌जी' ने कहा) `भाई ! यह रखी है तुम्हारी पुड़िया, बापू ! वह मेरा नहीं। हमने इसका सौदा नहीं किया था। प्रभु ! ये ले जा तुम्हारा !!' आ...हा...हा...!

यह तो कितने वर्ष (पहले की) बात है ! यह ५७ वर्ष पहले की बात है। संवत १९५७ वर्ष पहले !! अभी तो (सबके) जीवन ही बदल चुके हैं। उस जमाने में तो नैतिक जीवन भी ऐसे थे। ऐसे जीवन में, लाखों की पैदाइश एक पुड़िया में थी। लेकिन जैसे ही देखा... तो वापिस पुड़िया में लपेट कर रख दिया। ऐसे में वह आदमी लेने आया (और कहा) `साहब ! हमने इसका व्यापार नहीं किया था।' (`श्रीमद्‌जी' ने कहा) `भाई ! ये रहे, बापू ! ले

जाईये !!' उसको तो लगा कि, `ये है कौन ?!' `५० की साल में जिसमें लाखों की पैदाइश !' अभी तो लाख मतलब साधारण माना जाता है। पहले के लाख और अभी के पच्चीस लाख सब एक बराबर ! उस जमाने में ऐसी लाख की पैदाइश को छोड़ दिया... पैसे लेनेवाले को तो लगा `ये है कौन ?!' ये तो... आहा...हा...! यह पुरुष कौन है ?! कि जिसको मैंने पुड़िया दी और उसमें से कुछ न लेकर वापिस रख दिया !' ऐसा तो समकिती का नैतिक जीवन होता है !! समकिती का - धर्मी का नैतिक जीवन ऐसा होता है !! जिसको पैसे आदि की दरकार नहीं। अनैतिकपना बिलकुल नहीं हो सकता। परस्त्री का त्याग, स्वप्न में भी परस्त्री का विचार नहीं होता। वह मांस, दारू, शराब को छूए तक नहीं। इसके सामने देखे भी नहीं। आहा...हा...!

जिसको आत्मा हस्तगत हुआ है, कहते हैं कि, **`शरीर शरीर का कार्य करता है।' `यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर,...'** आहा...हा...! मुनियों को घानी में पीस देते थे ! वह काल कैसा होगा ? जैनी लोग होंगे लेकिन कोई बोल नहीं सका होगा। मुनियों को ! महान संतों को ! दिगंबर मुनि ! आत्मध्यानी आनंद में रमणता करनेवाले, उन पर राजा को शंका हो गई कि, रानी के साथ इसकी कोई बात-चीत या कुछ (लगता) है ! (इसलिये) घानी में पीस दो ! घानी में पीस दिया ! तिल को पीसते हैं वैसे पीस दिया ! लेकिन (मुनिराज तो) अंतर आत्मा के आनंद के ध्यान में (लीन) ! आहा...हा...! मेरा आनंद है वह मेरे पास है। शरीर को मैं छूता नहीं और यह पीसनेवाला भी शरीर को छू सकता नहीं। मेरी चीज़ तो इससे भिन्न है। आहा...! ऐसा सम्यग्दर्शन होने पर `शरीरादि मेरे नहीं हैं' (ऐसा अनुभव होता है)।

है ?

`यह शरीरादि मेरे' ऐसा मानकर सुख-दुःख न कर, ज्ञाता बन जा।' आ..हा...हा...! करना तो यही है भाई ! लाख बात दूसरी बाहर की (हो) तो भी करना तो यही है। ज्ञाता बन जा। जानने-देखनेवाला (बन जा)। किसी भी क्रिया का बिलकुल करनेवाला नहीं और वह क्रिया मुझे छूती भी नहीं। आहा...हा...! मैं तो अशरीरी चैतन्यमूर्ति भगवानआत्मा (हूँ)। ऐसा एक क्षण के लिये तो बन जा ! पड़ोसी तो बन जा ! आहा...हा...! शरीर, वाणी और परचीज़ का पड़ोसी हो जा ! आहा...! है ?

**`देह के लिये अनंत भव व्यतीत हुए;...'** यह वाक्य `श्रीमद्' में (आता है) देह की खातिर आत्मा ने अनंत भव किये। देह की ममता खातिर अनंतानंत भव किये। आहा...! चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक, निगोद... वीतराग कहते हैं कि, जिसके दुःख सुने भी न जाये, और उस दुःख को भोगते समय देखनेवाले की आँख से आँसुओं की धारा निकलती है ! ऐसे दुःख प्रभु तूने अनंत भवों में (भोगा है)। लेकिन (ऐसा कुछ) है नहीं, ऐसा माननेवाले का भविष्य में क्या होगा, (ऐसा) नहीं माननेवाले को यह बात नहीं बैठेगी।

प्रभु ! लेकिन तू तो आत्मा है न नाथ ! अनादि अनंत आत्मा हो ! शरीर छूटेगा लेकिन तेरा आत्मा छूटेगा भविष्य में ? आत्मा तो भविष्य में भी आत्मरूप रहेगा तो वह कहाँ रहेगा ? प्रभु ! वह कहाँ जायेगा ? यह छोड़कर उसका स्थान कहाँ होगा ? उसका धाम कौन-सा होगा ? अगर आत्मा को राग से (और) पर से भिन्न जाना होगा तो उसका स्थान भविष्य में भी आत्मा में रहेगा और अगर शरीर को, राग को अपना माना होगा (तो) भविष्य में मिथ्यादृष्टि में, दुःख में रहेगा। आहा...हा...! यह देह तो अमुक काल पर्यंत

रहेगी। फिर आत्मा तो अनादि अनंत है, उसका तो नाश होनेवाला है नहीं। आहा...हा...! कठिन बात है।

वही कहते हैं। `**देह के लिये अनंत भव व्यतीत हुए;...**' देह की ममता और वाणी की ममता खातिर, प्रभु ! तेरे अनंत भव हुए। `**अब, संत कहते हैं,...**' तेरी सत्ता अंदर में भिन्न है, ऐसा संत कहते हैं। `**अब, संत कहते हैं कि अपने आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर।**' आहा...हा...! आत्मा के खातिर एकबार अंदर जा ! तेरा हित वहाँ है। बाहर किसी पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल में प्रभु ! तेरा हित नहीं है। आहा...! तुझे न जचे, न रुचे, परंतु आखिर में रुचि करनी ही होगी। अगर हित करना (हो तो) यह (कार्य) करना ही होगा। बाहर में कहीं भी रंचमात्र भी सुख नहीं है। आहा...हा...! है ? `**आत्मा के लिये यह जीवन अर्पण कर।**' आहा...हा...!

निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे, परंतु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर का कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं।।५३।।

(५३ वाँ बोल) `**निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।**' क्या कहते हैं ? अंतर में जिसने राग से और शरीर

से भिन्न (आत्मा को) पिछाना, ऐसे निवृत्तिमय आत्मा को रागादि प्रवृत्ति रुचती नहीं। आहा...हा...! राग आता है, होता है जरूर परंतु रुचता नहीं, ऐसा कहते हैं, देखा ? `**निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।**' (अर्थात्) पुण्य और पाप भाव की प्रवृत्ति (निवृत्तिमय आत्मा को नहीं रुचती)। आहा...हा...! शरीर की प्रवृत्ति तो शरीर में रही। आत्मा की पर्याय में (वह है नहीं) आहा...हा...! ये शरीर, कर्म, स्त्री और कुटुंब तो तेरी पर्याय में भी नहीं हैं। क्या कहा इधर ?

तेरा जो त्रिकाली चैतन्यद्रव्य है उसमें तो वह चीज़ है नहीं परंतु तेरी वर्तमान दशा, वर्तमान पर्याय, वर्तमान हालत जो है उसमें शरीर, कर्म, स्त्री-कुटुंब - ये तो तेरी पर्याय में (भी) हैं नहीं। समझ में आया ? वे तो अपने स्थान में हैं। तेरी पर्याय में भी नहीं। शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, आबरू, कीर्ति, मकान - ये तो तेरी पर्याय में (भी) नहीं हैं। परद्रव्य (अपनी) पर्याय में कैसे आये ? परद्रव्य तो परद्रव्य में है। आहा...हा...! तेरी पर्याय में - अवस्था में तो राग-द्वेष और अज्ञान है। आहा...हा...! समझ में आया ?

भगवान ! अंदर द्रव्य, गुण, पर्याय के नाम भी ठीक से सुने न हो ! द्रव्य किसे कहें ? गुण किसे कहें ? पर्याय किसे कहें ? द्रव्य तो अनंत गुणों का पिण्ड वह त्रिकाल द्रव्य और इस द्रव्य की शक्ति - स्वभाव - गुण है वह गुण, और उसकी बदलती-पलटती अवस्था सो पर्याय। इस पलटती अवस्था में शरीर, कर्म, स्त्री और कुटुंब इसमें है नहीं। द्रव्य, गुण में तो नहीं परंतु तेरी पर्याय में भी ये सब हैं नहीं ! आहा...हा...! ऐसी बात ! ये सब शरीर, चश्मा, हड्डियाँ और कपड़े, ये सब तो आत्मा की पर्याय में भी नहीं हैं। क्या कहा समझ में आया ?

आत्मा की जो वर्तमान दशा है, भले ही (उसमें) पुण्य-पाप की प्रवृत्ति हो, यह पुण्य-पाप की प्रवृत्ति तेरी पर्याय में है जबकि ये शरीर, वाणी, कर्म और ये सारी चीज़ें तो तेरी पर्याय में भी नहीं हैं। आहा...हा...! अपनी पर्याय में जो वस्तु है नहीं उसे अपनी मानना (यह) बड़ा बावलापन है !

यहाँ तो कहते हैं कि, पर्याय में पुण्य, पाप और अज्ञान है (उसे) भी अपना मानना वह मिथ्यात्व है, फिर जो चीज़ पर्याय में भी नहीं है - शरीर, कर्म, पैसा, आबरू, कीर्ति, धूल, स्त्री, कुटुंब, परिवार ये सब तो आत्मा की पर्याय से बाहर हैं (उन्हें अपना मानना वह तो महा मिथ्यात्व है) ! आहा...हा...! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, प्रभु ! लेकिन वस्तु तो बहुत सूक्ष्म है !

प्रभु ! तू द्रव्य, गुण और पर्याय - तीन में हो। द्रव्य माने त्रिकाली चीज़, गुण नाम उसकी शक्ति और स्वभाव। पर्याय मतलब बदलती अवस्था। इस अवस्था में शरीर नहीं, कर्म नहीं, मकान नहीं, आबरू नहीं, पैसा नहीं, स्त्री नहीं, कुटुंब नहीं - पर्याय में ये चीज़ें हैं ही नहीं। आहा...हा...! पर्याय में है तो इतना है कि 'ये मेरे हैं,' 'मैं उसका हूँ' ऐसी मिथ्यादृष्टिपने की (मान्यता) पर्याय में है। आहा...हा...! भाषा तो सादी है। समझ में आये ऐसा है।

ये सारी चीज़ों की हयाती आत्मा के द्रव्य-गुण में तो नहीं है, आत्मा जो त्रिकाली द्रव्य और गुण में तो इसकी पर्याय भी नहीं है। क्या कहा ? आत्मा त्रिकाली द्रव्य (है) और उसमें त्रिकाली गुण (है)। आनंदादि त्रिकाली गुण (है)। उसमें इसकी वर्तमान पर्याय भले ही निर्मल या रागादि(रूप हो), परंतु वह पर्याय भी द्रव्य-गुण में नहीं है। पर्याय नाम उसकी अवस्था अवस्था में है। इस अवस्था में शरीर, वाणी, मन, कर्म आदि हैं नहीं, तो स्त्री, बच्चें, कुटुंब

तो कितने दूर रह गये ! तेरी पर्याय में वे कभी आते भी नहीं। आहा...हा...! जो पर्याय में नहीं है उसे अपना मानना यह तो महा मिथ्यादृष्टिरूप पागलपन - बावलापन है। यहाँ तक कि पर्याय में राग-द्वेष और अज्ञान है उसे भी अपना मानना वह मिथ्यात्व और अज्ञान है। आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं, '**निवृत्तिमय जीवन में...**' (यानी कि) राग से मैं भिन्न हूँ, ऐसा जिसका अंतर (में) निवृत्तिमय जीवन हुआ, उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। उसे अंदर में राग और द्वेष के परिणामरूप प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बाहर की प्रवृत्ति तो कर ही नहीं सकता। यह व्यवसाय कर सकता होगा कि नहीं ? नहीं ? ये कपड़े के लाखों का व्यापार, दस-दस, बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस लाख के कपड़े से बड़ी अलमारियाँ भरी हो, लाखों का व्यापार चलता हो, यह आत्मा की पर्याय में होगा कि नहीं ? राग है, वह चीज़ नहीं है। चीज़ तो दूर है। 'यह मेरा है' ऐसा राग उसकी पर्याय में है। आहा...हा...! बातें ही अलग प्रकार (की) हैं, बापू !

यहाँ तो आ पहुँचे हैं, आफ्रिका में कहाँ से कहाँ !?

मुमुक्षु :- अहोभाग्य हमारे !!

पूज्य गुरुदेवश्री :- आपकी भावना थी। कुदरत ने चाहा सो बना। यह बनने का काल है। जिस क्षेत्र से स्पर्श होना (है) उसमें कुछ अन्यथा नहीं हो सकता। जिस क्षेत्र में जो पर्याय आनेवाली है वह क्षेत्र तीन काल में बदलना संभव नहीं। यह (पर्याय) चाहने पर नहीं होती। आहा...हा...! जिसको शास्त्र 'क्षेत्र स्पर्शना' कहते हैं। स्पर्शना का अर्थ छूना नहीं। परंतु जिस क्षेत्र में जाना होता है वहाँ वह जाता ही है। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! तेरी पर्याय में भी जब शरीर, वाणी,

कर्म और स्त्री, कुटुंब, परिवार या पति-पत्नी ये कुछ भी (तेरी) पर्याय में नहीं हैं, प्रभु ! पर्याय में तो है कि, `ये मेरे हैं,' `मैं उनका हूँ' ऐसी मिथ्या भ्रांति तेरी पर्याय में है। आहा...हा...! (तो फिर) इस भ्रांति की पर्याय का एकबार छेद कर डाल न ! प्रभु ! ऐसा अवसर बार-बार मिलना मुश्किल है, नाथ ! ऐसा मनुष्यत्व मिलना दुर्लभ है ! इसमें भी सच्चा सत्समागम और वीतराग जिनवाणी का मिलना यह तो महा मुश्किल है !! आहा...हा...!

एकबार तो कहते हैं कि, `**निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।**' जिसको राग और द्वेष, पर्याय में होने के बावजूद भी द्रव्य की दृष्टि से उसमें है नहीं, ऐसा जिसका सम्यक् जीवन हो गया, उसे राग की प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता। पर की क्रिया की प्रवृत्ति (का) कर्ता तो अज्ञानी भी नहीं है। कपड़े का व्यापार और ये कपड़े इधर से उधर करना, अलमारी में जँचाना, ये सारी क्रियाएँ आत्मा कर सकता नहीं। सिर्फ `ये मेरा और मैं इसे कर सकता हूँ' ऐसी विभ्रमणा उसकी पर्याय में है। लेकिन जिसने इस विभ्रम को टाला ऐसे निवृत्तिमय जीवन में प्रवृत्ति का राग आये तो भी जँचता नहीं, सुहाता नहीं, रुचता नहीं, दुःखरूप लगता है। जैसे छुरी (का) घाव पड़ता हो, शरीर पर जैसे छुरा चलता हो; वैसे निवृत्तिमय जीवनवाले को राग और द्वेष के परिणाम छुरे के प्रहार जैसे दुःख(रूप) लगते हैं !! आहा...हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु ! यह नायरोबी शहर में ऐसी बातें !! बिना भाग्य के बापू ! यह मिले ऐसी नहीं है !! आहा...हा...!

भगवानआत्मा ! त्रिकाल निवृत्तमय है। द्रव्य है सो तो त्रिकाल निवृत्तमय ही है। पर्याय में राग होता है, (परंतु) पर्याय में पर वस्तु नहीं है। पर्याय में राग भले ही हो परंतु द्रव्य में वह नहीं है।

द्रव्य तो त्रिकाल निरावरण है। ऐसे निरावरण (द्रव्य की) दृष्टि हुई उसे प्रवृत्तिमय जीवन नहीं सुहाता।

(अब कहते हैं कि) `**शरीर का रोग मिटना हो तो मिटे,...**' आहा...हा...! समकिती को निवृत्त जीवन है, उन्हें शरीर में रोग आये वह मिटना हो तो मिटे ! इसकी उन्हें चिंता होती नहीं ! आहा...हा...! (क्योंकि) वह मेरी वस्तु नहीं है। मेरी नहीं है उसमें जो होना हो सो हो। मुझे क्या है ? आहा...हा...!

राजा महल में रहता हो और पास में किसी की झोंपड़ी जलती हो तो इससे उन्हें दुःख होगा क्या ? वह झोंपड़ी उसकी है - किसी गरीब की है, उसका होगा ! मेरा मकान तो कोई जल नहीं रहा। वैसे शरीर, मन, वाणी में कोई भी रोग आदि आयें... आहा...हा...! रोग मिटे या न मिटे इसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती। बहुत सूक्ष्म है, प्रभु !

यह तो बहिन को अंदर से (आया है)**। ६४ ब्रह्मचारी बहिनें-बेटियाँ हैं। उनके बीच ये बोले थे जिसमें ये सब आ गया है। बहिन तो अभी एक `पवित्र मूर्ति' हैं !! हिन्दुस्तान में स्त्री में दूसरा ऐसा जीव मिलना मुश्किल है !! ऐसा वह जीव है ! ऐसे ही कोई संस्कार लेकर आयें हैं कि उन्हें कहीं भी नहीं सुहाता। वे भगवान की भक्ति में बैठे और उल्लास दिखे, लेकिन अंदर में रुचता नहीं !! आहा...हा...! अरे...! बहिन यहाँ आ न सकें ! डॉक्टर ने मना किया कि, बाहर घूमना नहीं है। आहा...! इसलिये यहाँ से पहले अब सोनगढ़ जाना पड़ेगा। लोगों की बहुत भावना है लेकिन बहिन आ सके नहीं। इसलिये बीच में - महीने-सवा महीने का विरह हो गया ! इसलिये पहले तो मुंबई होकर सोनगढ़ जाना पड़ेगा। फिर दूसरी ज़गह** (जाना होगा)**।**

बड़ौदा में मंदिर होनेवाला है। बड़ौदा में मंदिर हुआ है। उसका फागुन सुदी-१३ का मुहूर्त है। वहाँ जाना पड़ेगा, ऐसा अभी लगता (है)। इससे अठारह मील दूर हमारा व्यापार का गाँव, `पालेज' था, वह पालेज के पास है (वहाँ) बच्चे लोग हैं। वे लोग भी बेचारे दो-चार दिन की माँग करते हैं तो जाना पड़ेगा !! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, कौन कहाँ जाये ? कौन कहाँ रहे ? यह तो शरीर की स्थिति जहाँ रहनेवाली हो वहाँ रहती है और नहीं रहनेवाली हो वहाँ नहीं रहती। आत्मा शरीर को ले जाये या आत्मा शरीर को जाने से रोक ले, यह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है। आहा..हा...! ऐसा सुनना मुश्किल पड़े ! (फिर भी) बहिनें-बेटियाँ सब उत्साहपूर्वक सुनते हैं ! आदमी लोग भी उत्साहपूर्वक सुनते हैं। आहा...! ऐसी बात है, प्रभु !

एकबार `हाँ' तो कर ! `हाँ' करेगा तो हालत होगी। सत्य यही है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है, ऐसी अगर अंदर से `हाँ' आयेगी तो `हाँ'में से `लत' होकर `हालत' नाम पर्याय होगी !! `हाँ' में से `हालत' होगी ! लेकिन `ना'में से नरक होगा !! `ना' करेगा तो नरक और निगोद होंगे। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है, प्रभु !

बहिन की भाषा संक्षेप में है परंतु उसमें गहराई बहुत है !! आहा...!

(यहाँ कहते हैं, शरीर में रोग आये) `**परंतु उसके लिये प्रवृत्ति नहीं सुहाती।**' शरीर में रोग आये तो उसे मिटाने की प्रवृत्ति भी नहीं सुहाती। आहा...हा...! `**बाहर का कार्य उपाधि लगता है,...**' बाहर के जितने भी काम (हैं वे) सब उपाधिरूप लगते हैं। `**रुचता नहीं।**' आहा...हा...! अंतर में उसे रुचता नहीं। राग और पुण्य-पाप के विकल्प से प्रभु ! तू भिन्न है। उसे एकबार रुचि में ले तो सही ! जरूरत तो पैदा कर !

बनिये को व्यापार में पाँच रुपया मन माल मिलता हो और यदि साढ़े पाँच - छः (रुपये) में बिकता हो जब तो लायेगा, तो उसे पुसाता है। लेकिन पाँच रुपये में लाकर यहाँ चार में बिकता हो और पाँच भी अगर नहीं मिलते हो, ऐसा माला लायेगा क्या ? वह बनिये को पुसायेगा ? पाँच रुपया का मन भले ही सौ मन (लाये) या हज़ार मन लाये, लेकिन यहाँ अगर छः रुपया उपजता हो या साढ़े पाँच उपजते हो तो लायेगा।

वैसे अंदर आत्मा को... आहा...हा...! राग और पुण्य-पाप रुचते नहीं, उसे सुहाते नहीं। उसको तो आत्मा ही पुसाता है। आत्मा पुसाता है। आहा...हा...! बात सूक्ष्म, प्रभु !

तेरी प्रभुता की बात क्या करे नाथ ! अंदर भगवत् स्वरूप है ! परंतु अभी ये बातें बहुत कम हो गई, बदल गई। प्रवृत्ति में सर्वस्व मान लिया। अतः अंदर में निवृत्तिमय कौन है ? इस तत्त्व की बात ही गुम हो गई ! आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, `**बाहर का कार्य उपाधि लगता है, रुचता नहीं।**' आहा...हा...!

अनुकूलतामें नहीं समझता तो भाई ! अब प्रतिकूलतामें तो समझ ! किसी प्रकार समझ... समझ, और वैराग्य लाकर आत्मा में जा।।५४।।

५४ (वाँ बोल) `**अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई ! अब प्रतिकूलता में तो समझ** !' शरीर में रोग आये, साँस चढ़े, घाव हो,... आहा...हा...! अंदर में रोग के समय चिल्लाता हो, रोम-रोम चीखता हो ! शरीर वैसा का वैसा पड़ा हो लेकिन भीतरमें से अंगारे उठे... ऐसे अंगारे उठे...! इस शरीर में (अगर) अग्नि जैसे जले, लेकिन अंदर आत्मा का यदि ज्ञान करे तो, अगर अनुकूलता में नहीं समझता तो प्रतिकूलता के वक्त तो समझ (कि) ऐसी स्थिति जो आकर खड़ी है वह जड़ की है मेरी नहीं। मेरी वज़ह से नहीं हुई। वह तो अपने कारण से क्रमबद्ध अवस्था में (अपने) कारण से वह अवस्था हुई है। मेरे में वह है नहीं। आहा...हा...!

शरीर में कीड़े पड़े ! एकबार कहा था न ? एक अठारह साल की बाई थी। दो साल शादी को हुए थे। उसके पति की वह दूसरी (स्त्री) थी। हमारे साथ तो वहाँ कइयों का परिचय (है)। ऐसे में उसे शीतला निकला। `शीतला' समझते हो ? इस शीतला में दाने-दाने में कीड़े पड़ गये ! दाने-दाने जीव उत्पन्न हो गये ! कीड़े ! पूरे शरीर में...! अठारह साल की उम्र ! (उसको) गद्दे पर सुलाया था। एक तरफ घुमाये तो हज़ारों कीड़े, दूसरी ओर घुमाये तो उस तरफ हज़ारों (कीड़े बाहर गिरे) !! वे (कीड़े) अंदर काटे...! वह (अपनी माँ को कहती है) `माँ !...' ऐसे बोलती थी। लाठी (गाँव) की बात है। है कोई लाठी के ?' धीरुभाई के घर के बगल में - बहुत साल (पहले की) बात है। बाई को कीड़े पड़ गये थे वह (कहती है,) `माँ ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये ! यह क्या आया है ? मेरे से सहन नहीं होता ! सोया नहीं जाता, फिरा नहीं जाता, रहा नहीं जाता, करवट बदल नहीं सकती। शरीर पड़ा हो तब कीड़े काटते हैं !' आहा...हा...! पूरे

शरीर में, (फिर तो) देह छूट गई।

ऐसे दुःख आये तो भी कहते हैं, समकिती को इसकी दरकार नहीं रहती ! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! जिसने जीव को राग और शरीर से भिन्न जाना उसके शरीर में ऐसे कीड़े पड़े... कोई (ऐसा) अशाता का उदय आये... आ...हा...हा...! तो भी उसकी प्रवृत्ति करना भी रुचता नहीं, सुहाता नहीं। आ...हा...हा...! है ?

`**अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई ! अब प्रतिकूलता में तो समझ ! किसी प्रकार समझ... समझ, और वैराग्य लाकर आत्मा में जा।**' आहा...हा...! शरीर में रोग आये तो उस प्रतिकूलता के समय प्रभु ! एकबार ऐसे अंदर में जा न ! अंदर भगवान विराजमान है ! अरे ! कैसे माने ? अभी तो एक अंक लिखना नहीं आता, इसको ये सारी बातें (कैसे) समझ में आये ? समझनी होगी, प्रभु ! वरना यह भव चला जायेगा। शरीर का नाश होकर श्मशान की राख होगी !! इसकी तो राख (होनेवाली है) ! यहाँ से अग्नि निकलेगी !! आहा...! यह (शरीर) कोई सोने का नहीं है, सोना हो तो भी क्या ? आहा...हा...! मैं शरीर से भिन्न (हूँ ऐसा) प्रभु ! एक बार नक्की कर ! नक्की करके शरीर में दुःख आये तब तो समझ ! अनुकूलता में नहीं समझता तो प्रतिकूलता में तो समझ, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

बापू ! दूसरों को (प्रतिकूलता) है ऐसा मानकर, मुझे नहीं आयेगी ऐसा मत समझना। समझ में आया ? ऐसी अवस्था प्रभु ! अनंतबार तेरी भी हुई है। उसे तू भूल गया। भूल गया इसलिये नहीं था ऐसे कैसे कहना ? नाथ ! पूर्व में अनंतबार प्रतिकूलता आयी है। ऐसी आयी है कि रोटी का टुकड़ा भी न मिले और शरीर में लट-कीड़े पड़े हो, फिर भी देह छूटे नहीं, पाँच-पच्चीस साल रोग

में ही रहना पड़े। अब ऐसे वक्त तो आत्मा को भिन्न मान ! ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! है न ?

`**वैराग्य लाकर आत्मा में जा।**' आहा...हा...! पर के प्रति वैराग्य लाकर, स्व जो चैतन्य का घर है, उस निज घर में जा ! पशु को (गाय आदि) को सुबह बाहर ले जाते हैं और शाम को जब वह प्राणी घर आते हैं (तब) अगर दरवाजा बंद हो तो दरवाजे से सर पटकेगा ! देखा है कि नहीं ? गाँव के बाहर चराने ले जाते हैं कि नहीं ? इसमें कभी (शाम को वापसी के) समय घर में बहिनों को पता न हो कि आये हैं, दरवाजा बंद हो तो सर पटकेगा ! क्योंकि यहाँ चार प्रहर रात को चैन से रहना है। इस हेतु से सर पटकता है फिर आराम से अंदर रहता है ! (वैसे यहाँ कहते हैं) अरे ! तुझे प्रतिकूलता आयी है तो सर पटक न एक बार !! (अंदर जाने का प्रयत्न कर न !) और अंदर निवृत्तिमय (स्वरूप में) जा न ! ऐसा कहते हैं।

`**वैराग्य लाकर...**' आहा...! यहाँ तो ऐसी बात है, प्रभु ! वैराग्य लाकर एक बार तो अंदर में देख ! वहाँ प्रभु विराजमान है ! तू भगवंत स्वरूप है, प्रभु ! मुनिराज तुझे `भगवान' कहकर तो बुलाते हैं ! है ? उसमें (`समयसार' में) ७२ वीं गाथा में है। `भगवान' कहकर बुलाया है। तीन बार `भगवान' कहकर बुलाया है। आहा...हा...! भगवान तू तो पुण्य-पाप के मैल से रहित हो न नाथ ! ऐसा वहाँ कहा है। है उसमें ?

प्रभु ! पुण्य-पाप के भाव है वह तो अशुचि और मैल है न, प्रभु ! तू ऐसा नहीं। भगवान ! तू तो निर्मल है न अंदर ! वहाँ नज़र तो कर नाथ ! आहा...हा...! मुनिराज जगत के प्राणी को `भगवान' कहकर संबोधन करते हैं ! आहा...हा...!

`द्रव्य संग्रह' का एक बार नहीं कहा था ? `द्रव्य संग्रह !' धर्मध्यान का `अपाय' एक भेद है। धर्मध्यान का विचार करने पर `अपाय' एक भेद है। इसमें धर्मध्यान का विचार करनेवाला ऐसा सोचता है कि, मैं तो परमात्मा हूँ ही। आत्मज्ञान हुआ है, अल्प काल में अब सिद्ध होनेवाला हूँ !! तो `**हे आत्माओं ! आप सभी परमात्मा होओ।**' ऐसी बात है, लीजिये यह ! आ...हा...हा...हा...! `द्रव्यसंग्रह' (में) है। `द्रव्यसंग्रह' में बताया है न ! `द्रव्यसंग्रह' ऐसा है। `आप भगवान होओ ! प्रभु ! यह भूल जाईये (कि) देह-स्त्री का, नपुंसक का और पशु का' - ये देह तो जड़ की हैं, भूल जा नाथ ! अंदर चैतन्य आनंद का सागर भगवान विराजता है, इसकी ओर कभी देख तो सही ! अरे तू ही पूर्ण परमात्मा (हो) ! तेरे गुणगान गाते हुए तो परमात्मा थक जाते हैं !! आहा...हा...! अरेरे...! सुनना मुश्किल पड़े ! प्रभु ! वहाँ तू एक बार देख तो सही ! नज़र तो कर !

वही यहाँ कहते हैं, `**वैराग्य लाकर आत्मा में जा।**' यह ५४ वाँ हुआ।

चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है।।५५।।

५५ (वाँ बोल) `**चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती,...**' क्या कहा ? भगवान चैतन्यस्वरूप की जिसको अंदर लगन लगी, भावना (हुई) वह निष्फल नहीं जाती। बीज बोया वह निष्फल नहीं जाता। बीजमें से वृक्ष होता है, अवश्य होता ही है। बीज बोया वह निष्फल नहीं जाता। वैसे जिसने आत्मा का सम्यक्‌रूपी बीज बोया, सम्यक् भावना की वह निष्फल नहीं जाती। `**सफल ही होती है।**' बीज बोया इसमें से वृक्ष होता ही है और इससे असंख्य गुने फल आयेंगे। बाजरा का बीज एक हो लेकिन उसकी बाल में सैंकड़ों बाजरे के दाने होते हैं। वैसे एक बार तेरे आत्मा (में) आनंद का बीज बो दे तो अनंत आनंद की तुझे (प्राप्ति होगी) !! आहा...हा...! प्रभु ! तुझे अनंत आनंद आयेगा। आहा...हा...! है ?

`**सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे,...**' धीरे... धीरे... धीरे... अंदर जाने में थोड़ा समय लगेगा, परंतु ऐसा करने में लगा रहे ! `**किन्तु भावना सफल होती ही है।**' अंतर की भावना जो है वह सफल हुए बिना नहीं रहती। आहा...हा...!

जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया, रुक गया; रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। अरे ! विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा ! बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई ! वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी।।५६।।

५६ (वाँ बोल)। अब एक बात करते हैं। `**जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता,...**' एक वस्तु खो गई हो तो मंथन करता है कि कहाँ गई ? आहा...हा...! एक वस्तु खो गई हो तो इसे (खोजने की मेहनत) करेगा। अरे...! दो-तीन बेटियाँ हो, तीन-चार बच्चे हो और इनकी खाट बिछायी हों, ऐसे में (रात के) नौ-दस बजे एक खाट खाली दिखे (तो पूछे) कि, यह लड़की क्यों नहीं आयी ? कहाँ है ? खाट क्यों खाली पड़ी है ? लड़की क्यों नहीं आयी ? उसे रात को ही ढूँढ़ेगा ! लेकिन यह आत्मा खो गया है उसे तो ढूँढ़ता नहीं !! वस्तु खो गई उसे ढूँढ़ने के लिये रात-दिन एक करता है जबकि वह पर चीज़ है। आहा...हा...!

(वही यहाँ कहते हैं कि) `**जीव स्वयं पूरा खो गया है वह नहीं देखता, और एक वस्तु खो गई तो मानों स्वयं पूरा खो गया,...**' उसमें ही जैसे रुक गया ! रुककर वहीं का वहीं रह जाये। आहा...हा...! उसमें `**रुक गया;...**'

अब रुकने के स्थान बतलाते हैं। `**रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है।**' नाथ ! आहा...! लड़कियाँ बड़ी हो गई हैं, उसके लिये रिश्ता ढूँढ़ना होगा, बेटे बड़े हो गये हैं, अच्छे घर से रिश्ता करना है वरना अपनी आबरू नहीं रहेगी। अच्छे घराने से लड़की आवे तो ठीक ! उलझेगा तो ऐसा उलझेगा कि क्या बतायें !! बेटी को अच्छे घर बिदा करनी है और बेटे की शादी करते (वक्त) भी पचास-सौ रिश्ते आयें हों, (सामने करोड़पति हो और उसे) बेटा न हो और इकलौती बेटी पाँच-पच्चीस लाख लेकर आती हो तो उसका (रिश्ता) पहले (स्वीकार करेगा)। बड़ों का रिश्ता स्वीकार करेगा ! यहाँ कहते हैं तीनलोक के नाथ - बड़ा इनका रिश्ता तो एकबार स्वीकार कर !! आ...हा...हा...!

`रुपया, घर, शरीर, पुत्रादि में तू रुक गया है। अरे** ! **विचार तो कर कि तू सारे दिन कहाँ रुका रहा** !' कहाँ गया तू लेकिन ? **`बाहर का बाहर ही रुक गया, तो भाई ! **वहाँ आत्मप्राप्ति कैसे होगी ?**' बाहर में अटक गया, तो इसमें आत्मा कहाँ से प्राप्त होगा ? विशेष कहेंगे...!

करोड़ो रूपये खर्चे, मंदिर बनवाए, आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करे, पर ये तो शुभराग हैं। शुभराग है - वह क्लेश है, दु:ख है, आडंबर है। ऐसे आडंबर करो तो करो, परंतु सर्वज्ञ वीतराग देव ने जैसा आत्मा बतलाया है, उसकी प्राप्ति तो इनसे नहीं होगी। धर्म के नाम पर यह शुभ राग का ही रस है। परंतु ऐसे राग के रस द्वारा वीतराग स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। (परमागमसार-७३)

वचनामृत - ४१२ से ४१३   १३

मरण तो आना ही है जब सब कुछ छूट जायगा। बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दु:ख होता है, तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर तुझे कितना दु:ख होगा ? मरण की वेदना भी कितनी होगी ? `कोई मुझे बचाओ' ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परंतु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ? तू भले ही धन के ढेर लगा दे, वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-संबंधियों की ओर तू भले ही दीनतासे टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की प्रतीति-अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामें से शांति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभी से वह प्रयत्न कर। `सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारंबार स्मरण

में लाकर भी तू पुरुषार्थ चला कि जिससे `अब हम अमर भये, न मरेंगे' ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।।४१२।।

(वचनामृत) ४१२ (बोल)। (इस बोल में) वैराग्य की बात है। `**मरण तो आना ही है...**' देह का छूटने का समय निश्चित है। इसके समय में फ़र्क नहीं कर सकते। चाहे कितनी भी दवाई करा ले या डॉक्टर (बुलाये)। मृत्यु का समय क्रमबद्ध में जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस संयोग में देह छूटेगी सो छूटेगी, छूटेगी सो छूटेगी ही। उसमें एक समय (मात्र) का भी फेरफार करने में इन्द्र, जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। आ...हा...हा...! अतः मृत्यु का समय बदलने में तीन काल में किसी की ताकत नहीं है। आहा...!

`**बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है,...**' कहते हैं कि - बाहर की एक चीज़ छोड़ने से तुझे दुःख होता है (कि) अरेरे...! स्त्री छोड़ी, यह खाने का छोड़ा, मकान छोड़ा, घर छोड़ा, परदेश में गये... (वैसे) एक चीज़ छोड़ते वक्त तुझे दुःख लगता है। `**तो बाहर के समस्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव एकसाथ छूटने पर...**' आहा...हा...! बाहर के संयोग - द्रव्य-काल और भाव, एक समय

में सब छूट जायेगा। जिस समय छूटने का (है) उस समय छूट जायेगा। इसमें फेरफार करने में कोई समर्थ नहीं है। आहा...!

`**तुझे कितना दुःख होगा ?**' एक चीज़ छोड़ने में दुःख होता है (परंतु) सब छूट जायेगा ! इस देह का श्वास भी नहीं रहेगा। वह उसके हाथ में नहीं रहेगा। श्वास में भी चैतन्य के प्रदेश हैं। क्या कहा ? जो यह श्वास चलता है न ? (उसमें) केवल जड़ के परमाणु नहीं हैं, उसमें चैतन्य के प्रदेश हैं। श्वास अपने कारण से चलता है। आहा...हा...! यह श्वास चलता है न श्वास ? जड़ के परमाणु की पर्याय (है), परंतु उसमें आत्मा के प्रदेश हैं। लेकिन जब यह श्वास (भी) जब बंद होगा तब आत्मा के प्रदेश उसे चलाने का काम नहीं करेंगे। आहा...हा...हा...! जब श्वास चलाने का काम नहीं करेंगे वह और क्या करेंगे ? आहा...!

सारा दिन कर्ता... कर्ता... कर्ता... (होकर फिरता है)। यह मैंने किया... यह मैंने किया... यह मैंने किया... ये पैसे कमाये और ऐसा व्यापार किया और इतने नौकर इकट्ठे किये, नौकर अच्छे मिले ! क्या है यह ? यह भ्रमणा हुई है तुझे, कहाँ जाना है तुझे ? आहा...हा...!

परमात्मा तो ऐसा कहते हैं - जो मांस और दारू आदि का सेवन करे, शराब पीये, वे तो मरकर नरक में जायेंगे। इसमें कोई फेरफार होना संभव नहीं है। परंतु जिसको वह तो नहीं हो, किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ (आदि) कषाय हैं - धर्म नहीं है, आत्मज्ञान नहीं है और राग की मंदता भी नहीं है - ऐसे जीव मरकर तिर्यंच माने पशु होते हैं। आ...हा...हा...! यहाँ बड़ा करोड़पति हो वह भी मरने के बाद देह छूटकर घोड़े की कोख में या गाय की कोख में जाकर अवतार लेगा ! आ...हा...हा...! ऐसे मरण प्रभु ! अनंतबार

किये हैं। परंतु तूने अपनी चिंता की नहीं कि मेरा क्या होगा ? बाहर की बातों में उलझ गया। आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं `**तुझे कितना दुःख होगा ? मरण की वेदना भी कितनी होगी ?**' आ...हा...हा...! श्वास चले नहीं, अंदर से रोम-रोम चीखता हो ऐसी दुःख की तारतम्यता - दुःख की वेदना होगी। आहा...हा...! पहले से अगर चेत नहीं गया... क्रियाकाण्ड नहीं अपितु आत्मा को राग से भिन्न जानकर सत् चिदानंद प्रभु मेरा स्वरूप (है, ऐसा जानना होगा)। अनुभूति (स्वरूप) भगवानआत्मा ! सुबह आया था। अनुभूति(स्वरूप) भगवानआत्मा (एक) समय की (ज्ञान की) पर्याय में जानने में आता है, हरएक को जानने में आ ही रहा है। फिर भी जानने के प्रति उसका लक्ष नहीं है। आहा...हा...!

परमात्मा ऐसा कहते हैं कि उस-उस समय में आत्मा (ही जानने में आता है)। उसकी पर्याय का ऐसा धर्म है (कि) उसमें भगवानआत्मा ही जानने में आ रहा है। परंतु जीव उसकी ओर देखता नहीं है। जो जानने में आ ही रहा है उसे देखता नहीं है और जो नहीं जानने में आता है उसे ही देखकर मृत्यु करता है। आहा...! ऐसे-ऐसे अनंत बार तिर्यंच और नरक में अवतार किये और करेगा। वहाँ उसके पैसे, अरब या करोड़ (रुपये) उसे बचा नहीं लेंगे। दान किया होगा, (उसमें भी) अगर राग की मंदता की होगी तो थोड़ा शुभ(भाव) होगा। हालाँकि (वह भी) `निहाई की चोरी और सूई का दान' (जैसा है)। (अर्थात्) सारे दिन किये हुए पाप के आगे एक-दो घड़ी कुछ शुभभाव (किये होंगे) तो इसकी कोई खास गिनती नहीं है। वे शुभभाव निरर्थक जायेंगे।

प्रभु ! देह छूटने के पश्चात् कहाँ जायेगा ? (यहाँ) कहते हैं, मरण की वेदना भी अकथ्य (होगी)। `**कोई मुझे बचाओ**' (ऐसा तुझे

होता होगा)।

राजकोट में एक बार एक भाई को एकदम अंदर में कुछ हो गया। सारा कुटुंब इकट्ठा हुआ। सब करोड़पति लोग ! और अंदर में पीड़ा (की सीमा नहीं)। छोटी उम्र (थी), नई-नई शादी हुई थी... आँखमें से आँसुओं की धारा बह रही थी। किसीने कहा, `बुलाईये महाराज को !' आहा...हा...! ज़वान आदमी था ! (लेकिन) पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... सब करोड़पति कुटुंबी इकट्ठे हुए। पूरा घर भर गया और आँखों से आँसुओं की धारा चली जाय...! (बोलता था) `मेरे से सहा नहीं जाता, मुझे अंदर में इतनी वेदना है कि, क्या कहुँ ?' ऐसा कहते-कहते एकदम असाध्य हो गया। उनके भाई थे (उनको लगा कि इसके हाथ से) महाराज को कुछ दे तो कुछ पुण्य तो बांधे ! (इसलिए) उसके हाथ में मोसंबी या कुछ (ऐसा) दिया। लेकिन हाथ में कपकपी और अंदर में मरण की वेदना !! जवान आदमी... ऐसी वेदना बापू ! सही न जाये। बाहर से तुझे कोई मदद नहीं कर सकेगा। आहा...हा...!

ऐसे `**मरण की वेदना भी कितनी होगी ? `कोई मुझे बचाओ' ...**' आ...हा...हा...! ऐसे तू चीखता रहेगा। `**ऐसा तेरा ह्रदय पुकारता होगा। परंतु क्या कोई तुझे बचा सकेगा ?**' अरे...! कर्तव्य तो प्रभु...! राग से भिन्न होना यही कर्तव्य है, ऐसा अगर नहीं किया आहा...हा...हा...! कहाँ जाना ? सारा दिन जलन...! सारा दिन कर्ताबुद्धि ! यह किया और वह किया, यह किया...! बेटे के लिये ऐसा किया और बेटी के लिये ऐसा किया। बापू ! मृत्यु के वक्त दबाव में आ जायेगा !! तुझे दुःख को सहन करते हुए देखनेवाले रोयेंगे ! ऐसी पीड़ा जगत में अनंत बार हुई है। वही यहाँ कहते हैं (कि) तुझे कोई बचा सकेगा नहीं।

(राजकोट में तो) यह प्रत्यक्ष देखा था। सब बेचारे यूँ देखते थे। कुटुंबी करोड़पति सब इकट्ठे हुए थे। और इसकी तो मरने की तैयारी...! हाय... हाय...! आँसू की धारा बहे...! कौन बचाये प्रभु ? शरीर की स्थिति का छूटने का और वेदना का जो समय (है), उसमें कोई फेरफार कर सकता नहीं। कोई बचा सकता (नहीं)।

`**तू भले ही धन के ढेर लगा दे,...**' करोड़ों रुपये की लक्ष्मी इसके लिये खर्च कर दें (तो भी) वह कोई दुःख से नहीं छूट सकेगा। आहा...हा...! `**वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें,...**'

मुमुक्षु :- (डॉक्टर लोग) हररोज कइयों को बचाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वही बात करते हैं। किसीको बचा सकते नहीं। आ...हा...हा...! यह बात अंदर में प्रतीतिपूर्वक ग्रहण होनी चाहिए हं...! ऊपर-ऊपर से बात करे इसमें कुछ नतीजा नहीं आता ! आहा...हा...!

यहाँ तो बहिन ने वैराग्य की बात करते हुए यह बात ली है। अरे...! `**तू भले ही धन के ढेर लगा दे,...**' ये करोड़ (रुपये) दे दूँ, अगर कोई डॉक्टर बचा ले तो ! एक घड़ी का इतना पैसा दे दूँ - पाँच लाख-दस लाख (दे दूँ) (अगर) कोई बचा ले (तो) ! उस वक्त बचाने के लिए कोई समर्थ नहीं है। तेरे अरबों (रुपये) के ढेर पड़े होंगे, (परंतु तेरी यह) धूल भी बेकार जायेगी। मरकर चला जायेगा पशु में !! मांस और दारू का सेवन अगर नहीं किया होगा तो भी मृत्यु के बाद पशु में जायेगा।

सिद्धांत में ऐसा लेख है कि अधिकांश जीव तिर्यंच - पशु में अवतार लेंगे ! क्योंकि धर्म नहीं है (यानी कि) सम्यग्दर्शन नहीं है, और सारा दिन पाप किये हैं, पुण्य का भी ठिकाना नहीं है, एक-दो घड़ी पुण्य किया हो तो भी बाद में २३ घण्टे पाप (किये

हो) ! आ...हा...हा...! वे (सब) मरकर ढोर में - पशु में - तिर्यंच में अवतार लेंगे ! मनुष्य की बड़ी संख्या मरकर तिर्यंच में अवतार लेगी - ऐसा सिद्धांत में लेख है। आहा...हा...! पशु होगा, फिर मनुष्यत्व कब मिलेगा ? कब उसे जिनवाणी सुनने मिलेगी ? (फिर आत्महित करने का) अवसर उसे नहीं रहेगा। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, `**वैद्य-डाक्टर भले सर्व प्रयत्न कर छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे-संबंधियों...**' यह तो सब प्रत्यक्ष देखा हुआ ! आ...हा...हा...! सगे-संबंधियों से पूरा कमरा भरा था। वह तो रो रहा था और मरने की तैयारी ! आहा...हा...! नई-नई शादी की थी लेकिन दुःख का पार नहीं...! धर्म किया नहीं था, धर्म सुनने के योग में दरकार (की) नहीं। दो घड़ी शायद कहीं गया भी हो तो पीछे २३ घण्टे होली सुलगती हो !! आहा...हा...! उन २३ घण्टे के पाप के आगे तेरे दो घड़ी के पुण्य नष्ट हो जायेंगे। सूक्ष्म बात है, प्रभु !

वही यहाँ कहते हैं, `**आसपास खड़े हुए अनेक सगे-संबंधियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे,...**' आ...हा...हा...! `एक रे दिवस एवो आवशे...' आहा...! `एक रे दिवस एवो आवशे' तब तेरी ओर कोई देखेगा नहीं। आहा...! स्त्री ऐसे देखेगी... अरेरे...! इस काया में अब कुछ नहीं रहा। ऐसे फूट-फूटकर रोयेगी...! फिर भी एक समय का इसमें फेरफार संभव नहीं है। आहा...हा...! `एक रे दिवस एवो आवशे, जाणे जन्म्या ज नहोता जी, सगी रे नारी रे तारी कामनी, ए उभी टग-टग जोशे जी, आ रे कायामां हवे कांई नथी, एम ध्रुसके-ध्रुसके रोशे जी...' देह से भिन्न (आत्मा का) ज्ञान किया नहीं और देह की, राग की एकताबुद्धि में जिंदगी गुजारी...! भले ही (शास्त्र की) जानकारी की

हो, क्रियाकाण्ड किये हो - वह कुछ भी शरणभूत नहीं है। शुभभाव किये हो तो पुण्य के परमाणु बँधे होंगे, जबकि वर्तमान में तो शुभभाव है नहीं। मृत्यु के पूर्व में पुण्य-पाप किये हों उन परमाणुओं की स्थिति होती है, वे परमाणु क्या शरण देंगे ? आ...हा...हा...! समझ में आया ?

अब तो `समयसार' पर स्वाध्याय चलेगा। इसलिये अंतिम बात यह बहिन के वचनामृत की ले ली। कल सुबह तो व्याख्यान नहीं है। दोपहर में `समयसार' पर चलेगा। आहा...हा...!

`**सगे-संबंधियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ?**' आ...हा...हा...! वे (सब) देखेंगे कि, यह अब नहीं बचेगा। खलास...! वे खड़े-खड़े देखेंगे और रोयेंगे। और वह रोना भी जीव मरकर कहाँ गया होगा ? इसलिये नहीं रोते। वह मरकर किस गति में गया ? पशु में या नरक में (गया) इसके लिये नहीं रोते ! उसकी अपनी वर्तमान अनुकूलता छूट गई, उसकी तरफ से जो भी अनुकूलता मिलती थी, इसके लिये वह रोता है ! आहा...हा...! किसीने ऐसा पूछा कभी कि, यह मरकर कहाँ गया होगा ? ऐसा विचार किया है कभी किसी की मृत्यु पर ? यह तिर्यंच में गया या एकेन्द्रिय में गया या वनस्पति में गया ? आ...हा...हा...! ऐसा किसी की मृत्यु पर विचार किया है ? आ...हा...हा...! सिर्फ बस ! दुकान सँभालता था और विषय में अनुकूल था, वह अनुकूलता चली गई इसलिये रोता है। वह चाहे नरक में गया हो तो भी मुझे कहाँ (नरक में) जाना है !! आहा...हा...हा...! वह मरकर नरक में गया होगा कि तिर्यंच में गया होगा - कभी ऐसा विचार किया है ? पत्नी मरी, लड़का मरा, लड़की मरी, बहुएँ मरी... वे मरकर किस

ज़गह उत्पन्न हुई होगी ? इसका विचार किया है कभी ? हमारी अनुकूलता गई उसके लिये रोता है !! वह भले ही नरक में गया हो, तिर्यंच में - पशु में गया हो...! आहा...हा...! ऐसी संसार की स्थिति है !!

ऐसे में अगर यह आत्मा की भावना (नहीं की), राग से भिन्नता के संस्कार (ग्रहण) नहीं किये... आहा...हा...! विकार के वेदन से प्रभु के आनंद का वेदन भिन्न है, ऐसे संस्कार अगर (प्राप्त) नहीं किये (तो) प्रभु ! गति बिगड़ जायेगी ! वहाँ किसीका सहारा या साथ नहीं है। वहाँ जगत की सिफारिश काम नहीं आयेगी कि, भाई ने ऐसा-ऐसा किया था, हमारा इतना किया था, हमारा (उतना) किया था, हमारी ज्ञाति में अग्रेसर था, हमारा प्रमुख था, हमारा फलाँना था - वहाँ ऐसी कोई सिफारिश काम आये ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...! वह मरकर अकेला तड़पता... तड़पता छूटकर चला जायेगा !

देह, राग और आत्मा तद्न भिन्न है ऐसे संस्कार जिसने ड़ाले नहीं, (आत्मा का) अनुभव तो भले ही न हो, परंतु संस्कार भी जिसने नहीं डाले, आहा...! बाह्य अनुकूलता की चीज़ में ठीकपना कर-करके भटकता रहा है।

वही यहाँ कहते हैं, `**टुकुर-टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है ? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की...**' आ...हा...हा...! करना तो यह है। लाख बात की बात...! छः ढाला में आता है। `लाख बात की बात, निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आत्म उर ध्यावो' - इसके बिना सब थोथा ही थोथा (है)। रो-रोकर - मरकर सब जायेंगे पशु में !! आहा...हा...! आर्य मनुष्य होने से मांस और दारू का सेवन तो

प्रायः नहीं किया हो इसलिये बीचवाली दशा - पशु-तिर्यंच-ढोर की होगी। अनंतकाल पश्चात् फिर उसमें से मनुष्यत्व कब मिलेगा ? आहा...हा...! अरे...! जीव ने कभी विचार किया नहीं। पर के विचार और पर के ही कार्य में लगे रहकर खुद ने अपना अहित किया है। उसे यह भी पता नहीं है कि मैं अपना अहित कर रहा हूँ !! आहा...!

`**यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित...**' अंदर में शाश्वत भगवान है (वह) स्वयंरक्षित है। उसकी (रक्षा) करे तो वह रहे, ऐसा नहीं है। (ऐसा) चैतन्य भगवान स्वयं रक्षित है। स्वयं - अपनेआप से रक्षित है। आहा...हा...! `**स्वयंरक्षित ज्ञानानंदस्वरूप...**' अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद-स्वरूप ऐसे `**आत्मा की प्रतीति - अनुभूति करके आत्म - आराधना की होगी,...**' आहा...हा...! करना तो यह है ! दूसरी-दूसरी धमाल बाहर में चाहे कितनी भी हो ! आहा...हा...! क्या कहा ?

`**शाश्वत स्वयंरक्षित...**' भगवान(आत्मा) तो अंदर स्वयंरक्षित है। किसीके द्वारा रक्षा करने से रहे, वरना न रहे (ऐसा नहीं है)। वह तो नित्यानंद प्रभु है ! सत् चिदानंद प्रभु ! देह देवल में विराजमान स्वयंरक्षित है। आहा...हा...! इसकी ओर देख ! उसे देख ! कुछ है अंदर !! अंदर में निधान भरा है !! आहा...हा...! उस निधान को देखने के लिये अवकाश नहीं लेता। आहा...! बाहर की हौस और हर्ष की (आड़ में निधान देखने का अवकाश नहीं लेता) !

स्तवन है... एक स्तवन ! चार सज्झायमाला हैं। चार स्वाध्याय हैं। एक-एक में २००-३०० स्वाध्याय हैं। एक-एक स्वाध्याय में दस-दस, पंद्रह-बीस श्लोक हैं। ऐसे चार (स्वाध्याय हैं)। मैं तो दुकान पर था (तब) मँगवाये थें। बीस साल की उम्र में...! सब पढ़े हैं।

उसमें एक ऐसा आया था। `होंशिडा होंश न कीजिये' - हे जीव ! तेरी चैतन्य की सत्ता को छोड़कर पर की हौस में हौस मत करना प्रभु ! सज्झाय है। चार सज्झायमाला हैं, श्वेतांबर में है। उस जमाने में दुकान पर सब पुस्तकें मँगवाई थी। एक-एक में २५०-३०० सज्झाय (हैं), ऐसी चार सज्झायमाला हैं। इसमें एक ऐसा आया था। आहा...हा...! प्रभु...! तू कहाँ हौस करता है ? तेरा स्वरूप अंदर में ज्ञानानंद भरा है, इसके प्रति तुझे हौस आती नहीं, उसके प्रति तेरा प्रयत्न आता नहीं, उसके प्रति तुझे हर्ष आता नहीं और इसके बजाय पुण्य और पाप और इसके फल में तुझे हर्ष व हौस (आती है) ! प्रभु ! मर गया तू ! आ...हा...हा...हा...! है ?

`**स्वयंरक्षित ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की प्रतीति...**' ऐसी प्रतीति कैसे आये ? यह बात तो अपनी चलती है सारे दिन। देह भी मैं नहीं, वाणी मैं नहीं, मन मैं नहीं, पाप के परिणाम मैं नहीं, पुण्य के परिणाम मैं नहीं, एक समय की पर्याय पर दृष्टि नहीं, आहा...हा...! मैं (तो) त्रिकाली स्वसंवेदन स्वयंरक्षित आत्मा (हूँ) ! `इसकी प्रतीति की हो...' ऐसे स्वरूप की प्रतीति (स्वयं) पर्याय है, लेकिन प्रतीति करें किसकी ? त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप की ! आहा...हा...!

अब, एक तरफ बाहर में (आकुलता की) होली सुलगती हो, पच्चीस-पचास लाख पैदा होते हो, (एक) दिन की लाखों की पैदाइश हो (उसमें) खुद उलझ गया। लड़के अच्छे निकले हो... बस ! हो गया ! जैसे हम तो कहाँ से कहाँ पहुँच गये ! बापू ! वह सब नाशवान है, भाई !

यह स्वयंरक्षित प्रभु, ज्ञानानंद स्वभाव की प्रतीति, इसकी अनुभूति दो (शब्द) हैं न ? इसकी प्रतीति और अनुभूति `**करके आत्म-आराधना की होगी,...**' आहा...हा...! `आत्मआराधना' ! पुण्य की आराधना और

राग की आराधना, व्यवहार की आराधना - वह नहीं। आता है, व्यवहार बीच में आता है परंतु वह सब हेय (हैं) - छोड़ने लायक हैं।

आहा...हा...! अंतर का स्वयं आनंद स्वभाव (है, इसकी) `**अनुभूति करके आत्म-आराधना की होगी, आत्मामें से शांति प्रगट की होगी;...**' यह कर्तव्य है। लाख बात की बात - निज आतम उर ध्याओ ! आहा...हा..! छः ढाला में आता है न ? लाख बात की बात नहीं... अनंत बात की बात। करोड़ बात की बात नहीं... अनंत बात की बात ! अनंत बात की बात ! अनंत बात की (बात) `निज आतम उर ध्याओ।' अंदर मेरा आत्मा प्रभु ज्ञानानंद स्वभाव है, उस पर दृष्टि करके उसका सेवन कर, तो तेरे जन्म-मरण के फेरे मिटेंगे। वरना जन्म-मरण के फेरे, चौरासी के अवतार ऐसे के ऐसे सामने खड़े हैं, और ऐसे के ऐसे ही खड़े रहेंगे। आहा...हा...! अवकाश कहाँ है लेकिन ? सुनने मिले (तो) भी वहीं का वहीं पड़ा रहे। आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं कि, `**आत्मामें से शांति प्रगट की होगी,...**' आत्मा में शांतरस पड़ा है, आत्मा में अकषाय रस पड़ा है। अकषाय रस कहो, शांत रस कहो, चारित्र गुण कहो, अंदर रमणता नाम का गुण कहो - ऐसा गुण (पड़ा है)। ऐसा शांतरस अनादि अनंत पड़ा है। आहा...हा...! ऐसे आत्मामें से शांति प्रगट की होगी,... परंतु यह शक्तिरूप शांति है। आहा...! स्वभाव में शांति भरी है। उसे पर्याय में व्यक्त - प्रगट करके... आहा...!

(`समयसार') ४९ गाथा में तो यहाँ तक कहा है - आत्मा पर्याय को स्पर्श तक नहीं करता ! आ...हा...हा...! क्या कहा ? द्रव्य स्वभाव राग को तो स्पर्श नहीं करता, परंतु वह पर्याय को

भी स्पर्शता नहीं !! और उसकी वह पर्याय द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। ४९ गाथा... `अव्यक्त...!' अव्यक्त के छः बोल हैं। (उसमें आता है)। व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान होने पर भी, व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य, दो का ज्ञान होने के बावजूद भी यह आत्मा व्यक्त नाम पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अररर...! यह बात सुननी कठिन लगे ! क्या कहा ?

आत्मा त्रिकाली स्वरूप है उसे वहाँ `अव्यक्त' कहा है और प्रगट पर्याय को व्यक्त कहा है। यह प्रगट पर्याय जो है उसका और अव्यक्त का ज्ञान होने के बावजूद भी, व्यक्त नाम पर्याय को द्रव्य स्पर्श तक नहीं करता। आहा...हा...! गज़ब बात है। (ऐसा मानने के) बज़ाय, उसे यूँ छूता हूँ और शरीर को ऐसे करता हूँ, शरीर से भोग लेता हूँ... (ऐसा मानता है)। आहा...हा...! प्रभु... प्रभु.... प्रभु...! गज़ब बातें हैं, बापू !

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा का सत्य (यह है कि) व्यक्त पर्याय को भी अव्यक्त - त्रिकाली द्रव्य, शुद्ध सत् चिदानंद, शांति का सागर स्पर्शता नहीं है ! आहा...हा...! वह पर्याय को नहीं छूता। यह क्या बात है !! `समयसार' ४९ गाथा में है। `अव्यक्त' के छः बोल हैं। आहा...! आत्मा त्रिकाल है - वह व्यक्त नहीं। परंतु वर्तमान पर्याय प्रगट है उसे व्यक्त कहते हैं। और त्रिकाल जो प्रगट नहीं है उसे अव्यक्त कहते हैं। उसे पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त कहते हैं, अप्रगट कहते हैं। वस्तु की अपेक्षा उसे प्रगट कहते हैं। अरे...! अरे...! यह कैसे सुना जाये !

यह अंतर (में) पकड़े बिना जीव के जन्म-मरण का अंत, चौरासी के फेरे नहीं मिटते, बापू ! वह बाहर में चाहे कुछ भी मनवाये और माने कि मैंने ऐसा किया और ऐसा किया, वैसा किया, दान

में करोड़ों रुपये खर्च किये इसलिये मेरे जन्म-मरण कुछ कम होंगे ! (ऐसा माना) हराम है, (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि, शांति का सागर प्रभु है, कैसे बैठे...? क्योंकि जीव में चारित्र नाम का गुण अनादि (से) है। इस चारित्रगुण का स्वरूप शांत है। चारित्रगुण का स्वरूप अकषाय है। यह अकषाय शांत भाव त्रिकाल है। इस शांत भाव को स्पर्श किये बिना अर्थात् प्रगट किये बिना (जन्म-मरण नहीं मिटेंगे)। (प्रगट हुआ शांत भाव) त्रिकाली को स्पर्श नहीं करता। थोड़ा सूक्ष्म लगेगा। परमार्थ धर्म की शांति की जो पर्याय है, वह त्रिकाल शांतस्वरूप प्रभु है, उसे वह छूती नहीं। आहा...हा...! क्योंकि द्रव्य का वेदन नहीं होता। वेदन पर्याय का होता है और इसीलिये तो ऐसा कहा कि आनंद और शांति का जो वेदन है सो आत्मा (है) ! हमारे लिये तो वह आत्मा (है)। रागादि तो आत्मा नहीं परंतु द्रव्य भी आत्मा हमारे लिये नहीं !! हमारे लिये तो द्रव्य आत्मा नहीं ! (ऐसा कहा) आहा...हा...! `प्रवचनसार'-१७२ गाथा (में) बीस वें बोल में कहा है।

राग-दया-दान, व्रत, भक्ति, पूजा ये तो आत्मा नहीं, वे तो अनात्मा हैं। आहा...हा...! परंतु एक समय की पर्याय भी द्रव्य नहीं - वस्तु नहीं। निर्मल पर्याय - सम्यक्दर्शन (की), ज्ञान की, शांति की निर्मल पर्याय - उस पर्याय को द्रव्य स्पर्श तक नहीं करता। धर्मी को पर्याय वेदन में आती है। शांति... शांति... शांति... शांति... दूसरी भाषा में कहे तो (वह) अकषाय भाव (है)। आहा...हा...!

एक बार यह कहा था - `जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, जेम निर्मलता रे स्फटिक तणी, तेम ज जीव स्वभाव रे... श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबळ कषाय अभाव रे...'

ये पुण्य-पाप के भाव कषाय हैं। उनका अभाव (होना) उसे भगवान ने धर्म कहा है। समझ में आया ? यह मंदिर बनायें, लाखों रुपया खर्च करे, करोड़ों खर्च करें, इससे उसे धर्म हो जायेगा, उसके जन्म-मरण मिट जायेंगे (ऐसा नहीं है)।

आहा...हा...! यहाँ अंदर शांत रस से (भरा) प्रभु पड़ा है न ! अकषाय स्वरूप कहो या शांत कहो या चारित्र कहो - ऐसा अनादि अनंत चारित्र का स्वभाव अंदर पड़ा है। उस पर नज़र करने पर पर्याय में जो शांति प्रगट होती है, उस शांति को - मुक्ति के मार्ग को सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस सम्यग्दर्शन को छोड़कर जो कुछ भी करने में आता है वह सब `बिना एक के शून्य हैं।' कोरे कागज़ पर एक अंक लिखे बिना करोड़ शून्य (करे तो) भी इससे कोई संख्या नहीं हो जाती। आहा...हा...! कठिन बात है, प्रभु !

अंदर शांत... शांत... शांत... स्वरक्षित भगवान (विराजमान है)। उसे रखे तो रहे, ऐसा नहीं है। वह तो स्वरक्षित ही है और ज्ञानानंदस्वरूप है। मृत्यु के समय प्रभु ! अगर तुझे यह याद न आया... आहा...हा...! मृत्यु के समय ऐसा साधकपना प्रगट नहीं किया होगा तो प्रभु (तू) मृत्यु के समय दबाव में आ जायेगा, दुःख में दब जायेगा, पीड़ित होता हुआ मरकर तिर्यंच या नरक में जाना पड़ेगा। आहा...हा...!

अरे...! इसका विचार भी कब किया है ? कि, मेरा क्या होगा ? मैं यहाँ से (कहाँ जाऊँगा) ? देह तो छूट जायेगी परंतु मैं कोई छूटनेवाला हूँ ? छूटूँगा (लेकिन) देह से। देह छूटती है तब लोग ऐसा कहते हैं न कि, यह जीव गया ! ऐसा कहते हैं क्या कि जीव मर गया ? देह छूटे तब ऐसा कहते हैं न कि, Pulse हाथ नहीं आती है, बापू ! लगता है जीव गया ! अब इसमें जीव नहीं

लगता है। (यहाँ) से गया तो कहीं और जगह भी रहा है कि नहीं ? यहाँ से गया तो कहीं और रहा तो है कि नहीं ? कहाँ रहा होगा ? आत्मा के भान बिना कषाय किये होंगे तो मरकर तिर्यंच में रहा होगा ! आहा...हा...! जिसने आत्मा का सम्यग्दर्शन या सम्यग्दर्शन के संस्कार अंतर में नहीं डाले होंगे और लौकिक संस्कार के घेरे में घिरा हुआ रहेगा... आहा...हा...! मृत्यु पश्चात् कहाँ से कहाँ (चला) जायेगा। आहा...हा...!

(इसीलिये यहाँ कहते हैं) '**आत्मामें से शांति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी।**' सिद्धांत में तो ऐसा लेख है - मांगलिक में आता है न ? 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहु शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं' - ऐसे चार चरण विकल्प हैं। निश्चय से वे शरण नहीं। अरिहंत शरण नहीं, सिद्ध शरण नहीं, साधु शरण नहीं, अरे...! केवली द्वारा प्ररूपित धर्म तो पर्याय है, वह भी शरण नहीं ! अंदर चिदानंद भगवान(आत्मा) शरण है !! आहा...हा...! उत्तम मांगलिक, उत्तम शरण और उत्तम दाता...! आहा...हा...! वह तो प्रभु अंदर भरा पड़ा है भाई ! परंतु तुझे खबर नहीं। आहा...हा...! ऐसा तू भगवान है ! तू पामर होकर फिरता है...! आहा...! वही कहते हैं (आत्मामें से) शांति प्रगट की होगी (तो) वह एक ही तुझे शरण देगी। '**एक ही...**' (शरण देगी) ! 'णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं...' करेगा तो भी वह शरण नहीं देगा, (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! भगवान का नाम लीजिये, भगवान का नाम लीजिये भाई ! (ऐसा लोग कहते हैं न ?) आहा...हा...! भगवान का नाम लेने का विकल्प भी राग है। आहा...हा...!

अंतर आनंदस्वरूप भगवान है उसका ज्ञान करके लक्ष तो कर ! दूसरे का लक्ष छोड़ दे। दूसरे से कुछ कल्याण और श्रेय

नहीं है। आत्मा में ऐसे संस्कार डाले बिना वह आगे जाकर समकित पायेगा नहीं। भविष्य में मिथ्यात्व सहित चारगति में फिर से भटकने चला जायेगा। मनुष्यत्व हार जायेगा।

वही (यहाँ) कहते हैं, '**वह एक ही तुझे शरण देगी।**' उन चार मांगलिक को भी 'अमांगलिक' कहा है ! आ...हा...हा...! 'पद्मनंदी पंचविंशती' में 'एकत्व सप्तति' नाम का अधिकार है। उसमें ऐसा लिया है कि, वे चारों शरणभूत नहीं हैं। शरण अंदर में भगवानआत्मा है ! आहा...हा...! अंदर अखंडानंद प्रभु शांति का सागर, अतीन्द्रिय तेज से प्रकाशित - चेतन के प्रकाश का पूँज प्रभु अंदर है। लेकिन तेरी नज़र वहाँ किये बिना तुझे निधान दिखेगा नहीं। आहा...! राग और पर्याय के प्रेम में अटककर और स्व को भूलकर जीव भटकता है। साधु हुआ ! दिगंबर साधु...! नग्न मुनि (हुआ) ! अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया, पंच महाव्रत धारण किये परंतु आत्मज्ञान बिना शून्य रहा। आहा...हा...! इसके बिना एक समय (भी) शांति न मिली!

वही यहाँ कहते हैं कि अगर (आत्मामें से) शांति प्रगट की होगी, '**तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिये अभी से वह प्रयत्न कर।**' बाद में करूँगा... ऐसा वायदा रहने दे ! 'जिसकी जिसको रुचि हो उसके वह वायदे नहीं करता।' जिसको जिसमें रुचि हो उसमें उसका वायदा नहीं होता। आहा...हा...! वैसे अगर आत्मा की रुचि होगी तो इसके लिये वायदा नहीं होता कि, अभी नहीं, बाद में करूँगा। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... उसका बाद में ही रह जायेगा ! समझ में आया ? आहा...हा...!

एक दृष्टांत आता है। बनियों का जेवनार था। उसमें बारोट आये, बारोट ने कहा कि, 'हमें भी खिलाईये, आपके पाँच-पाँच हज़ार आदमी खान खायेंगे, उसमें साथ-साथ हमलोग पाँचसौ बारोट हैं,

(हमें भी) खिलाईये !' बनिये ने कहा, `आज नहीं कल ! कल जरूर आज नहीं' (बारोट) दूसरे दिन (फिर से) आयें। (तब बनिये ने कहा) `क्या लिखा है यहाँ ?' `आज नहीं कल !' वह कल कभी होती नहीं, और बारोट कभी खाये नहीं। आहा...हा...! वैसे अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं...। (जो करता है उसकी) कल कभी आज होती नहीं और अभी नहीं... अभी नहीं... (करते-करते) यूँ ही मरकर चला जायेगा चौरासी के अवतार में !! आहा...! जैसे बारोट को खाने मिले नहीं वैसे इस जीव को सत्य कभी हाथ लगे नहीं। आहा...हा...! अभी नहीं बाद में करेंगे ! थोड़ा बेटे-बेटियों का पहले कर ले (बाद में करेंगे)। खुद को लड़का न हो तो दूसरे का ले ! क्या कहते हैं उसको ? गोद लेना... गोद लेना...! आहा...हा...! अरे...! बेटी न हो तो, बेटी का बेटा हो उसे सँभाले ! आहा...हा...! परंतु उसकी सँभाल लेने में वहीं रुका रहेगा। भगवानआत्मा अंदर क्या चीज़ है ? (यह नहीं खोजता)। आहा...हा...! अरेरे...! अनंतबार तूने (ये सब) किया, प्रभु !

यहाँ कहते हैं `**वह प्रयत्न कर।**' एक ही प्रयत्न कर - आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य है उसकी ओर का पुरुषार्थ कर ! वह पुरुषार्थ से प्राप्त हो सकता है। `क्रमबद्ध' भले ही हो, परंतु क्रमबद्ध में पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध में अकर्तापने का पुरुषार्थ है। अकर्तापना होगा तो ज्ञातापना होगा। अकर्ता निषेध से (नास्ति से) है, ज्ञातापना अस्ति से है। जिस समय जो होनेवाला है (ऐसे क्रमबद्ध का) निर्णय करते ही आत्मा राग का और वर्तमान पर्याय का भी कर्ता नहीं रहता। आहा...हा...! तब वह पर्याय का भी ज्ञातादृष्टा हो जायेगा। गज़ब बात है, भाई !

वही यहाँ कहते हैं - अंदर में वह प्रयत्न कर, बापू ! आहा...हा...! `**सिर पर मौत मंडरा रहा है...**' आहा...हा...! प्रतिक्षण मौत का भय

तो है ही। कब देह छूट जायेगी ?

एक मुमुक्षु बात करते थे (कि), मेरी उम्र का २८ साल का मेरा मित्र मेरे पास बैठा था। हम दोनों बातें करते थे। उसे कोई रोग नहीं, कुछ नहीं था। बातें करते थे, इतने में फू... इतनी आवाज़ आयी ! मैंने जैसे ही उसकी ओर देखा, वह तो मर चुका था !! कोई (बीमारी) नहीं कुछ भी नहीं। ऐसे फू... (हुआ), स्थिति पूरी हो गई ! फू... इतना-सा हुआ कि देह छूट गई। अभी तो बातें कर रहे थे। देह छूटने के समय पहले कोई खबर नहीं आयेगी कि, अब में - मृत्यु आ रही हूँ, हं...! ऐसा (कहकर) मृत्यु नहीं आयेगी। मृत्यु पूछने नहीं आयेगी। आहा...हा...! अकाल मृत्यु हो जायेगी। `अकाल' शब्द - तुझे पता नहीं है उस अपेक्षा से (अकाल कहा)। वरना वैसे तो वही उसका काल है। आहा...हा...!

`**सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारंबार स्मरण में लाकर...**' है ! `**ऐसा बारंबार स्मरण में लाकर...**' आहा...हा...! `**भी तू पुरुषार्थ चला...**' अरे...! मौत को बारंबार याद करके भी पुरुषार्थ जागृत कर (ऐसा कहते हैं)। `**कि जिससे `अब हम अमर भये, न मरेंगे...**' आहा...हा...! जिसको ऐसे आत्मा का ज्ञान हो... `अब हम अमर भये, न मरेंगे' - हम मरता नहीं। हम तो अमर हो गये। हमारा आत्मा अमर (है)। हमने अमर को जाना, अमर का अनुभव किया, अमर की प्रतीति की - `अब हम न मरेंगे' यह `आनंदघनजी' का वचन है। श्वेतांबर में एक `आनंदघनजी' हो गये हैं। `अब हम कबहू न मरेंगे !' आहा...हा...!

वही कहते हैं, देखो ! `**अब हम अमर भये, न मरेंगे...**' शांति के नाथ की अगर भीतर में रट लगी होगी, अंदर ज्ञाता-दृष्टा और आनंद की रट यदि लगी होगी तो `अब हम अमर भये' -

आत्मा अमर है। आत्मा कभी मरता नहीं। आहा...हा...! आत्मा तो अमृत का सागर है। मतलब ? अमृत माने ? जो किसी से मरता नहीं। अ+मृत - वह किसीको मारता नहीं। किसीके द्वारा वह मारा जाता नहीं, ऐसा वह अमृतसागर है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा की जिसे भीतर में रट लगी, लगन लगी, जिसने संस्कार ग्रहण किये, जिसके स्मरण में बारंबार ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ... - ऐसे संस्कार डाले हो और ज्ञायक का भान होने पर... ऐसा कहते हैं, देखो ! है ? आहा...हा...! `**ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।**' `अब हम अमर भये, न मरेंगे' - आत्मा अमर - नित्य है, इस नित्य का जहाँ अंतर (में) ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ (तो कहते हैं) `अब हम न मरेंगे।' है ? `**ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक...**' (अर्थात्) शांति... शांति... शांति... (पूर्वक देह त्याग करेगा)।

एक आदमी मर रहा था, देह छूटनेवाली थी, (वह) क्षयोपशमवाला था। (तब) उसे दूसरा कोई सुना रहा था। (तब उसने कहा) `भाई ! सुनाना छोड़ दे ! अब मुझे सुनाना छोड़ दे। मैं तो अपने ध्यान में हूँ।' सुनते वक्त भी बाहर लक्ष जाता (है), (वह) राग है। सुनना वह भी राग है। ऐसे राग में रहेगा तो भी उसकी मृत्यु सत्य (सम्यक्प्रकार से) नहीं होगी। `राग से रहित मैं अपने ध्यान में हूँ। मुझे अब कोई सुनाईये मत, मुझे कुछ सुनना नहीं है। (मेरा) यह प्रभु अंदर है। आहा...! समझ में आया ? ऐसे एक आदमी की मृत्यु हुई थी।

यहाँ कहते हैं `**(ऐसे भाव में तू) समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।**' जीवन में एक शुद्धात्मा ही उपादेय है। देखो ! यह सारांश ! निमित्त है वह उपादेय - आदरणीय नहीं है। शुभराग भी आदरणीय नहीं, एक

समय की पर्याय भी आदरणीय नहीं है, आहा...हा...! एक त्रिकाली शुद्धात्मा ही अंगीकार करने लायक है। कब माने...! है आखरी शब्द ? `**एक शुद्ध आत्मा ही...**'

कौन आत्मा ? जीवन में एक शुद्ध आत्मा (ही उपादेय है)। अंदर शुद्ध स्वरूप प्रभु (आत्मा विराजमान है)। जैसे डिब्बी में हीरा अलग से पड़ा हो वैसे राग और शरीर से भिन्न अंदर भगवान हीरा - चैतन्य हीरा मौजूद है। इसकी दृष्टि और संस्कार जिसने ग्रहण किये उसे अब मृत्यु का डर नहीं रहा। उसे अब भव करने नहीं पड़ेंगे। वह यदि आत्मा का शरण लेगा तो, इसे छोड़कर अभी अरिहंत और सिद्ध का शरण लेने जायेगा तो (वह भी) राग है। आहा...हा...! यह ४१२ हुआ।

सर्वज्ञभगवान परिपूर्णज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से - अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित - प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, परके समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोकके सर्व पदार्थोंको अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। परको जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होनेसे तो ज्ञान दब जाता है - रुक जाता है, विकसित नहीं

होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है वह किसीको जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, तीनों काल के तथा लोकालोकके सर्व स्व-पर ज्ञेय मानों वे ज्ञानमें उत्कीर्ण हो गये हों उस प्रकार, समस्त स्व-परको एक समय में सहजरूप से प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है उस सबको भी पूरा जानता है, जो आगे होना है उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्भुत है।।४१३।।

४१३। `**सर्वज्ञभगवान परिपूर्णरूप से परिणमित हो गये हैं।**' तीन लोक के नाथ यही आत्मा सर्वज्ञरूप हुए (हैं)। आ...हा...हा...! हो चुके उनकी यह बात है। `**वे अपने को पूर्णरूप से - अपने सर्वगुणों के...**' अपने सर्व गुणों के ! `**भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित...**' क्या कहा इसमें ? प्रभु का स्वभाव तो सर्वज्ञ है। ४७ शक्ति में लिया है। ४७ शक्ति हैं न ? इस (आत्मा में) सर्वज्ञ शक्ति है। आत्मा सर्वज्ञ स्वभावी ही है। ऐसा जिसको भान हुआ और उसीमें जिसकी रट लगी वे सर्वज्ञ हुए। ऐसे अनंत सर्वज्ञ हो चुके।

ऐसे सर्वज्ञ अपने अनंत गुणों को, अनंत पर्यायों को और एक-एक पर्याय के अनंत अविभाग प्रतिच्छेदों को (जानते हैं)। (अविभाग

प्रतिच्छेद कहा) माने क्या ? एक समय के ज्ञान में तीन काल, तीन लोक जानने में आयें, तो एक पर्याय के कितने भाग हुए ?! एक केवलज्ञान की पर्याय में तीनकाल, तीनलोक जानने में आते हैं। एक पर्याय में इतनी ताकत (है) !! इसके इतने भाग करो तो अनंत अविभाग प्रतिच्छेद (होते हैं)।

अ-विभाग नाम भाग न कर सके ऐसे प्रतिच्छेद नाम अंश। केवलज्ञान की एक समय की एक पर्याय में अनंत प्रतिच्छेद हैं। ऐसे-ऐसे अनंत गुणों की अनंत पर्यायों में, एक-एक पर्याय में अनंत प्रतिच्छेद हैं। उसे भी भगवान एक समय में जानते हैं। आहा...हा...! ऐसा ताकतवर तू है, ऐसा बताते हैं ! अरे...! लेकिन कैसे प्रतीति आये ? आहा...!

यह जगत की जाल... सारा दिन जाल में - पाप (में) अटका। धर्म तो नहीं है लेकिन पुण्य का भी ठिकाना नहीं है ! (एकाध) घण्टा पूजा-भक्ति आदि शुभभाव कर ले (फिर) सारा दिन पाप में...! हो गया...! वह पुण्य (भी) धुल जाता है, वह पुण्य जल भी जाता है ! आ...हा...हा...! और पाप जो बाँधे हो इसकी अधिकता हो जाती है। उस पाप की अधिकता में मरकर फिर जाये हलकी गति में !

यहाँ कहते हैं (जो) सर्वज्ञ हुए (वे) `**अपने सर्वगुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित - प्रत्यक्ष जानते हैं।**' केवलज्ञानी तीनकाल, तीनलोक को जानते हैं। `जे-जे देखी वीतरागने, ते-ते होसी वीरा' आहा...हा...! भगवान के ज्ञान में जो आया है, उस समय वह पर्याय अवश्य होगी ही। ऐसी पर्यायों का ज्ञान सर्वज्ञ को एक समय में हो चुका है। ऐसे सर्वज्ञ दूसरों की पर्याय के कर्ता नहीं हैं, ज्ञायक हैं - कर्ता नहीं। भगवान ने जाना

इसलिये पर में वैसी पर्याय हुई, ऐसा नहीं है और पर की पर्याय हुई इसलिये (सर्वज्ञ के) ज्ञान में आयी, ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...हा...!

स्व की जानने की पर्याय में इतनी ताकत है कि, स्व के अनंत (अविभाग) प्रतिच्छेद, अनंत गुण और द्रव्य - (सबको) एक ही समय में अपने ज्ञान सामर्थ्य द्वारा जान ले, उन्हें सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। आहा...! ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा की जिसको प्रतीति हो उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना रहता नहीं। क्योंकि सर्वज्ञ स्वभाव आत्मा का ही है ! आहा...हा...! ऐसा कठिन लगे। यह जीव स्वयं ही सर्वज्ञ स्वरूपी है।

(`समयसार'-४७ शक्ति में) सर्वज्ञ स्वभाव में ऐसा कहा है कि, `सर्व' शब्द भले ही हमने लगाया, परंतु है `आत्मज्ञ'। केवली तीनकाल, तीनलोक को जानते (हैं) ऐसा जो हमने कहा सो तो एक उपचार से कहा है। वैसे हैं - `आत्मज्ञ' ! आत्मा की पर्याय को जाननेवाले, उसमें लोकालोक तो सहज प्रतिबिंबित हो जाते हैं। उनकी नज़र लोक पर नहीं है। ऐसी सर्वज्ञशक्ति प्रत्येक आत्मा में मौजूद है। इस शक्ति की सँभाल करे तो सम्यग्दर्शन और सर्वज्ञ हुए बिना रहे नहीं। विशेष कहेंगे...

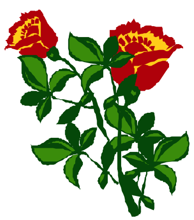

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृत्तोंका संकलन)	१५०-००
०४	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५	आत्मअवलोकन	-
०६	बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९	दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१०	धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर ॅ पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११	दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२	धन्य पुरुषार्थी	-
१३	धन्य अवतार	-
१४	गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५	गुरु गिरा गौरव	-
१६	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७	कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८	कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२०	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-

२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध
४०	समयसार कलस टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००

-

વીતરાગ સત્સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ

ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)

	ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ	મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્ ભગવત્ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦
૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૨૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્માપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦

૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિંશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત્ત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃત્તો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમક્તિનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત્ત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત્ત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००
२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००

३०	निर्भ्रांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	५०००
३१	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	२३००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजरात+हिन्दी)	३५००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००
५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२५००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२५००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	३०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००

६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	२५००
६५	वचनामृत रहस्य	१०००
६६	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
६७	कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती)	२५००
६८	प्रवचन सुधा (भाग-१)	१४००
६९	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७०	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७१	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७२	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	७५०
७३	प्रवचन सुधा (भाग-२)	७५०
७४	समयसार दोहन	७५०
७५	गुरु गुण संभारणा	७५०
७६	सुविधिदर्शन	१०००
७७	समकितनुं बीज	१०००
७८	स्वरूपभावना	१०००
७९	प्रवचन सुधा (भाग-३)	१०००
८०	प्रवचन सुधा (भाग-४)	१०००
८१	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१	१०००
८२	कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२	१०००
८३	सुविधि दर्शन (हिन्दी)	१०००
८४	प्रवचन सुधा (भाग-५)	१०००
८५	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१)	१०००
८६	द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२)	१०००
८७	वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००
८८	प्रवचन सुधा (भाग-६)	१०००
८९	राज हृदय (भाग-१)	१५००
९०	राज हृदय (भाग-२)	१५००
९१	अध्यात्मसुधा (भाग-१)	१०००
९२	अध्यात्मसुधा (भाग-२)	१०००
९३	गुरु गिरा गौरव (भाग-१)	१०००
९४	अध्यात्म सुधा (भाग-३)	१०००

९५	प्रवचन सुधा (भाग-७)	७५०
९६	प्रवचन सुधा (भाग-८)	७५०
९७	राज हृदय (भाग-३)	७५०
९८	मुक्तिनो मार्ग (गुजराती(	१०००
९९	प्रवचन नवनीत (भाग-३)	१०००
१००	प्रवचन नवनीत (भाग-४)	१०००
१०१	प्रवचन सुधा (भाग-९)	७५०
१०२	गुरु गिरा गौरव (भाग-२)	७५०
१०३	प्रवचन सुधा (भाग-२) हिन्दी	१०००
१०४	प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती)	७५०
१०५	प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती)	७५०
१०६	धन्य आराधक (गुजराती)	७५०